विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
भूमिका		.....	क - च
प्रथम अध्याय	:	ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ ।	1 - 35
		1. इतिहास का स्वरूप	
		2. इतिहास और उपन्यास का सम्बन्ध	
		3. कल्पना का स्वरूप	
		4. ऐतिहासिक कल्पना	
		5. ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और ऐतिहासिक कल्पना का योग	
		6. हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास	
द्वितीय अध्याय	:	वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास - एक आलोचनात्मक परिचय ।	36 - 124
		1. ऐतिहासिक उपन्यास	
		2. सामाजिक उपन्यास	
तृतीय अध्याय	:	वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ	125 - 166
		1. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहास का स्वरूप	
		(1) राजनीतिक इतिहास	
		(2) सामाजिक इतिहास	
		(3) सांस्कृतिक इतिहास	
		(4) राष्ट्रीय इतिहास	
		(5) क्षेत्रीय इतिहास	
		(6) वर्माजी के इतिहास स्रोतों के रूप	
		2. ऐतिहासिक उपन्यासों में सत्य और कल्पना ।	

3· वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना की सक्रियता ।

4· वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना एवं यथार्थ का मिश्रण ।

§1§ कल्पना की सजीवता
§2§ उपन्यासों में यथार्थ का स्वरूप

5· ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना व यथार्थ एक दूसरे के पूरक हैं

चतुर्थ अध्याय : **वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ** 167 - 221

1· सामाजिक उपन्यास लिखते समय प्रेरणा स्रोत
2· उपन्यासों में चित्रित यथार्थ के विभिन्न आयाम

पंचम अध्याय : **ऐतिहासिक पात्र और उपन्यास के चरित्र** 222 - 261

1· ऐतिहासिक पात्रों के अध्ययन से इतिहास की प्रस्तुति

§1§ पात्रों का वर्गीकरण

2· प्रेम और युद्ध

षष्ठ अध्याय : **वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्प** 262 - 293

1· उपन्यास में शिल्प का अर्थ
2· देशकाल तथा वातावरण
3· प्रकृति चित्रण
4· कथा वस्तु संयोजन
5· ऐतिहासिक उपन्यासों में कथावस्तु
6· कथोपकथन एवं भाषाशैली
7· उद्देश्य ।

उपसंहार ..... 294 - 303

परिशिष्ट ..... 304 - 316

***

भूमिका

वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों को पढ़ते हुए हम भारतीय समाज के इतिहास को पूरी जीवंतता के साथ पाते हैं और महसूस भी करते हैं । इतिहास को पूर्ण सजीवता के साथ चित्रित कर देने की अद्भुत कला वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में मिलती है, किन्तु इसके साथ ही एक अहम् मुद्दा मेरे मन में गहराई से पैठता जा रहा था।क्या कल्पना जगत् से टकराता यह ऐतिहासिक चित्रण अपने पात्रों में, वस्तु वर्णन में और घटनाओं के हू-ब-हू चित्रण में यथार्थ को साकार कर सका है ? इतिहास के यथार्थ रूप को मानव प्रवृत्तियों के साथ जोड़कर उसे मनोरंजनकारी उपन्यास का जामा कैसे प्राप्त हो गया ? साथ ही ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवंत संवेदनाएं क्या वर्तमान के यथार्थ को भी कहीं छूती नज़र आती हैं ? इन समस्त प्रश्नों से चिन्तातुर मानस ने मुझे वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के बिन्दुओं को खोजने की ओर प्रवृत्त किया ।

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों पर कार्य करने के पीछे एक बात सदैव मेरे मन को कचोटती रही थी कि उनके उपन्यासों पर बहुत से शोध प्रबंध लिखे जा चुके हैं लेकिन उनके उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के रचनात्मक सम्बन्ध पर अभी तक कोई काम नहीं हुआ है । इस शोध प्रबंध में केवल ऐतिहासिक उपन्यासों के सन्दर्भ में ही कल्पना और यथार्थ की चर्चा नहीं की गई है वरन् उनके सामाजिक उपन्यासों में भी कल्पना और यथार्थ के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है ।

हिन्दी साहित्य में यह एक विडम्बनापूर्ण स्थिति ही है कि वृन्दावनलाल वर्मा का जिक्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही अधिक किया जाता है । उनके सामाजिक उपन्यासों की ओर लोगों ने बहुत कम ध्यान दिया है जबकि उनके सामाजिक उपन्यास भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । उनके सामाजिक उपन्यासों में अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है और लेखक ने अपनी विचारधाराओं के अनुकूल उनके समाधान भी प्रस्तुत किये हैं । इन सबका विस्तृत विवेचन भी इस शोध ग्रंथ में किया गया है । महत्वपूर्ण होते हुये भी उनके सामाजिक उपन्यासों की ओर लोगों का ध्यान न देने का कारण शायद यह हो सकता है कि उस युग में सामाजिक उपन्यास लेखक तो कई थे पर वर्माजी से पहले ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा नहीं के बराबर थी ।

उपन्यास में कल्पना और यथार्थ का सम्बन्ध अनिवार्य है, विशेषकर ऐतिहासिक उपन्यासों के सन्दर्भ में तो यह और भी सत्य है, क्योंकि लेखक अपनी कल्पना द्वारा इतिहास विषयक शुष्कता, नीरसता और उसके बोझिल स्वरूप को रोचक एवं सरस बनाता है । परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए कल्पना एक चुनौती के रूप में भी सामने आती है । ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुए लेखक कल्पना का उपयोग कैसे करें कि वह सार्थक कृति बन सके और ऐतिहासिक यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में चित्रित कर सके ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के छः अध्याय हैं । इन अध्यायों के माध्यम से मैंने वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में कल्पना और यथार्थ के विभिन्न रूपों को खोजने और उसे विश्लेषित करने का प्रयास किया है । इस विवेचन का एक उद्देश्य यह भी है कि आज के ऐतिहासिक उपन्यासकार भी कल्पना और यथार्थ

के सार्थक प्रयोग के बारे में वृन्दावनलाल वर्मा से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रथम अध्याय कल्पना की सैद्धान्तिक व्याख्या पर आधारित है । इस अध्याय में इतिहास के स्वरूप की भी चर्चा की गई है । इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध की विवेचना करते हुए मैंने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और ऐतिहासिक कल्पना के योग पर भी विचार किया है । मैने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि बिना ऐतिहासिक कल्पना के सार्थक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं की जा सकती ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ देने वाले उपन्यासकार वृन्दावनलाल की कृतियों का आलोचनात्मक विवेचन मेरे द्वितीय अध्याय का प्रतिपाद्य है । इस अध्याय में मैंने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों का कथासार प्रस्तुत करते हुये उनकी समीक्षा की है और उपन्यासों के विभिन्न पात्रों के गुण-दोषों को दर्शाते हुये उनकी सार्थकता पर विचार किया है ।

तृतीय अध्याय में वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों के विवेचन से यह जानने का प्रयास किया गया है कि उनके उपन्यासों में इतिहास का क्या स्वरूप है । ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में उन्होंने इतिहास के किन स्रोतों का सहारा लिया है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना की सक्रियता, कल्पना और यथार्थ का मिश्रण एवं उनके उपन्यासों में व्यक्त यथार्थ के स्वरूप पर भी इस अध्याय में विचार किया गया है । कल्पना और यथार्थ एक दूसरे के पूरक हैं । लेखक यथार्थ के आधार पर ही कल्पना की सृष्टि करता है और कल्पना के माध्यम से ही यथार्थ को चित्रित करता है । साहित्य में इन

दोनों का होना अनिवार्य है वर्ना यथार्थ केवल इतिहास बन जाता है और कल्पना रंगीन स्वप्न ।

वर्तमान युग की समस्या को ध्यान में रखते हुए वृन्दावनलाल वर्मा ने कई सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं । जिसमें लेखक युगीन यथार्थ को व्यक्त करता है । इन उपन्यासों में उस युग के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ किन रूपों में व्यक्त हुए हैं एवम् यथार्थ की परिकल्पना उन्होंने किन-किन रूपों में की है, इन सबका विश्लेषण मैंने अपने चौथे अध्याय में किया है ।

पंचम अध्याय उपन्यासों के चरित्रों से सम्बद्ध है । वर्मा जी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा कई प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों को पुनर्जीवित किया है और देश के विगत सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय गौरव को मूर्त किया है । ऐतिहासिक चरित्रों के निर्माण में कई काल्पनिक पात्रों की सृष्टि भी लेखक करता है । उनके उपन्यासों के पात्रों का वर्गीकरण करते हुए मैंने उच्च और निम्न वर्ग के पात्रों तथा स्त्री, पुरूष पात्रों की अलग-अलग कोटियां निर्धारित की हैं ।

भारतीय इतिहास में मुख्यत: युद्ध का आधार प्रेम रहा है । वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इसकी झलग दिखाई देती है । उनके कई उपन्यासों को ऐतिहासिक रोमान की संज्ञा दी जाती है । इसी उपन्यास में मैंने उनकी प्रेम की अनुभूति को स्पष्ट किया है ।

औपन्यासिक शिल्प के तत्वों का विवेचन करते हुए वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की बनावट और बुनावट की बारीकियों की छानबीन छठे अध्याय में की गई है । उपन्यासों की कथावस्तु, विन्यास, देशकाल, वातावरण, प्रकृति चित्रण, संवाद और भाषाशैली का विश्लेषण

कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यास विषय वस्तु की दृष्टि से ही नहीं कलात्मक दृष्टि से भी बेजोड़ हैं ।

इस पूरे प्रयास की सार्थकता के विषय में टिप्पणी सुधीजनों का क्षेत्र है, परन्तु इस पूरे प्रयास में जिन लोगों ने लगातार मेरा सहयोग किया उनके प्रति आभार व्यक्त करने का सौभाग्य मेरा अपना है ।

आरम्भिक शोध निर्देशक डॉ० बी०एम० चिन्तामणि के आकस्मिक निधन से शोध कार्य बड़ा अस्त-व्यस्त हो उठा था । किन्तु डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने उस कठिन समय में मेरे शोधकार्य को संचालित करने का निर्णय लिया एवम् समय-समय पर उनसे जो बहुमूल्य सुझाव मिला उससे शोधकार्य में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव किये बिना मैं इस जटिल कार्य को सम्पन्न कर पाई । मैं डॉ० मैनेजर पाण्डेय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

इसके अतिरिक्त हिन्दी विभाग के अन्य वरिष्ठ प्राध्यापकों, विशेषकर प्रो० नामवरसिंह व प्रो० केदारनाथ सिंह ने न केवल मेरे शोधकार्य में आने वाली कुछ जटिल समस्याओं का समाधान ही किया वरन् समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहे । मैं उनकी आभारी हूँ । डॉ० चन्द्रा सदायत (राजस्थान विजयनगर) की मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध की रूपरेखा और अध्यायों की संरचना में अथक सहयोग दिया।

इनके अतिरिक्त मेरे विभिन्न सहपाठियों ने इस कार्य को पूरा करने में अपने-अपने तौर पर सहायता की जिसमें रजनी गुप्ता तथा रमेश कुमार का नाम विशेष उल्लेखनीय है । विभिन्न पुस्तकालय जैसे तुलसी सदन, साहित्य अकादमी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय तथा दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के कर्मचारियों ने समय-समय पर विभिन्न पुस्तक उपलब्ध करवाई । इन सभी के प्रति मैं आभारी हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध को अन्तिम रूप तक पहुँचाने में मैं अपने पति डॉ॰ ओ॰पी॰ बोहरा और बेटे आलोक के योगदान को विस्मृत नहीं कर सकती । यदि उन्होंने मुझे प्रयाप्त समय और सहयोग न दिया होता तो मैं यह शोध प्रबन्ध नहीं लिख पाती ।

दिनांक : 6.2.92

नई दिल्ली

मंजुलता

मंजुलता

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ

१. इतिहास का स्वरूप

साधारणतः अतीतकाल की असंख्य बातों के विवरण को "इतिहास" संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इतिहास क्या है ? इसका अर्थ है "ऐसा ही हुआ था या ऐसा ही था" । प्रसिद्ध इतिहासकार ई॰एच॰ कार के अनुसार - "इतिहास के तथ्य मछुआरे की पट्टी पर पड़ी मरी हुई मछलियाँ नहीं हैं, वे जीवित मछलियों की तरह हैं जो एक विशाल तथा अगाध समुद्र में तैर रही हैं । इतिहासकार के हाथ में कौन-सी मछलियां आयेंगी यह कुछ तो संयोग पर निर्भर करता है, मगर मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि वह समुद्र के किस हिस्से में मछली मारने का इरादा रखता है और किस ढंग से कांटों का इस्तेमाल करता है । कुल मिलाकर इतिहासकार जिस प्रकार के तथ्यों की खोज कर रहा है उसी प्रकार के तथ्यों को पाएगा ।"[1] अर्थात इतिहास के तथ्यों को एकत्रित करने से पहले इतिहासकार को उस विषय का सूक्ष्मता से अध्ययन करना आवश्यक है जिससे कि इतिहासकार के दृष्टिकोण को देखा जा सकता है और फिर उसके इतिहास को समझने में आसानी होती है ।

---

१. ई॰एच॰ कार - इतिहास क्या है, पृ॰-15.

भारतवर्ष में इतिहास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अथर्ववेद में बताया जाता है। प्राचीन काल के इतिहास के स्वरूप में पर्याप्त अस्थिरता परिलक्षित होती है। जब वीरतापूर्ण कृत्यों का लेखा-जोखा पुराणों में प्रस्तुत किया गया तो पुराण ही इतिहास कहलाए। डॉ॰ रघुवीर ने भी हिस्ट्री का अर्थ "इतिवृत" दिया है।[1] इतिहास के ऊपर उल्लिखित मिले-जुले रूप के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनकी पुष्टि डॉ॰ ताराचन्द ने इस प्रकार से की - "पुराने काल में इतिहास का अर्थ पुराणों की कथाएं जिनमें तथ्यों की मात्रा थोड़ी और आख्यान का परिमाण अधिक था। ··· रामायण, महाभारत की बातों को पुराणों की कहानियों को इतिहास का नाम दे दिया था इसमें आज के इतिहास के ढंग से न घटनाओं के काल निर्णय हैं न व्यक्तियों और समूहों के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन ... "[2]

इतिहास की एक संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार है - इतिहास अपने व्यापक अर्थ में मानव के अतीत की गाथा है।[3] राजतरंगिनी के रचयिता कल्हण के अनुसार - "इतिहास जहां एक ओर अतीत का सुन्दर एवं स्पष्ट प्रतिनिधित्व करता है, वहां दूसरी ओर भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए शिक्षक का काम करता है ···" स्वर्गीय डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार ···"घटना वर्णन तो इतिहास नहीं कहा जा सकता और यदि वह केवल राजाओं और सामन्तों, उनकी बेवकूफियों और व्यसनों, उनके युद्ध और विजयों की ही ऐसी कोरी गाथा हो जिसमें न तो साधारण मानवों के जीवन की झाँकी हो और न धर्म भाषा संस्कृति और कला के क्षेत्र में होने वाले आन्दोलनों का ही जिक्र हो जिन्होंने

---

1. Comprehensive English Hindi Dictionary
2. अनुसन्धान की प्रक्रिया (सम्पादित द्वारा डा० सावित्री सिन्हा एवं डा० विजयेन्द्र स्नातक) में सम्पादित डा० ताराचन्द के लेख इतिहास और साहित्य पृ. 110
3. Columbia Enclopedia (Second Edition 1950)

समय-समय पर मानवजाति को हिला-डुला दिया है तो उसे इतिहास कहलाने का और भी कम हक होगा।"[1] इस प्रकार इतिहास में जन-जीवन का वर्णन उस समय की भाषा संस्कृति और कला का वर्णन विस्तार पूर्वक होना चाहिए। जिससे की आने वाली पीढ़ी पहले हुए कार्यों को पढ़ कर यह समझ सके कि उस समय क्या-क्या हो रहा था और हमें क्या करना चाहिए।

इतिहास के स्वरूप के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इतिहास को "कला" मानते हैं तो कुछ "विज्ञान"। परन्तु इतिहास केवल कला मात्र नहीं है उसमें विज्ञान के तत्वों का भी समावेश है। क्योंकि इतिहास में जितनी वैज्ञानिकता बढ़ती जाती है, उतना ही अधिक वह वस्तु परकता और तटस्थता को महत्व देता जाता है। इतिहास का सम्बन्ध प्राय: नाम, घटना और तिथियों से जोड़ा जाता है। इन सभी से आगे देश और समाज, सामान्य जन-जीवन राजकीय परिवर्तन भौतिक परिस्थितियों तथा उस समय के व्यक्तियों के विचार सम्बन्धी जानकारी इतिहास में मिलती है। आज का इतिहास विविध धाराओं में मिलता है प्रसिद्ध विद्वान डॉ॰ गोरीशंकर हीराचन्द के विचार से - "अतीत के गौरव तथा घटनाओं के उदाहरणों से मनुष्य, जाति एवं राष्ट्र में जिस संजीवनी शक्ति का संचार होता है उसे इतिहास के अतिरिक्त अन्य उपायों से प्राप्त करके सुरक्षित रखना कठिन ही नहीं प्रत्युत एक प्रकार से असम्भव है। इतिहास भूतकाल की अतीत स्मृति तथा भविष्य की अदृश्य सृष्टि को ज्ञान किरणों द्वारा सदा प्रकाशित करता रहता है।"[2] अर्थात् इतिहास मानव जीवन के ज्ञान को वर्तमान व भविष्य में सुरक्षित रखने का साधन है।

---

1. साहित्य शिक्षा और संस्कृति - डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, पृ॰--114.
2. डॉ॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा - राजपूताने का इतिहास, पृ॰--10.

इस प्रकार इतिहास अतीत की घटनाओं का ब्यौरा होकर भी वह वर्तमान के लिए एक प्रेरक शक्ति है जो मनुष्य को उन्नति व प्रगति की ओर प्रेरित करने की भूमिका अदा करता है ।

हेरोदोतस ने इतिहास के लक्षण बताते समय यह कहा है - "यह मानवीय विधा है । अर्थात इसका उद्देश्य मानवी कार्य-कलापों का अध्ययन करना है ।"[1] प्रसिद्ध इतिहासकार ई॰एच॰ कार के अनुसार - "इतिहास की सामान्य धारणा के अनुसार यह व्यक्तियों के बारे में व्यक्तियों द्वारा लिखित दस्तावेज होता है ।"[2] अतः इतिहासकार यह कार्य अकेला नहीं कर सकता है । उसके लिए समाज के व्यक्तियों द्वारा जो सामग्री लिखी जाती है उसको इतिहासकार एकत्रित करता है । इतिहास निरन्तर मानवीय सत्यों की खोज है जिसमें अतीत काल के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, बौद्धिक तथा शिला लेखों, मूर्तियों तथा चित्रकला आदि से इतिहासकार अपने इतिहास को सत्य का आधार देने की चेष्टा करता है । इतिहास को और अधिक समझने के लिए ई॰एच॰ कार के अनुसार - "आरंभ में इतिहास तथ्यों का सामयिक तौर पर चुनाव करता है और उसकी एक सामयिक व्याख्या प्रस्तुत करता है जिसकी रोशनी में उसने तथा अन्य लोगों ने तथ्यों का चुनाव किया । जैसे-जैसे उसका काम आगे बढ़ता है वैसे-वैसे ही तथ्यों की व्याख्या, चुनाव तथा वर्गीकरण में एक बहुत ही सूक्ष्म तथा संभवतः आंशिक, अचेतन परिवर्तन होता रहता है । इस पारस्परिक क्रिया में वर्तमान और अतीत की पारस्परिकता भी मिली होती है । क्योंकि इतिहासकार वर्तमान का अंग होता है जबकि तथ्य अतीत के । इतिहासकार और इतिहास के तथ्य

1· डॉ॰ बुद्ध प्रकाश - इतिहास दर्शन, पृ॰-68.
2· ई॰एच॰ कार - इतिहास क्या है, पृ॰-26.

एक दूसरे के लिए आवश्यक है । तथ्यों से विहीन इतिहासकार बिना जड़ का और व्यर्थ होता है । इतिहासकार के बिना तथ्य मृत और अर्थहीन होते हैं । अतः इतिहास क्या है इस प्रश्न का मेरा पहला उत्तर यह होगा कि इतिहास इतिहासकार और उसके तथ्यों की क्रिया-प्रतिक्रिया की एक अनवरत प्रक्रिया है, अतीत और वर्तमान के बीच एक अन्तहीन संवाद ।"[1]

इतिहास और साहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है । साहित्य का सम्बन्ध जीवन से है और इतिहास में मानव के जीवन में घटी घटनाओं का वर्णन होता है, साहित्य सत्य सुन्दर और संघर्ष का वर्णन करके मानव को दिशा दिखाने का कार्य करता है । इतिहास मानव के सुख दुख की कहानी है तो साहित्य भी । इतिहास हमें उस अतीत से तादात्म्य स्थापित करवाता है जिसको पढ़कर हम लोग आत्म विस्मृत हो उठते हैं । इस प्रकार इतिहास और साहित्य में सम्बन्ध तो है पर साहित्यकार का सम्बन्ध इतिहास की सम्पूर्णता से नहीं, अपितु इतिहास के काल, घटना और पात्र विशेष से होता है । साहित्य और इतिहास का सम्बन्ध बताते हुए डॉ॰ सुषमा त्यागी लिखती हैं - "इतिहास कटु से कटु सत्य को प्रस्तुत करता है । साहित्यकार इतिहास के नग्न सत्य को वस्त्रालंकार पहनाता है । वह अपनी सुरम्य कल्पना शक्ति के द्वारा ऐतिहासिक सत्य को पाठक के सम्मुख इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि पाठक रसमग्न हुए बिना नहीं रह सकता है । इतिहास बुद्धि सापेक्ष है । साहित्य बुद्धि के साथ-साथ हृदय और आत्मा को भी समान आदर देता है ।"[2] अतः साहित्य

---

1. ई॰एच॰ कार - इतिहास क्या है, पृ॰-21.
2. डॉ॰ सुषमा त्यागी - प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कला, पृ॰-7.

और इतिहास का अटूट सम्बन्ध है लेकिन दोनों में कुछ भिन्नता और अन्तर भी है । इतिहास देशकाल व घटनाओं का नग्नरूप प्रस्तुत करता है तो साहित्य उसमें से किसी विशेष अंश को लेकर उसे रमणीय ढंग से प्रस्तुत करता है । अर्थात साहित्य भावनात्मक सत्य पर अधिक बल देता है, इतिहास कटु सत्य का चित्रण करता है । इस प्रकार साहित्य के माध्यम से जीवन की विविध परिस्थितियों, संघर्षमय जटिलताओं, भावात्मक प्रतिक्रियाओं एवं सम्भावनाओं का जितना सफल वर्णन होता है उतना अन्य विधाओं और अनुशासन में संभव नहीं है । साहित्य समाज का दर्पण होता है जिसमें अनेक घटनाओं का वर्णन होता है । इतिहासकार भी साहित्य की मदद से अपने इतिहास को आगे बढ़ाने का सफल प्रयास करते हैं ।

2. इतिहास और उपन्यास का सम्बन्ध

उपन्यास में इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान है । ऐतिहासिक उपन्यास तो इतिहास के ज्ञान के बिना लिखना असंभव है । इस संदर्भ में डॉ॰ चन्द्रकान्त गर्जे के अनुसार - "इतिहासकार अतीत के व्यक्ति का शुष्क रूप में विवरण प्रस्तुत करता है, इसी शुष्क व्यक्ति को उपन्यासकार उपन्यास में स्थान देता है । ऐतिहासिक व्यक्ति अर्थात मृत व्यक्ति उपन्यास में जाकर जीते-जागते स्वरूप को धारण कर वर्तमान जीवन से सामंजस्य स्थापित कर लेता है ।"[1] अर्थात् इतिहास का ज्ञान ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए आवश्यक है क्योंकि उनका क्षेत्र अन्य उपन्यासकारों से भिन्न है । परन्तु इतिहास का सामान्य अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होता । अगर उपन्यासकार को इतिहास का केवल सामान्य ज्ञान ही है

---

1. डॉ॰ चन्द्रकान्त गर्जे - हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰- 36.

तो वह अपनी कृति में अनेक दोषों व गलतफहमियों को जन्म दे देता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार यदि इतिहास की शुष्कता, नीरसता को दूर नहीं कर सकता तो उसमें ऐसे तत्वों को जरूर जोड़ने की कोशिश करता है जिससे पाठकों को ऐतिहासिक कृति पढ़ने में आनन्द का अनुभव हो । यह आवश्यक है कि उपन्यास में इतिहास की समस्त विशेषताएं समाहित होनी चाहिए जिससे पाठक उपन्यास को पढ़ कर विश्वास कर सके कि यह इतिहास पर आधारित है । लेकिन जगदीश गुप्त इतिहास और उपन्यास में अन्तर बताते हुये लिखते हैं कि - "इतिहास सत्य की खोज करते हुए भी स्वभाव से तथ्योन्मुख एवं तथ्यापेक्षी है, इसीलिये उसमें नीरसता आ जाती है । किन्तु उपन्यास मानवीय सत्य की सरल उपलब्धि और स्थापना में लीन रहता है इसीलिये तथ्यों का बन्धन उसके लिये अनिवार्य नहीं । इतिहासकार केवल दृष्टा है और उपन्यासकार दृष्टा और सृष्टा दोनों ।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की खोज नहीं की जाती है । उपन्यास की ऐतिहासिक घटनाओं के यथार्थ पर विश्वास करना अनभिज्ञता है । इनकी रचना प्रक्रिया की मूल प्रेरणा में अन्तर है । ऐतिहासिक उपन्यासकार अपनी रचना में इतिहास की सभी प्रवृत्तियों को सहज भाव से ग्रहण करता है और अपनी रुचि एवं प्रतिभा के अनुसार इनका उपयोग करता है । इतिहास, मुख्य रूप से उसके लिए रस-सृष्टि का अचूक साधन है । वह उसके द्वारा पाठक के चित को एकाग्र कर लेता है । साथ ही वह इतिहास के आश्रय द्वारा अपने वृत्त तथा कथ्य को प्रामाणिकता प्रदान करता है । वह रचना को भरपूर ऐतिहासिक रंग देकर उसे वर्तमान

---

1. जगदीश गुप्त - आलोचना-उपन्यास अंक निबन्ध - इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार, पृ०-177.

के लिए अधिकाधिक ग्राह्य बनाता है तथा कथ्य को युगविशेष की परिधि से उठाकर सार्वकालिक मानवीय सत्य का रूप देने का प्रयत्न करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों का अध्ययन उसकी कला को सप्राण बनाता है। प्रचलित अप्रचलित तथ्यों का अन्तर्दर्शन कर उन्हें नित्य नूतन प्रयोगों से मंडित करना उसे सर्वाधिक प्रिय है। इन बातों में ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहासकार के सन्निकट है। शशिभूषण सिंहल के अनुसार - "ऐतिहासिक उपन्यासगत युगीन कल्पना-पुष्ट तथ्यावली से अद्भुत मानव चरित्र की गाथा है।"[1] लेकिन इनका कथन इतना सत्य नहीं है। अगर कल्पना या उद्भुत चरित्रों को ही देखे तो उसको इतिहास न कह कर एक मनोरंजन करने वाली कहानी या उपन्यास कहने में कठिनाई नहीं होगी। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों में मुख्य घटना व पात्र ऐतिहासिक होने के साथ उपन्यासकार अपनी कल्पना से कुछ तथ्य जोड़ देते हैं। इसलिए इन उपन्यासों को पूर्णरूप से न ऐतिहासिक कह सकते हैं और न कल्पना उद्भूत उपन्यास।

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का आधिक्य रहता है किन्तु इस कल्पना का आधार भी ऐतिहासिक सत्य ही होता है। ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यत: इतिहास है बाद में उपन्यास। इतिहास लेखन में भी कल्पना और अनुमान का सहारा लिया जाता है। "तथ्य" सदा "सत्य" नहीं होता। मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय से निकलने पर ही वह सत्य का रूप धारण कर सकता है। इतिहास-लेखक कम से कम अनुमान का सहारा लेना चाहता है, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक तथ्य को साधन बनाकर उसे रसमय बनाने के लिये कल्पना का यथेष्ट आश्रय लेता है।

---

1. शशिभूषण सिंहल - उपन्यास का स्वरूप, पृ.-72.

उपन्यासकार इतिहासकार नहीं होता अतएव उसे कम से कम यह सुविधा होती है कि वह अपने तथ्यों को इस रूप में प्रस्तुत करे कि उसके लेखन का उद्देश्य अधिक से अधिक स्पष्ट हो जाय। इतिहासकार तिथियों, घटनाओं तथा परिणामों का ठीक-ठीक विश्लेषण करता है किन्तु उपन्यास में तिथियों तथा घटनाओं की सत्यता पर अधिक बल न देकर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर ही जोर दिया जाता है।

अतः इतिहास में जहाँ केवल सत्य के लिये स्थान होता है, वहीं ऐतिहासिक उपन्यास में सत्य और शिव दोनों की मर्यादा का पालन करना पड़ता है। प्रमुख उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने ठीक ही लिखा है - "जिन स्थानों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास लेखक भूली या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है।"[1] वस्तुतः यह कार्य इतना आसान नहीं होता। इसका कारण लेखक को पूर्ण पूर्वग्रह से मुक्त होने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और लेखक को भूतकाल में ले जाकर उस समय में घटी-घटनाओं से अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। जिसका उपन्यास से सम्बन्ध हो। ऐसे करने से ही उपन्यासकार भूत पर वर्तमान को हावी नहीं होने देता है।

इस प्रकार साहित्यकार अपने उपन्यास में अतीत में घटी घटनाओं का सम्पूर्ण वर्णन करके एक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने में कामयाब हो जाते हैं। सभी प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास का आश्रय ग्रहण करते हैं। यह दूसरी बात है कि कहीं इतिहास का शुद्ध रूप उपन्यास का मूलाधार और प्रेरणा स्रोत बनता है तो कहीं कल्पना का आधार ग्रहण करके लेखक लोक प्रचलित मान्यताओं, विश्वासों और किंवदन्तियों के

---

1. ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण - नये पत्ते, जनवरी और फरवरी, 1953.

आधार पर अपने उपन्यास की रचना करता है । किन्तु यह सत्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि इतिहास की मूलचेतना से अनुप्राणित रहती है ।

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के समान केवल बाह्य वस्तु का वर्णन नहीं होता है । इतिहासकार घटनाओं तिथियों पर ज्यादा ध्यान देता है, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के तथ्यों के साथ-साथ हृदय में उठने वाले उत्थान-पतन का भी उपन्यासकार वर्णन करता है । उपन्यास और इतिहासकार का सम्बन्ध नजदीक का होते हुये भी कुछ मुद्दों पर अलग विचार व सम्बन्ध होता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास से पूर्ण सम्बन्ध रखते हुये भी अपनी कल्पना का प्रयोग करके अपना स्थान अलग बनाने का प्रयत्न करता है । इतिहास के पात्रों को उपन्यास के पात्र बना सकते है, लेकिन इतिहासकार की दृष्टि विशुद्ध वैज्ञानिक होती है किन्तु उपन्यासकार के साथ ऐसा कोई बन्धन नहीं होता है । इसी कारण उपन्यास में लेखक की कल्पना के साथ इतिहासकार के लिखे अंश को भी ज्यादा लेना अनिवार्य होता है ।

3. कल्पना का स्वरूप

साहित्य का कल्पना जगत से सदा ही अटूट सम्बन्ध रहा है । कल्पना मानव मस्तिष्क के उतार-चढ़ाव की वह शक्ति है, जिसमें विचारों के साथ आकाश लोक में विचरण कर सकते हैं और अंधकारमयी छाया का स्वरूप मन में ला सकते हैं । इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । अनेक विद्वानों ने उसकी परिभाषा अलग-अलग ढंग से करने का प्रयत्न किया । अरस्तु ने कल्पना की अपूर्व शक्ति को स्वीकार किया और बताया कि इसके बिना मनुष्य किसी भी धारणा को वहन करने में असमर्थ सिद्ध होता है ।

कॉलरिज ने कल्पना को सर्वोत्कृष्ट शक्ति के रूप में ही स्वीकृति प्रदान नहीं की वरन् उसे मानवीय क्रियात्मकता का केन्द्र माना । आई॰ए॰ रिचर्डस ने कल्पना के ऐन्द्रिक बोध की महत्ता उद्घोषित की है । विदेशी लेखकों की कल्पना के लिए दी गई परिभाषा यह सिद्ध करती है कि मानव-जीवन में कल्पना अनिवार्य है । मनुष्य में अगर कल्पना है तो उसको यथार्थ रूप में परिणत करने का प्रयत्न कर सकता है ।

भारतीय लेखकों ने भी कल्पना पर अपने-अपने मत बताये हैं जिसमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतीय काव्यशास्त्र में कल्पना की प्रमुख भूमिका को स्वीकार किया है । वे कल्पना को प्रत्यक्षाश्रित एवं वस्तुपरक मान कर चले हैं । कल्पना का आधार स्मृति है और स्मृति का आधार है भौतिक जगत का प्रत्यक्ष ज्ञान । प्रत्यक्ष ज्ञान से अर्जित अनुभव स्मृति की धरोहर होते हैं । जिनका आवश्यकतानुसार प्रयोग करके कल्पना अनुभूत विषयों का पुनर्निर्माण करती है । स्मृति को यदि विशुद्ध स्मृति कहें तो दूसरी को मिश्रित स्मृति कहना उपयुक्त होगा । मिश्रित स्मृति भी प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होती है । इस द्वितीय कोटि की स्मृति का आधार लेकर कल्पना अपनी सृष्टि रचती है । इस कल्पना में प्रत्यक्षानुभूति निरंतर बनी रहती है । इस कल्पना का सर्वाधिक प्रयोग ऐतिहासिक उपन्यासों में होता है । स्मृति और अनुमान के सहयोग से रचित कल्पना का उपयोग ऐतिहासिक रोमांसों में विशेष रूप में किया जाता है । वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इस कल्पना का उपयोग ऐतिहासिक रोमांसों में विशेष रूप में किया गया है । वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इस कल्पना का व्यापक रूप दृष्टिगोचर होता है । डॉ॰ मक्खनलाल शर्मा ने लिखा है - "ऐतिहासिक उपन्यास का काम बिना कल्पना चल ही नहीं सकता है । कल्पना को जीवित बनाने

वाली शक्ति संवेदना है ।"[1] कल्पना का जन्म होता है संवेदना से जो कि लेखकीय मानस जगत से अनिवार्यतः जुड़ी होती है । यही वह बिन्दु है जिससे भूत वर्तमान और भविष्य को भी प्रश्रय मिलता है । पियर्स साइक्लोपीडिया {1921} के सम्पादक ने कल्पना को परिभाषित करते हुए लिखा है - "कल्पना पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की मानस क्रिया या शक्ति है । यह शक्ति न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है । मनुष्य के अगणित कार्य-व्यापारों जैसे विज्ञानवेत्ता के सिद्धान्त परिकल्प कलाकार के कला-सृजन इतिहासकार के इतिहास लेखन आदि में कल्पना का महत्वपूर्ण योग रहता है ।"[2]

"Imagination is the creative power and faculty enabling the mind to picture to itself scences and persons of which a person may hear or read, and in its more intense form constitutes the genius by which the poet, the novelist, the historian, the painter and the musician attain their idealisation".

निःसंदेह ज्यों-ज्यों विविध सन्दर्भों की ओर देखते हैं हमारे सामने कल्पना के भी विविध रूप दिखाई देने लगते हैं । इतिहास मिश्रित कल्पना, यथार्थ पर आश्रित कल्पना, पौराणिक कल्पना आदि-आदि । परन्तु एक बात जरूर उल्लेखनीय है कि यथार्थ ही कल्पना को ज़मीन प्रदान करता है ।

1· डॉ· माखनलाल शर्मा - ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास,पृ·-33.
2· गोविन्दजी - हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, पृ·-133.

चाहे नाटककार हो, चित्रकार हो या मूर्तिकार हो, प्रत्येक के लिए कल्पना शक्ति की तीव्रता का बोध होना अनिवार्य रहता है। कलाकार के लिए संवेदना की तीव्रता का बोध तो कल्पना की क्रोड में ही पनपता है और रचना के भावपक्ष को सुरुचिपूर्ण बनाता है। प्रत्येक अनुभूति के संप्रेषण हेतु कल्पनाशक्ति का योग बेहद जरूरी है ताकि रचना की अभिव्यक्ति में सार्थकता आए। कल्पना को लेकर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी बेबाक और बुद्धिपरक मीमांसा इस तरह प्रस्तुत की है जिसमें कल्पना के रेशे-रेश खुल जाते हैं। उनका मानना है - "प्रत्यक्ष रूप विधान के उपादान से ही कल्पित रूप विधान होता है। जन्मान्ध अपने मन में रूप विधान नहीं कर सकते। जिस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभूति से कलानुभूति को एकदम अलग कहने की बात यूरोप में चली, उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप विधान से कल्पित रूपविधान को असम्बद्ध करने की रूढ़ि प्रतिष्ठित हुई। कल्पना की एक निराली दुनिया कही जाने लगी और कवि लोग दूसरी सृष्टि बनाने वाले विश्वामित्र हुए। थोड़ा विचार करने पर यह उक्ति वस्तुपरक ही ठहरती है। सारे वर्ण और सारी रूपरेखाएं, जिनसे कल्पित रूप विधान होता है, बाह्य जगत के प्रत्यक्ष बोध से प्राप्त हुई हैं ऐसी दशा में यह कहना कि प्रत्यक्ष रूप विधान से कवि के कल्पित रूप विधान का कोई सम्बन्ध नहीं, बात बनाना ही माना जायेगा।"[1]

यहाँ एक बात और भी ध्यातव्य है कि कल्पना व स्मृति का अटूट सम्बन्ध है। स्मृति का आधार जगत तो भौतिक जगत होता है। लेकिन कल्पना काल मुक्त होकर विचरण करती है। ये जरूर है कि

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - रस मीमांसा, पृ.-299-300.

स्मृति के सहारे व्यक्ति का मनोजगत बिम्बों को कल्पना जगत में बिठाता है । स्मृति प्रयोग द्वारा कल्पना अनुभूतियों को पुनर्सृजित कर सकती है ।

यही वह बिन्दु है, जहाँ पर साहित्य में कल्पना की सही उपादेयता प्रकट होती है । कल्पना की सही पकड़ तो तभी साकार रूप ले सकती है, जबकि उसमें यथार्थ भूमि के पद चिह्न हों । तात्पर्य यही है कि यथार्थ जगत के अध खुले पत्रों को खोलने हेतु कल्पना एक ऐसी सीढ़ी का कार्य करती है जिसमें मंजिल आसान और बेहद सुगम हो जाती है ।

लेखक अपने मानस जगत में कई तरह की अनुभूतियों को लिए जब लिखता है तो उन अनुभूतियों को साकार करने हेतु एवं साहित्यकता का स्वरूप प्रदान करने हेतु कल्पना जगत का सहारा ही एक मात्र ऐसा सहारा होता है जबकि लेखक अतीत एवं वर्तमान के चित्रों को चित्रांकित कर सके । एक लेखक में कल्पनाशक्ति की तीव्रता जितनी अधिक होगी उसकी संवेदनाओं में उतनी ही तीव्रता से चित्र बनते जाऐंगे । ऐसे चित्र वस्तुत: बाह्य जगत के प्रत्यक्ष बोध से ही बनते हैं । जाहिर है कि कल्पना का सम्बन्ध वस्तु जगत से होता ही है, तभी वास्तविक जगत से प्राप्त अनुभूतियां कल्पना द्वारा साकार रूप ले पाती हैं । हमारे और अतीत के

बीच जो काल का व्यवधान है वह भी कल्पना द्वारा पूर्ण होता है और इस प्रकार अतीत हमारे इतना निकट आ जाता है कि हम उसे इस प्रकार देखने लगते हैं जैसे हम स्वयं को या अपने चारों ओर के परिवेश को देखते हैं ।

4· <u>ऐतिहासिक कल्पना</u>

उपन्यासकार के लिए कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है । कहानी में उत्सुकता लाने, मानवीय अनुभूतियों तथा पात्रों के चारित्रिक मूल्यों को प्रस्तुत करने,मार्मिक प्रसंगों और घटनाओं को स्मरण रखने में कल्पना का योग रहता है । कल्पना उपन्यासकार की रचनात्मक प्रतिभा को आगे बढ़कर कार्य करने के लिए भूमि प्रस्तुत करती है । उपन्यासकार कल्पना के द्वारा ही ऐसे प्रसंगों तथा मार्मिक स्थलों एवं घटनाओं की सृष्टि करने में सफल हो पाता है ।

लेखक अपनी रचना में कल्पना द्वारा ही घटना वर्णन एवं मार्मिक स्थलों का सृजन करके अपने विचार प्रकट करता है । कल्पना का प्रयोग साहित्य में हमेशा साधन के रूप में ही होता आया है । जो कल्पना के विषय में अतीत में थे वे आज नहीं रहे । आज का लेखक कल्पना में जादुई पौराणिक प्रसंगों को नहीं ला सकता । विज्ञानवादी युग के नाते आज का लेखक अपने कल्पना जगत में उस दृष्टिकोण को वरीयता देता है जिसमें आज के वस्तु जगत की आवाज मौजूद हो । युगीन मूल्यों से परे कल्पना जगत की सृष्टि संभव ही नहीं । स्पष्ट है कि कालक्रम के अनुसार कल्पना का स्वरूप और आधार बदलते रहते हैं । कल्पना जगत के बिन्दु ही समयानुसार परिवर्तनशील रूप ग्रहण करते चलते हैं । औचित्यपूर्ण व संगतिपूर्ण कल्पना का ही महत्व संभव है, इससे इतर नहीं । वर्मा जी स्वयं स्वीकार

करते हैं कि - "अनेक कालों की सच्ची घटनाओं का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मैं इस युग के सम्बन्ध की घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूँ । इस तरह वर्मा जी सभी घटनाओं के साथ ऐतिहासिक कल्पना का समावेश करते हैं ।

5• ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और ऐतिहासिक कल्पना का योग

ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का अनोखा मेल देखने को मिलता है । वे भूतकालीन घटनाओं, पात्रों या कि चरित्रों में अपनी तीव्र कल्पना दृष्टि से साकार रूप दे सके । वे ऐतिहासिक पात्रों को अपनी कल्पना शक्ति द्वारा ही तो सजीवता और जीवंतता प्रदान करते हैं । नीरस से नीरस इतिहास के प्रसंगों को लेखक रोचकता प्रदान करता है । तथ्यों की प्रस्तुति में कलात्मक अभिव्यक्ति का आभास भी कल्पना द्वारा संभव है ।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास एवं कल्पना का योग कहाँ तक है इस सन्दर्भ में नरेन्द्र कोहली के अनुसार - "जो व्यक्ति इतिहास की प्रतिष्ठा तथा सत्य के अन्वेषण का प्रण लेकर साहित्य सृजन करे, प्रत्येक घटना की ऐतिहासिक प्रामाणिकता प्रस्तुत करे तथा औपन्यासिक सौंदर्य की चिन्ता इस कारण त्याग दे क्योंकि उससे ऐतिहासिक यथार्थ की हानि होती है, वह अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों को अपनी कल्पना से आवेष्ठित कर दूषित चित्रण कदापि नहीं करेगा ।"[1] लेकिन वर्माजी ने माधव जी सिंधिया में इतिहास और कल्पना का अनोखा मेल

1• नरेन्द्र कोहली - हिन्दी उपन्यास-सृजन और सिद्धान्त, पृ•-69.

दिखाया । स्वयं वर्माजी लिखते हैं - "माधव जी सिंधिया का जीवन-चरित्र न लिखकर उपन्यास लिखने का संकल्प मैंने इस कारण किया कि बड़ी मात्रा में कल्पना के लिए गुंजाइश मिल गयी परन्तु मैंने कल्पना को भी इतिहास मूलक रखा है ।"[1] ऐतिहासिक कल्पना को और अधिक समझाते हुए डॉ॰ गोविन्द जी ने ऐतिहासिक उपन्यासकारों के बारे में लिखा है - "अतीत को साकार करने के प्रयत्न में ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक सत्य के प्रति जागरूक होते हुए भी तथ्यों एवं घटनाओं से इधर-उधर हो जाना पड़ता है और काल्पनिक घटना प्रसंगों की उद्भावना भी करनी पड़ती है । कारण कि उसके लिए वास्तविक घटनाएं अथवा तथ्य साध्य नहीं साधन होते हैं जिनके भीतर निहित मूल-इतिहास की भाववृत्ति को चित्रित करना ही उसका लक्ष्य होता है और उसके इस प्रयास में कल्पना का विशेष योग रहता है ।"[2] ऐतिहासिक कल्पना तथा कथावस्तु में चरित्र निर्माण का प्रश्न हो या पात्रों के अन्तर्वाह्य जीवन संघर्ष को निरूपित करना हो या वातावरण व देशकाल को सहेजना हो, सर्वत्र ही कल्पना का सहारा जरूरी है । साहित्यकार बिना कल्पना के पंगु हो जाता है और बिना कल्पना के सृजित रचना में साहित्यकता का गुण हो नहीं सकता ।

अतः यहाँ यह साफ हो जाता है कि कल्पना में भी उसी वस्तु का मिश्रण होता है जिसका अस्तित्व इस लोक में मौजूद हो । जो साहित्यकार अपनी रचना में यथार्थ के चित्रों को सही ढंग से प्रस्तुत करता है वह अपने युग की आवाज को उठाता है । हाँ ! यह जरूर है कि साहित्यकार अपनी लेखनी से तत्कालीन युग की समस्याओं व संघर्षों का यथार्थ चित्रण तो करता है । साथ-साथ जन-संघर्ष की वेदना व पीड़ा के

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - माधवजी सिंधिया-परिचय, पृ॰-4.
2. डॉ॰ गोविन्दजी - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, पृ॰-107.

प्रति अपनी निरपेक्ष दृष्टि को सहानुभूतिपरक व मानवतावादी ढंग से सुन्दर रचना करता है जिससे वर्तमान की कटुस्थितियों का खुलासा भी हो और समाधान प्रेरित नैतिकतावादी दृष्टिकोण भी । यही वह बिन्दु हैं जहाँ पर साहित्य में समाज का चित्रण परिष्कृत रूप में दिखाई देता है ।

अत: उपन्यासों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना पर अधिक जोर दिया जाता है । लेकिन इतिहास और कल्पना के प्रयोग से ही रचना का सौन्दर्य बढ़ जाता है । जहाँ इतिहास केवल इतिहास ही होगा तो वो उपन्यास नहीं बन सकता और जहाँ कल्पना अधिक होगी तो उसे ऐतिहासिकतापूर्ण उपन्यास कहना सही नहीं होगा । अत: दोनों के समान मिश्रण से ही उपन्यास में रोचकता, ऐतिहासिकता और सुन्दरता आती है ।

इतिहास की पीठिका पर सृजित उपन्यास ही ऐतिहासिक उपन्यास कहलाते हैं जिनमें उपन्यासकार कथावस्तु तो इतिहास के पात्रों में से लेता है लेकिन उसके लिए उपादान अपनी वैयक्तिकता और कल्पना को साथ लेकर बनाता हुआ चलता है । नि:संदेह उपन्यासकार इतिहास के बल पर यथार्थ के बिन्दुओं या घटनाओं को तो चुनता है लेकिन उस यथार्थ को वास्तविकता का आभास देने हेतु एवं अपनी सर्जनाशक्ति के सहारे कल्पना के नये आयामों की जगह देता हुआ कृति में प्रामाणिकता का एहसास जगा देता है । साहित्य में हम कोरे इतिहास जैसे तथ्यात्मक वर्णन तो नहीं कर सकते । यही कारण है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में स्थूल रूप से ऐतिहासिक तथ्यों से अलग हटकर उन्हीं ऐतिहासिक वर्णनों का बिम्बात्मक ढंग से चित्रण होता है । तत्कालीन देशकाल का वर्णन लेखक इतनी जीवंतता के साथ करता है कि सारा "इतिहास रोचक ढंग से समस्त चित्रों के साथ सामने खड़ा हो जाता है । इतिहास विषयक वातावरण निर्माण हेतु लेखक सामग्री तो जरूर अतीत से लेता है लेकिन पात्रों के चरित्रांकन में अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे काफी संशोधन करके उसे रोचक एवं साहित्यिक

"टच" देकर कृति को प्रामाणिक व मार्मिक बना देता है । यही कारण है कि इतिहास के विषय पर लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यास समस्त सामाजिक राजनीति के एवं निजी जीवन के चित्रण के साथ-साथ लेखक के निजी व्यक्तित्व को भी उजागर करते चलते हैं । राष्ट्र से सम्बद्ध ऐतिहासिक प्रसंगों के उद्घाटन में भी लेखक अक्सर सामाजिक प्रश्नों को भी जोड़ता चलता है ताकि इतिहास के पात्रों का सर्वांग चित्रण हो सके एवं आज की आवाज भी ध्वनित हो सके । बहुधा इतिहास के पात्रों के बाहरी जीवन का लेखा-जोखा तो लेखकों को प्राप्त हो जाता था । लेकिन पात्रों की अन्दरूनी जिन्दगी अक्सर अत्यन्त रहस्यमयी बनी रह जाती है ।

उपन्यासकार वर्मा जी के उपन्यास 'झांसी की रानी' का जिक्र करे तो यह स्पष्ट होता है कि लेखक रानी से जुड़े बहुश्रुत तथ्यों को तो बाहरी प्रसंगों को चित्रित करने में सफल हुये लेकिन उनके मन के अन्दरूनी भागों पर प्रकाश तो तभी डाल सकते थे जब लेखक के अन्दर कल्पना शक्ति अधिक हो । वर्मा जी ने लक्ष्मीबाई के मनोजगत का असाधारण रूप से वर्णन किया, जाहिर है कि वे एक कुशल ऐतिहासिक उपन्यासकार सिद्ध हुए हैं, यह एक सत्य है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना आखिर होती ही क्यों है ? ज्यों ही हम इस प्रश्न का सामना करते हैं हमारे सामने हमारा अतीत तैरने लगता है । अतीत के प्रति जिज्ञासावृत्ति ही वह प्रेरक शक्ति है जो एक रचनाकार की इतिहास के प्रति उन्मुख बनाती है । पुरातन लोगों के प्रति जिस सहज जिज्ञासावृत्ति से मन जाता है उसे अभिव्यक्ति का जामा पहनाने हेतु ही ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन होता है । इस विषय में डॉ॰ सत्यपाल चुघ के विचार बेहद उल्लेखनीय हैं - "इतिहास अतीत को देखने के लिए एक दुरबीन के समान है, जो दूर की वस्तु को भी दर्शन

सम्भव बनाती है और ऐतिहासिक उपन्यास एक पुल है जो वर्तमान और विगत की खाई को पाट देता है वह इतिहास के उस महाकाव्यात्मक स्वरूप को सामने लाता है जब हम सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक मनुष्य के समान स्पंदन सुन पाते हैं या उनके "वन लाईफफिसिपल" का अनुभव कर पाते हैं । ... इस तरह ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को भी एक प्रेरणा माना जा सकता है ।"[1]

जैसाकि पहले भी स्पष्ट किया है कि ऐतिहासिक उपन्यास ऐसी विधा है जिसमें एक ओर तो इतिहास होता है और दूसरी ओर औपन्यासिक के गुण समेटे साहित्यकता । यहाँ ऐतिहासिक उपन्यास विषयक कुछेक परिभाषाओं को दिया जा रहा है जिनमें स्पष्ट किया गया है कि आज का साहित्य ही कल जब इतिहास के पात्रों में सिमट जाएगा तो वही ऐतिहासिक उपन्यास हेतु जमीन तैयार करेगा । अर्थात वर्तमान जीवन ही अतीत बन जाता है और अतीत को जाने बिना वर्तमान का अध्ययन सम्भव नहीं । ठीक इसी तरह अतीत कालीन इतिहास के सम्यक ज्ञान के बिना आज के साहित्य का स्वरूप भी निर्मित नहीं हो सकता क्योंकि इतिहास की गवेषणात्मक ढंग से व्याख्या करने पर आज की युगीन समस्याओं हेतु कुछ के सुझाव व युक्तियां मिल सकती हैं जोकि हमारा मार्ग प्रशस्त करती हैं साथ में इतिहास में यानि विगत में हुई गल्तियों को न दोहराने हेतु संकेत भी देती चलती है । जैसा कि डॉ॰ चलसानि सुब्बाराव ने लिखा है - "ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने ऐतिहासिक उपन्यास के द्वारा इतिहास की शिक्षापूर्ण घटनाओं को मांसल

---

1. डॉ॰ सत्यपाल चुघ - ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-17.

बनाकर अतीत जीवन का चित्र वर्तमान के सामने बड़ी स्फूर्ति और सजगता से उपस्थित कर सकता है, चूँकि उसे इतिहास का आधार लेकर तत्कालीन समाज व्यवस्था की गतिविधि का परिचय देना है।"[1]

यह सत्य है कि ऐतिहासिक हो या कि कोई सामाजिक उपन्यास हरेक के मूल में सामाजिक चेतना ही प्रमुख रूप से कार्य करती है। ऐतिहासिक उपन्यास की तो एक विशेषता यह भी है कि चूँकि उसमें अतीत कालीन समाज के विभिन्न वैयक्तिक जातीय व सामाजिक जीवन का चित्रण करना होता है। इसी कारण लेखक तत्कालीन समाज का सांस्कृतिक पक्ष भी प्रस्तुत करता है। निःसंदेह इसके मूल में सामाजिक जीवन चेतना तो मौजूद रहती ही है। ऐतिहासिक उपन्यास को परिभाषित करते हुए आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "साधारणतः ऐसे उपन्यास जिनमें अतीतकालीन पात्र वातावरण और घटनाओं के ज्ञाततथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवंत बनाकर रखने का प्रयास होता है - "ऐतिहासिक उपन्यास कहे जाते हैं।"[2]

सारांश में कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में विभिन्न प्रकार के जिन पात्रों व घटनाओं का वर्णन होता है, उनमें से ऐतिहासिक वातावरण व तत्कालीन देश-काल की स्थितियों का होना तो अपरिहार्य है ही। भले ही लेखक अपनी सुविधा हेतु सृजनात्मक क्षणों में पात्रों में नए-नए रंगों को भरे और कल्पना शक्ति का प्रचुरता से प्रयोग भी करे किन्तु घटना प्रसंगों में इतिहासकालीन चित्र तो उभरने ही चाहिए। यही वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा हो सकती है कि

---

1. डॉ. चलसानि सुब्बाराव - हिन्दी और तेलगु के स्वातंत्र्यपूर्व ऐतिहासिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन, पृ.-336.
2. डॉ. सत्यपाल चुघ - ऐतिहासिक उपन्यास, पृ.-23.

TH-4125
Thesis
O,152,3,M891:g
152 N2

जिसमें घटना पात्रों व परिस्थितियों का समुचित तालमेल इतिहास की नींव पर बैठकर हो लेकिन वर्णन का ढंग साहित्यिकता लिए हुए हो ।

ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप की समुचित विवेचना के बाद विश्लेषण हेतु एक प्रश्न उभरता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना किन-किन रूपों में किस तरह मुखरित होती है ? या कि ऐतिहासिक कल्पना का प्रयोग किस तरह होता है ?

जब ऐतिहासिक उपन्यासों के संदर्भ में हमारा ध्यान कल्पना-शक्ति पर जाता है तो एक बात स्पष्ट होती है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना का प्रयोग विगतकालीन विवरणों के अनुरूप ही होता है । किसी भी तरह की कल्पना को यहाँ आधार नहीं मिलता । यूँ कल्पना शून्य तो कोई भी कृति नहीं होती लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए कल्पना के आयाम अन्य उपन्यासकारों की तरह स्वतंत्र नहीं होते । पात्र व घटनाएँ तो विगत की गोद से लेखक को मिलती है - कथावस्तु भी लेखक अतीत से जुटाता है - तो अब कल्पना कहां रह जाती है ? यहां यह बात काफी वज़नी है कि ऐतिहासिक यथार्थ को वर्तमान से जोड़ने हेतु भी लेखकीय कल्पनाशक्ति कार्य करती है । लेखकीय विचार प्रणाली, चिन्तन शैली व समकालीन सूत्रों की सर्जना हेतु तो लेखक अपनी कल्पना से ही काम लेता है । बस अन्तर सिर्फ यह है कि कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि और विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि में फर्क अवश्य रहता है । रचनाकार इतिहास से सांचा ही तो सिर्फ लेता है जिसका पुनर्निर्माण व पुन सष्टि तो वह अपनी कल्पना के आधार पर ही करता है ।

कोरे और सीधे सपाट ढंग से तो अतीत कालीन चित्रण को लेखक उभार नहीं सकता इसीलिए वह अपनी कल्पनाशक्ति से बहुविध

परिस्थितियों व पात्रों का प्रयोग करके कृति में जीवंतता लाता है । यहाँ डॉ॰ सत्यपाल चुघ ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए इसी बात पर जोर दिया है कि - "ऐतिहासिक उपन्यासकार राजनीतिक क्षेत्र की बड़ी-बड़ी विभूतियों पर दृष्टि केन्द्रित करके नहीं रह जाता । सामान्य जनता की धड़कनों को भी सुनता है और लोकचित्रण के लिए लोक उपकरणों, जनश्रुतियों, किंवदन्तियों, लोक-कथाओं, लोकगीतों आदि का आश्रय लेता है यही नहीं उसे समाज चित्रण के लिए अनेक काल्पनिक पात्रों की भी सृष्टि करनी पड़ती है ताकि उपन्यास किसी गौरव विभूति की व्यक्तिगत कहानी ही बनकर न रह जाए और सामान्य युग मानव की कहानी भी बन सके ।"[1]

यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार कथावस्तु में कल्पना को कहाँ-कहाँ प्रयुक्त करता है । वातावरण को सहेजने में भाषा एवं देशकाल के समुचित चित्रण में उपन्यासकार युगीन सापेक्षता को कल्पना से ही तो सजाता है । उस युग को साकार करने में लेखक तमाम लोक-परम्पराओं का वर्णन करता है । पात्रों की सापेक्षता में बोलचाल में भी वह क्षेत्रीय या देशज भाषा का प्रयोग करता है । कहीं-कहीं वह ऐतिहासिक तथ्यों में भी कांट-छांट करके औपन्यासिकता से भरता है तो कभी सजीवता लाने हेतु पात्रों के मनोगत भावों को उत्सुकतापूर्वक हम तक भावनात्मक ढंग से संप्रेषित करता है एवं कथा को कई तरह से विश्वसनीय बनाने हेतु लेखक बहुविध वर्णनों में प्राकृतिक व भौगोलिक चित्रण भी कल्पनाशक्ति के सहारे ही करता है । पुराने किले, प्राचीन स्तंभ, गावों, जंगलों, नदी व तमाम तरह की इमारतों का पूरा भौगोलिक, मानचित्र चित्रित कर देना तो ऐतिहासिक उपन्यासकार

1· डॉ॰ सत्यपाल चुघ - ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-29.

की कल्पना शक्ति का ही कमाल है । इस दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा ने तो बुंदेलखण्ड के पत्त-पत्ते को साकार कर दिया है एवं रेशे-रेशे का बहुविध चित्रण अपने उपन्यासों में किया है ।

इस तरह अपनी कला की सफलता हेतु लेखक ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास व कल्पना के संगम द्वारा प्रभावी ढंग से अपनी रचना को सफल बनाते हैं यूँ तो ऐतिहासिक उपन्यासों का कई तरह से वर्गीकरण भी किया जाता रहा है । इतिहास को प्रधान बनाकर लिखे गए उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास हैं तो इतिहास और कल्पना को समान रूप से प्रयोग करके लिखे गए मिश्रित उपन्यास ही कहे जाते हैं जिनमें लेखक ने कल्पना और इतिहास का प्रयोग समन्वित रूप में किया है । "मृगनयनी" इसका उदाहरण है । परन्तु उनके कुछ उपन्यास तो विशुद्ध इतिहास विषयक गरिमागान से भरपूर हैं जैसा कि झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और अहिल्याबाई आदि । इनमें कल्पना की न्यूनता और इतिहास की प्रधानता से ही जाहिर है कि अतीत में सौन्दर्य एवं जीवन लाने का कार्य तो कल्पना रूपी पंख ही कर सकते हैं । लेखक चतुरसेन शास्त्री ने लिखा - "यह प्रकट है कि ऐतिहासिक उपन्यास और कहानियों में ऐतिहासिक तथ्य होते हैं । वे विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं । उनमें बहुत कुछ कल्पना और विकृति मिली होती है । पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उपन्यास काव्य या कहानी को पढ़कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे । ऐसी पुस्तकों में तो इतिहास के स्थान पर केवल "इतिहासरस" की ही प्राप्ति होगी ।"[1]

यही वह सार-रस है जो कि ऐतिहासिक उपन्यास विषयक साहित्यिकता को दर्शाती है । अंग्रेजी विद्वान एच॰ बटरफील्ड ने अपनी

1॰ चतुरसेन शास्त्री - वैशाली की नगरवधू, पृ॰-775.

"हिस्टोरिकल नॉवल" नामक पुस्तक में लिखा है - "जब हम इतिहास का अध्ययन करते हैं और यदि केवल महान् व्यक्तियों को ही रंगमंच पर गौर्वान्तक मस्तक लिये आते तथा जन-जीवन में भाग लेते देखने की इच्छा नहीं करते वरन् ग्रामीण प्रदेश के समुज्ज्वल जीवन को अनेक मानवीय संस्पर्शों से युक्त भी देखना चाहते हैं अतीत के विशद जीवन को भी पकड़ना चाहते हैं तो इसके लिए आवश्यक है कि इतिहास को अप्राप्तव्य मानवीय कार्यव्यापारों एवं कल्पना से परिपुष्ट एवं सजीव बनाया जाय।"[1]

इस तरह ऐतिहासिक कल्पना की महत्ता अक्षुण्ण है। इतिहास विषयक घटनाओं में जहाँ कहीं भी अपूर्णता या अधूरेपन का भार होता है उसे हमारी कल्पनाशक्ति पूरित कर देती है। विगत और वर्तमान के बीच के पाटों को भी कल्पना पूरा करती है, एवं कालगत दूरियों को एकदम करीब करने में कल्पना का ही हाथ रहता है। हमारा अतीत एक तो कल्पना के इतिहास बोध के सम्यक मिश्रण से रोचक बन जाता है तो दूसरा अतीत वर्तमान के निकट तो सिर्फ कल्पनाशक्ति के सहारे ही खिचता है। तब हमारे अपने ही परिवेश के दर्शन सर्वत्र नज़र आते हैं। कहने का मतलब यही है कि इतिहास से सिर्फ विवरण और तथ्य ही ऐतिहासिक उपन्यासकार को मिलते हैं किन्तु उन विवरणों को चित्रगत बिम्बों में भरने हेतु एवं अतीत व वर्तमान की खाई को पाटने हेतु कल्पना ही वह सेतु है जोकि काल के समूचे खण्डों को प्रवाह के रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम है। उपन्यासकार की मानसिक प्रज्ञा का यहाँ बेहद महत्व है, जो कि सामान्य को विशिष्ट बनाकर अतीत के चित्रों को पुनर्सृजित करने में सफल हो सके।

---

1. Butter Field - The Historical Novel, P.17

इस प्रकार इतना तो स्पष्ट हो ही चुका है कि इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासकार में कितना फर्क है । एक तो तथ्यों को स्पष्ट करता चलता है तो दूसरा कलात्मक ढंग से चित्रगत वर्णन प्रस्तुत करता है । जहाँ कहीं पर भी इतिहासकार इतिहास की धुंधली पड़ती रेखाओं में गवेषणात्मक दृष्टि नहीं डाल पाता और "सत्य" भी छिपने लगता है तो वहीं पर ऐतिहासिक रचनाकार सफल होता है क्योंकि वह अतीत बोध को प्रभावी बनाने हेतु कल्पनाशक्ति का प्रयोग जो करता है । कविवर रामधारी सिंह दिनकर की ये पंक्तियां यहाँ उद्धृत करने योग्य है कि - "इतिहास की यह झिलमिली बुद्धि को कुण्ठित और कल्पना को तीव्र बनाती है उत्सुकता में प्रेरणा भरती है और स्वप्नों की गांठ खोलती है । घटनाओं के स्थूल रूप को कोई भी देख सकता है, लेकिन उनका अर्थ वही पकड़ता है जिसकी कल्पना सजीव हो ।"[1]

इससे यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक कल्पना कहां तक एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं । रचनाकार का दायित्ववहन करने हेतु ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की मूल चेतना को बचाने का कार्य करता है । बस यही मुख्य आधारभूमि है जोकि लेखक में कथावस्तु हेतु उत्स व प्रेरक शक्ति बन जाती है । शेष सारा विधान कल्पित वस्तु विधान द्वारा ही तैयार होता है । लेखक यथासंभव विधि से अतीत की यथार्थ घटनाओं को अपनी रचना में लेता है जोकि रचना हेतु ढांचा तैयार होने का कार्य लगभग पूरा होने पर ही रचना इतिहास सत्य दिखने लगती है । उसके साथ भाव और संवेदना को

---

1. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण की भूमिका, पृ.-7.

भरने हेतु कल्पना का सहारा लेते हैं और इस तरह उपन्यास को मुख्य कथा के साथ ही साथ प्रासंगिक कथाओं द्वारा गति भी प्राप्त होती है ।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी पर वही कृति सफल सिद्ध हो सकती है जिसमें इतिहास विषयक पात्र एवं घटनाएँ तो गतिशील जीवंतता के साथ आए लेकिन मनोरंजकता के साथ युगीन आवाज भी ध्वनित हो सके । किसी भी ऐतिहासिक उपन्यास की उत्कृष्टता का मापदण्ड भी यही होता है कि लेखक एक तो ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करे दूसरा इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं व वर्णनों में इतिहास सत्य को विकृत न कर दे । इतिहास से जानकारी लेकर फिर पात्रों में काल्पनिक प्रसंगों को पुष्ट करना तो ठीक है लेकिन इतिहास-विरोधनी कल्पना का प्रयोग बेहद हानिकर व विसंगतिपूर्ण होगा । इस तरह से कथाकार को हमेशा सावधानी ग्रहण करना बेहद वांछनीय है जार्ज लुकाच ने लिखा है - "एक लेखक जो इतिहास का प्रयोग करता है वह अपनी इच्छानुसार न तो ऐतिहासिक सामग्री में परिवर्तन कर सकता है और न उसमें कांट-छांट कर सकता है । घटनाएं अथवा घटना धाराएं अपना स्वाभाविक वस्तुपरक गुरूत्व तथा सापेक्ष सम्बन्ध रखती है और यदि कोई लेखक ऐसी सफल कथा प्रस्तुत करता है जो इन गुरूत्वों और सम्बन्धों को सही ढंग से पुनः प्रस्तुत करती है तो मानवीय और कलात्मक सत्य ऐतिहासिक परिपाश्र्व से ही उद्‌भुत होगा । इसके विपरीत यदि उसकी कहानी इन सम्बन्धों और महत्वों को गलत ढंग से प्रस्तुत करती है अथवा उनको विरूप बनाती है तो वह कलात्मक चित्र को भी विकृत कर देगी ।"[1]

---

1. George Lukacs - The Historical Novel, P. 290

प्रस्तुत मत ही सम्पूर्ण विवेचन का निचोड़ है। ऐतिहासिक उपन्यास में लेखक कल्पना का प्रयोग सिर्फ वही कर सकता है, जहाँ इतिहास द्वारा प्रकाश न पड़ सके एवं कृति में चमक-दमक व रोचकता हेतु भी कल्पना सृजन की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु रचना को पूर्ण विश्वसनीय बनाने हेतु तो उसे सत्य में आवृत करना ही होगा। पुनश्च "शिवम्" और "सुन्दरम्" की पुर्नसर्जना हेतु हमें रचना में कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। निष्कर्ष यही है कि इन दोनों का सही सामंजस्य ही किसी ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता की गारंटी बन सकता है। प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने खुद लिखा है - "जहाँ तक सच्चा इतिहास प्राप्त हो उसको बिना किसी हेरफेर के ज्यों का त्यों रखा जाये। जहाँ इतिहास अस्पष्ट या अप्राप्त है श्रृंखला मिलाती है अथवा प्रधान पात्र के चरित्र को आगे चलाने या उभारने के लिए गौण पात्रों की आवश्यकता है, वहाँ आधुनिक मानव जीवन के जीवित पात्रों का मेल अपनी कल्पना शक्ति के सहारे मिला लेना चाहिये। समय बदल सकता है मानव स्वभाव वही रहेगा।"[1]

यह बात बेहद संगतिपूर्ण व उचित है कि वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का अध्ययन करते समय भी यही बात ध्यातव्य है। बेशक उन्होंने सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें कल्पनाशक्ति का प्रखरता से प्रयोग किया है। लेकिन इतिहास लेखन के लिए बहुश्रुत एवं प्रख्यात ऐतिहासिक रचनाकार के रूप में वर्मा जी का महत्व असंदिग्ध है। उन्होंने तो बुन्देलखण्ड के प्रत्येक पत्थर का व प्रत्येक कंकड़ का भी विवेचन और निरूपण किया है फिर जनजीवन लोक-परम्परा, लोक भाषा व देशकाल

---

1. गोविन्द प्रसाद शर्मा के अप्रकाशित शोध प्रबंध - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन, परिशिष्ट, पृ.-343.

जैसी परिस्थितियों के वर्णनों का तो पूछना ही क्या । निःसंदेह वर्माजी का हिन्दी के ऐतिहासिक रचनाकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान है और रहेगा । इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं ।

6. हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास

हिन्दी में उपन्यासों की रचना भारतेन्दु काल से शुरू हुई । उस समय जासूसी, तिलस्मी, रोमानी तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना-परम्परा का सूत्रपात हुआ । हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करने वाले सर्व प्रथम किशोरीलाल गोस्वामी माने जाते हैं । गोस्वामी जी ने अपना सर्व प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास सन् 1890 ई. में प्रतापनारायण मिश्र की प्रेरणा से रचा था । "हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी", "लवंगलता व आदर्शबाला" कुल 12 उपन्यास लिखे । इनके उपन्यासों में इतिहास की जटिल घटनाओं की उपेक्षा कर कल्पना का आश्रय लिया है । गोस्वामी जी के उपन्यासों के सम्बन्ध में डॉ. निर्मला जैन लिखती हैं - "इतिहास गोस्वामी जी के लिये मात्र एक चौखटा है, जिसके रंगीन घेरे में वे जीवन संबंधी अपना दृष्टिकोण संजोना चाहते हैं । उन्हें ऐतिहासिक तथ्यों तथा ऐतिहासिक प्रवृत्तियों को हृदयंगम कर प्रस्तुत करने की चिंता नहीं है और न उनमें यह क्षमता ही है । उनके उपन्यासों में अतीत का आभास भर देने का प्रयत्न रहा है ।"[1] यह सत्य है कि गोस्वामी जी ने कल्पना को मुख्य तथा ऐतिहासिक घटना को गौण महत्व दिया है । परन्तु वे मनोरंजन करते हुए इतिहास का ज्ञान भी कराना चाहते थे । "रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल" 'तारा व क्षात्रकुल कमलिनी' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । गोस्वामी के अलावा गंगा प्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक

---

1. डॉ. निर्मला जैन - हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, पृ.-63.

उपन्यासों में "नूरजहाँ" "कुमारसिंह सेनापति" और "हम्मीर" उल्लेखनीय हैं । जयरामदास गुप्त-कृत "काश्मीर पतन", "नवाबी परिस्तान वा वाजिद अली शाह" "मल्का चाँद बीबी आदि उपन्यास गोस्वामी जी की परम्परा में रखे जा सकते हैं ।

प्रेमचन्द युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या लगभग उनतीस है यदि भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' को भी ऐतिहासिक उपन्यासों में गिना जाए तो इनकी संख्या तीस है । इनका एक वर्ग भारतीय मध्यकाल के मुस्लिम शासकों के शासनकाल से संबंधित है । ऐसे उपन्यासों में मुसलमानों की सत्तालोलुपता, कामुकता तथा हिन्दू पात्रों की वीरता एवं उत्सर्गभावना का मुख्य चित्रण हुआ है । व्रजनंदन सहाय रचित "लालचीन" एक सुन्दर ग्रंथ है । श्याम बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी रचित "वीरमणी" में ऐतिहासिक प्रसंग आते हैं ।

चतुरसेन शास्त्री का सर्व प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "खवास का ब्याह" विचारणीय है । इसमें इतिहास की चकाचौंध पर ज्यादा ध्यान दिया है । उन्होंने "पृथ्वीराज रासो" को "खवास का ब्याह" उपन्यास का आधार बनाया । ऋषभरण जैन कृत "गदर" उपन्यास 1857 की क्रांति के एक केन्द्र (बिठूर - कानपुर) की गतिविधि पर आश्रित संतुलित ऐतिहासिक उपन्यास है ।

हिन्दी उपन्यासों के विकास के दौर में इतिहास सम्बन्धी नया दृष्टिकोण सामने आया । नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ग्रहण करने वालों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय है । ऐतिहासिक उपन्यास को परिपक्वता वृन्दावनलाल वर्मा के हाथों प्राप्त हुई । वर्माजी ने सामाजिक उपन्यास भी अनेक लिखे परन्तु उनकी ख्याति ऐतिहासिक उपन्यासों से अधिक हुई ।

उनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "गढ़ कुण्डार" है जिससे मध्यकालीन बुन्देलखंड की संस्कृति उसकी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति और वातावरण का सुन्दर चित्रण मिलता है। "विराटा की पद्मिनी" "झाँसी की रानी", "कचनार" , "मृगनयनी", "अहिल्याबाई", "माधोजी सिंधिया", "भुवनविक्रम" आदि उपन्यासों को अधिक प्रसिद्धी मिली है।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। "बाणभट्ट की आत्मकथा" और "चारुचन्द्रलेख" के अतिरिक्त उनका एक अन्य उपन्यास "पुनर्नवा" प्रकाशित हुआ है। द्विवेदी जी के उपन्यास इतिहास के तथ्यों पर आधारित नहीं है, उनमें कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक वातावरण की अर्थवान सृष्टि की गयी है। यह अर्थवत्ता उनके नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण की देन है। वे किसी कालखण्ड को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसे आज की ज्वलन्त समस्याओं के साथ भी जोड़ते चलते हैं, और इस सन्दर्भ में ही समग्रत: उनका गम्भीर जीवन-दर्शन भी प्रतिफलित हो जाता है।"[1] "बाणभट्ट की आत्मकथा" में उन्होंने मध्यकालीन जड़ता पर प्रहार करते हुए उसे आधुनिक चैतन्य से सम्पृक्त किया है।

अमृतलाल नागर के दो ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं "शतरंज के मोहरे" और "सुहाग के नूपुर"। इनमें राजनीतिक षड्यन्त्र विदेशियों की धूर्तता जन-साधारण का संघर्षमय जीवन आदि को चित्रित किया है। यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यासों में "दिव्या", "अमिता" आदि से उनकी ख्याति हुई। "दिव्या" कल्पनाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें मार्क्सवादी दृष्टिकोण की झलक दिखाई देती है। रांगेय राघव सामाजिक

---

1. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-82.

यथार्थ की अविच्छिन्न श्रृंखला को देखने के उद्देश्य से "मुर्दों का टीला" "चीवर", "प्रतिदान", "अंधेरे के जुगनू" आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं । राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि की स्थापना मिलती है । "सिंह सेनापति" और "जय यौधेय" राहुल जी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं । भगवतीचरण वर्मा का "चित्रलेखा" उपन्यास अलग ढंग का उपन्यास लिखा गया है इसके जैसा अन्य उपन्यास आजतक नहीं लिखा और न इस प्रयोग को अन्य किसी ऐतिहासिक उपन्यासकार ने अपनाया । "चित्रलेखा" अपने ढंग का एक मात्र उपन्यास होने पर भी इस युग की उल्लेखनीय देन है । इसका दार्शनिक ऊहापोह तथा शिल्पसौष्ठव आज भी हिन्दी साहित्य में चर्चा का विषय है । ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से इसमें एक बड़ी बात विचारणीय है । वर्माजी ने चित्रलेखा में इतिहास भूमि को अनायास एक अभिनव आयाम प्रदान किया है ।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में एक और नया प्रयोग हुआ है । शिवप्रसाद मिश्र "रूद्र" के उपन्यास "बहती गंगा" के रूप में । उसकी नायिका है काशी की नगरी जिसके 200 वर्ष (सन् 1750 से 1950) के लम्बे इतिहास का वर्णन बड़ी कुशलता से रोचक शैली में किया गया है । साहित्य की दृष्टि से इतिहास और पुराण को एक मान लें तो आलोच्यकाल की एक और सशक्त कृति का उल्लेख है । वीरेन्द्र कुमार जैन का उपन्यास "मुक्तिदूत" इसमें अंजना और पवनजय की प्रेमकथा के एक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है ।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति पहले की अपेक्षा अब बहुत कम रह गई है इस युग का वर्तमान सर्वग्रासी है, उसकी पकड़ इतनी मजबूत है कि उससे छूटकर अतीत में भ्रमण करने वाले उपन्यासकार को नई पीढ़ी का लेखक पलायनवादी कहेगा । फिर भी इक्के-दुक्के ऐतिहासिक

उपन्यास देखने में आ ही जाते हैं जिनमें यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" का "संन्यासी और सुन्दरी" तथा बनकाय सुनील के "धूलि और नर्तन", "सामन्त बीज गुप्त","इरावती" उल्लेखनीय है । "सामन्त बीज गुप्त" का कथा सूत्र लेखक ने वहां से पकड़ा है, जहाँ भगवतीचरण वर्मा के चित्रलेखा का अन्त हुआ है । "इरावती" में लेखक ने जयशंकर प्रसाद की अधूरी कृति "इरावती" को आगे बढ़ाकर पूरा किया है ।

समसामयिक युग से जुड़े ऐतिहासिक उपन्यासकारों में आनन्द प्रकाश जैन को लिया जा सकता है । उन्होंने "कठपुतली के धागे", "तीसरा नेत्र", "पलकों के ढाल", "कुणाल की आखें", "ताम्बे के पैसे" आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । "कठपुतली के धागे" में लखनऊ के नवाब का विलासी जीवन जिसमें नसिरूद्दीन हैदर का वर्णन है । "कुणाल की आखें" और "ताम्बे के पैसे" विशेष उल्लेखनीय है । "कुणाल की आखें" उपन्यास में प्रियदर्शी अशोक के शासनतंत्र में उसके पुत्र कुणाल की आंखों को प्रतीक बनाकर उपन्यासकार ने आज के प्रजातंत्र का मुखौटा इतिहास के पर्दे पर उभारने का प्रयत्न किया है । आनन्द जैन ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि - "आज की इस प्रजातांत्रिक राजनीति में संसद का विरोधी दल विशेष आकर्षण का केन्द्र है । यही कारण है कि बिना दूसरा पक्ष सामने आए सत्य की स्थापना असंभव है ।"[1] यह ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की दृष्टि से सफल कहा जा सकता है ।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव में "बेकशी का मज़ार" ऐतिहासिक उपन्यास लिखा । इसमें अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह को केन्द्रित कर 1857 के विद्रोह को चित्रित किया गया है । उपन्यासकार लिखते हैं - "कहानी को प्रधानता देकर इतिहास को गौण बनाया गया है । पात्र

---

1. आनन्द जैन - कुणाल की आखें, पृ.-9.

और सभी ऐतिहासिक घटनाओं को एक सूत्र में पिरोकर उन्हें कहानी का अंग बनाने की चेष्टा की गई है।"[1] हालांकि उपन्यास में घटनाएं ऐतिहासिक हैं लेकिन पात्रों में कभी-कभी अस्वाभाविकता नज़र आ जाती है। इनके अलावा राजीव सक्सेना का "पणि पुत्री सोभा", चन्द्रकांत भारद्वाज का "हर्षवर्द्धन", भगवतशरण उपाध्याय का "कालिदास" आदि ऐतिहासिक उपन्यास है। "पणि-पुत्री सोभा" में प्रागैतिहासिक काल के जीवन की यथार्थ झांकी है। "हर्षवर्द्धन" में राजा हर्षवर्द्धन के जीवन संबंधी घटनाओं का आश्रय लेकर कथा गढ़ी गई है।

अतः हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास की दीर्घ परम्परा किशोरी लाल गोस्वामी के समय से अब तक के ऐतिहासिक उपन्यास तक आते-आते अनेक परिस्थितियों से गुजरती हुई अपने लक्ष्य तक पहुँची है। आज भी कुछ लेखक ऐतिहासिक उपन्यास लिख लेते हैं। परन्तु कई बार ऐसे उपन्यासों में असंगतियां आ जाती हैं। जैसे रघुवीरशरण मित्र ने "आग और पानी" इसमें अधिकतर ऐतिहासिक असंगतियां हैं। जैसे कौटिल्य को शुभाषिनी के साथ शतरंज खेलते हुए और मंत्री सक्या को टेलिफोन पर सूचनाएं मिलती हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि उस समय टेलिफोन का आविष्कार भी नहीं हुआ था। निराला कृत "प्रभावती" नामक उपन्यास में ऐतिहासिकता कम और रोमांटिकता ही अधिक है। "आम्रपाली" उपन्यास रामरतन भटनागर ने वैशाली नगर की गणिकाओं के जीवन को आधार बनाकर लिखा। गोविन्द वल्लभ पंत ने भी "अभिताम", "एक सूत्र", "नूरजहाँ" आदि उपन्यासों की रचना की। "अभिताम" महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित है जिसमें बुद्ध के चरित्र को प्रधानता मिली है। "एक सूत्र" में

---

1. प्रताप नारायण श्रीवास्तव - बेकशी का मज़ार, पृ०-प्राक्कथन

अकबर के जीवन से संबंधित है । "नूरजहाँ" इनमें से अधिक ऐतिहासिक है । बेनी प्रसाद बाजपेयी "मंजुल" के इतिहास को आधार बनाकर सात उपन्यास लिखे हैं । परन्तु चन्द्रमित्रा, चम्पावती, सुमंगला आदि उपन्यासों में पूरी तरह से ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं है । इसी तरह धर्मेन्द्रनाथ ने "रजिया","तैमूर", आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । यादवचन्द्र जैन "मल्लि देवी","उत्तरापथ","आदि सम्राट", नामक तीन ऐतिहासिक उपन्यास लिखे ।

हिन्दी के और भी अनेक उपन्यासकारों ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं जो ऐतिहासिक कथा पर आधारित हैं । इनमे डॉ॰ यतीन्द्र (आचार्य चाणक्य), गोविन्द सिंह (तथागत, नादिरशाह), अमर बहादुर सिंह "अमरेश" ने (राणा बेनी माधव), राज कलश । प्रवीण राय, रामेश चौधरी आगरपुरी (धन्य भिक्षु), जगदीश कुमार जैन ने (शाका), वाल्मीकी त्रिपाठी ने "जहोदर विक्लांग", ल्याह सूनामी ने "हेमचन्द्र विक्रमादित्य", सीताराम गोयल ने "सप्तशील", आदि लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास को आगे बढ़ाया ।

(इस तरह हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का विकासक्रम आगे बढ़ता रहता है और आगे भी इतिहास का आधार बनाकर उपन्यासों की रचना करने में रचनाकार सफल होंगे ।)

.....

द्वितीय अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास - एक आलोचनात्मक परिचय

हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ देने वालों में वृन्दावनलाल वर्मा का नाम अग्रगण्य है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक युगान्तकारी परिवर्तन किया। शुरू में वृन्दावनलाल वर्मा ने सामाजिक उपन्यास लिखे, परन्तु उनकी ख्याति ऐतिहासिक उपन्यासों के कारण ही ज्यादा हुई। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने उनकी 70वीं वर्षगांठ पर अभिनन्दन स्वरूप लिखे अपने एक लेख में कहा है - हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में यह एक युगान्तर था, सामाजिक समस्याओं में बेहद दिलचस्पी लेने वाले लेखक ने अपने इतिहास को नये प्रकाश में देखा। एक नये मानवतावाद धरती और उनके पुत्रों में नये स्नेह, कथासाहित्य में नया ओज प्राकृतिक कवि सुलभ चित्रण का आरम्भ हुआ। गढ़ कुण्डार, झांसी की रानी जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखक वृन्दावनलाल वर्मा इस युग के लोकप्रिय साहित्यकार हैं। लगभग 60 वर्षों तक उन्होंने हिन्दी कथासाहित्य को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के द्वारा समृद्ध किया। जब अंग्रेजी प्रभाव के वातावरण में हिन्दी का कथा-साहित्य जन्म ले रहा था, हिन्दी के

वे पहले साहित्यकार थे जो इस बात का आग्रह लेकर चले कि ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं के साथ-साथ तत्कालीन जीवन के स्वरूप का प्रामाणिक चित्रण होना आवश्यक है । अतः वर्माजी ने जिस काल विशेष को अपने उपन्यासों में लिया उसका सफलतापूर्वक निर्वाह किया ।

लेखक अपने युग का सजग सचेष्ट प्रहरी होता है । युग की किसी भी घटना हलचल से प्रभावित हुए बिना वह नहीं रहता । साहित्यकार सबसे अधिक संवेदनशील होता है । मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है - "वह बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है । जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है ।"[1] लेकिन वह सामाजिक गतिविधि से न केवल प्रभावित होता है, वरन् अपनी स्वयं की गतिविधि से उसे प्रभावित भी करता है, उसके रूप में परिवर्तन ला देता है । वह युग-द्रष्टा और युग स्रष्टा दोनों होता है । वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यास भी यथार्थ जीवनानुभूतियों से प्रेरित है किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रकाश में वे धूमिल से पड़ गये हैं । इस कारण सभी लोग उनको ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में याद करते हैं । वर्माजी के अन्दर इतिहास ज्ञान पूर्णरूप से था इसी कारण उनकी ऐतिहासिक दृष्टि सभी उपन्यासों को सफल बनाने में सहायक रही । उनके उपन्यासों में जीवन की वास्तविकताओं, यथार्थताओं, उनके विभिन्न संदर्भों, पहलुओं का बहुविध परिचय तो मिलता ही है साथ ही उनके प्रति उनकी एक रचनात्मक दृष्टि भी मिलती है । वर्माजी ने अपने साहित्य में जिस दिशा को अपनाया है उसका रेशा-रेशा निकालने का प्रयत्न किया है । विविध दृष्टिकोणों से उसे प्रकाशमान किया । अपने

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार-निबन्ध संग्रह, भाग-1 में संकलित निबन्ध जीवन में साहित्य का स्थान, पृ.-77.

उपन्यासों में अनेक सजीव चित्रों का अंकन किया है । वे हिन्दी साहित्य जगत में युग-युग तक आने वाली पीढ़ियों के सम्मुख अपने कलापूर्ण स्वरूप में उपस्थित रहेंगे ।

वर्माजी ने ऐसे अमर चरित्र प्रदान किये हैं जिनके त्याग और बलिदान की अमर कहानियाँ पढ़कर सभी का मन रोमांचित हो उठता है । सामाजिक यथार्थ को उन्होंने अपने उपन्यासों का आधार बनाया । अपने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने लोक-सत्य पर अधिक बल दिया । उनके उपन्यासों में कहीं कोई निराशा का स्वर नहीं है । वे तो जीवन के प्रति हमेशा ही आशावान बने रहे । इसलिए उनके उपन्यासों में पात्रों के मन में आशा की किरण देखने को मिलती है ।

वर्माजी ने अपने उपन्यासों में आदर्शोन्मुखी यथार्थ का रूप देने का प्रयत्न किया है । इसी कारण उनके पात्रों को सफलता मिलती है चाहे ग्रामीण पात्र हो या निम्न श्रेणी की जनता या राजकीय व उच्च मध्य वर्ग हो इन सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफल रहे हैं । भुवन-विक्रम उपन्यास को छोड़कर वर्माजी ने मुख्य रूप से मध्ययुग व आधुनिक युग के इतिहास पर उपन्यास लिखे हैं । समाज-कल्याण तथा व्यक्ति मंगल के समन्वय की भावना से युक्त उपन्यास वर्माजी ने अपने कल्पना-जगत की उपज से लिखे हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ-साथ सामाजिक उपन्यासों का महत्व भी है । ग्रामीण समाज व बुन्देलखण्ड के लोगों के जीवन में घटने वाली घटनाओं का अपने उपन्यासों में वर्णन करने की सफल चेष्टा की है । मातृ-भूमि के प्रति उनका गहरा लगाव प्रत्येक उपन्यास में झलकता है । बुन्देलखण्ड को उच्च शिखर पर पहुँचाने का श्रेय वर्माजी को ही मिलता

है । क्योंकि बुन्देलखण्ड को इतनी बारीकी से देख उसका अध्ययन कर फिर अपने उपन्यासों में उतारना उनके जैसे लेखक का ही काम है । वर्माजी अकेले ही ऐसे साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने अपनी भूमि के बारे में विस्तार से लिखा है । नीचे उनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :

1· ऐतिहासिक उपन्यास

गढ़ कुण्डार : गढ़ गुण्डार वर्माजी का लिखा प्रथम उपन्यास है । इससे पहले उन्होंने अनेक कहानियां और नाटक लिखे थे । उपन्यास लेखन की क्षमता को उन्होंने बाद में पहचाना । वर्माजी ने अपने एक संस्मरण का जिक्र गढ़ कुण्डार की रचना के बारे में किया है । 1927 की बात है एक बार वे शिकार के लिए रात को बेतवा के किनारे बैठे हुए थे । रात का स्तब्ध वातावरण और पहाड़ों की श्रेणियों के पीछे एक शिखर पर कुण्डार का गढ़ उनके मन को नई रचना के लिए प्रेरित कर रहा था । उन्होंने लिखा कुण्डार का गढ़ ऊँघता सा जान पड़ता है । इतिहास और परम्परा पात्र और घटनाचक्र कला और उद्देश्य का तूफान दिमाग में उठ खड़ा हुआ । वर्माजी के जीवन की यह नई मंजिल थी । यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने इतिहास को नये परिप्रेक्ष्य में देखा । इस कृति से वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उभर कर हमारे सामने आये ।

गढ़ कुण्डार के राजा हुरमत सिंह अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं । उनका बेटा नागदेव शिकार करते हुए अपने मित्र अग्निदत्त के साथ भरतपुर की गढ़ी में ठहरने का निश्चय करता है । दोनों भरतपुर की गढ़ी में जाते है । वहाँ पर उनकी भेंट सोहनपाल बुन्देला से होती

है, जो अपने ही छोटे भाई वीरपाल द्वारा शासन से हटाने पर तथा फिर से राज्य प्राप्ति हेतु खंजारों से मदद लेना चाहता है। भरतपुर की गद्दी पर रात को मुसलमानों का आक्रमण होता है। युद्ध में नागदेव लड़ते हुए घायल हो जाता है। उस समय सोहनपाल की पुत्री हेमवती नागदेव की सेवा करती है। नागदेव ने सुन रखा था कि हेमवती रूप-गुण में किसी से कम नहीं है, तभी से वह हेमवती को चाहने लगा था। हेमवती की सेवा को प्रेम समझ कर नाग और अधिक चाहने लगा। नागदेव अर्जुन के हाथों हेमवती के पास पहुँचाने के लिए प्रेम-पत्र देता है, परन्तु स्वामीभक्त अर्जुन उस पत्र को हरी सिंह चन्देल को दे देता है, जो नाग के पिता तक पत्र पहुँचा देता है।

नागदेव युद्ध में पकड़े दो मुस्लिम व्यक्तियों को कुण्डार भेजता है उसमें से एक अतीवेग नाम का व्यक्ति भाग जाता है और दूसरा जो इब्नकरीम बचा रहता है उसको कुण्डार की सेवा में रख लिया जाता है। इधर हुरमत सिंह सोहनपाल को इस शर्त पर सहायता देने का प्रस्ताव रखता है कि वह अपनी पुत्री का विवाह नागदेव के साथ करें। इस प्रस्ताव को सुनकर बुन्देलों का खून खौल उठता है। इसका बदला लेने के लिए बुन्देले लोग षडयंत्र रचना आरम्भ करते हैं। सोहनपाल का मन्त्री धीर प्रधान चतुर राजनीतिज्ञ है। वह अपने बेटे दिवाकर और राजकुमारी हेमवती एवं उसके भाई सहजेन्द्र को कुण्डार में विष्णुदत्त ब्राह्मण के यहाँ भेज देता है। वहाँ पर ये लोग विष्णुदत्त के पास ही मकान लेकर रहने लगते हैं। समय देख नागदेव हेमवती से प्रणय-याचना करता है। अभिमान से भरी हेमवती नाग का तिरस्कार करती है। निराश होकर नाग हेमवती का हरण करने की कोशिश करता है। परन्तु उसमें असफल होता है।

इसी बीच नागदेव का बाल सखा अग्निदत्त नाग की बहन मानवती से प्रेम करने लगता है । मानवती का विवाह दूसरी जगह होने पर अग्निदत्त उस रात मानवती को भगाने अपनी बहन तारा का रूप बनाकर महल में जाता है लेकिन नाग द्वारा अपमानित होकर बुन्देलों से जा मिलता है । वह कुण्डार का नाश करने की शपथ लेता है । सभी बुन्देले सोचते हैं कि बल से खंगारों को हराना सम्भव नहीं है इसलिए छल का प्रयोग करना आवश्यक है । अत: सोहनपाल धीर प्रधान के हाथों विवाह प्रस्ताव भेजता है और खंगारों की रीति के अनुसार विवाह करने को सहमत हो जाता है । राजा हुरमत सिंह इस प्रस्ताव को खुशी से स्वीकार करते हैं ।

विवाह की रात खंगारों ने डट कर सुरा-पान किया । सभी बाराती अचेत प्राय: हो गये । उस समय प्रतिशोध की आग में जलते बुन्देलों ने आक्रमण कर खंगारों का विनाश करने का संकल्प कर लिया उस समय भी खंगारों ने डटकर मुकाबला किया । परन्तु मदिरा से प्रभावित शरीर ने ज्यादा साथ नहीं दिया और एक-एक करके सभी का अन्त हो गया । उनमें से केवल मानवती बची जो प्रसव पीड़ा से कराह रही थी । अग्निदत्त ने उसको देखा और उसका मन दु:ख से भर गया । वह मानवती को बचाते हुए स्वर्गलोक में चला गया । गढ़ कुण्डार में सोहनपाल का राज्य हो जाता है जो अपने वादे के अनुसार करेरा के पुष्यपाल से हेमवती का विवाह करता है ।

इसमें दूसरी कथा दिवाकर और तारा की प्रेम कथा है जो उपन्यास को आगे बढ़ाने में सहायक होती है । कायस्थ धीर प्रधान का पुत्र दिवाकर और ब्राह्मण विष्णुदत्त की पुत्री तारा दोनों का साक्षात्कार कुण्डार में होता है । दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते

है । जाति भिन्नता के कारण विवाह नहीं हो सकता है । दोनों धर्म भीरू होने के कारण समाज से मुकाबला नहीं कर सके । दिवाकर कुण्डार के विनाश की छल नीति का विरोध करता है । इसी कारण उसको देवरा चौकी के एक तलघर में कैद कर दिया जाता है । तारा कुण्डार से आकर दिवाकर को मुक्त करवाती है और वे दोनों समाज के जाति बन्धन को छोड़ कर शान्ति की खोज में योग-साधना के लिए जंगल की शरण में जाते हैं ।

इस उपन्यास के सम्पूर्ण कथानक को 78 छोटे-बड़े परिच्छेदों व अध्यायों में विभक्त कर उनका नामकरण घटना अथवा पात्रों के आधार पर किया है । जैसे - 'कुण्डार की चौकियां', 'भरतपुरा की गढ़ी', 'तारा का व्रत,' 'देवरा में' आदि बहुत से वर्णन हैं ।

यह उपन्यास 13वीं शताब्दी के अन्त के बुन्देलखण्ड की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है । इस उपन्यास में तीन प्रेमी युगल का वर्णन है । उसमें से एक को भी विवाह करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ । उपन्यास अपनी स्वाभाविक गति से चलते हुए विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच कर सफलतापूर्वक समाप्त होता है । अग्निदत्त की कथा उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक होती है । दिवाकर और तारा की कथा धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए संस्कार व परिच्छेद तक पहुँच कर समाप्त होती है । इसमें अग्निदत्त मानवती प्रणय-प्रसंग तथा तारा-दिवाकर प्रेम-प्रसंग उपन्यासकार की स्वयं की कल्पनायें हैं, परन्तु मुख्य कथा से ये पात्र इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुये हैं कि इनको मुख्य कथा से अलग करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती है । उपन्यास के अनेक पात्र अर्जुन, हरिचन्देल, इब्नकरीम तथा अन्तीबेग और उनसे सम्बन्धित प्रसंग भी काल्पनिक हैं । जहाँ तक घटनाओं का संबंध है, मुख्य कथा से संबंधित

राजनैतिक घटनाएं इतिहास सम्मत हैं । बुन्देलखण्ड में कुण्डार के खंगारों के नाश के विषय में इतिहास में कुछ निम्न तथ्य हैं। इतिहास के अनुसार "नागदेव के विवाह के लिए खंगारो की बारात सोहनपाल के घर पहुँचती है । वहां रात के समय धोखे से बुन्देलों के द्वारा नागदेव सहित सब खंगार मार डाले गये थे । सोहनपाल कुण्डार का राजा बन गया था ।"[1] लेकिन खंगारों के नाश के विषय में वर्मा जी ने अपने अध्ययन, संस्कार और व्यक्तित्व का सहारा लेकर न्याय संगत परिष्कार ही प्रस्तुत किया है ।

उपन्यास में जिन स्थानों का वर्णन किया है उसमें वर्माजी को दुर्जन कुम्हार की सहायता मिली थी । उपन्यास में अर्जुन इसी दुर्जन का प्रतिबिम्ब है । इस उपन्यास की कथा मुख्यरूप से प्रेम और युद्ध पर आधारित है । वर्माजी ने खंगारों के अभिमान व बुन्देलों के जात्याभिमान का समान रूप से विरोध किया । अतः देखा जाता है कि इस उपन्यास की घटनाओं के पीछे नारी की भूमिका मुख्य है और जात्यभिमान के कारण लड़ाई का आरम्भ होता है । अन्त में कहा जा सकता है कि गढ़ कुण्डार ऐतिहासिक उपन्यास है । साथ ही क्षेत्र विशेष तथा वर्ग विशेष को लेकर पूरा उपन्यास रचा गया है । इसमें मानव के अन्दर की राक्षसी प्रवृत्ति को दिखाने का प्रयत्न किया गया है । आक्रोश की भावना से युद्ध न्याय संगत नहीं होता है । इसी कारण वर्माजी ने वर्तमान युग के लोगों को यह संदेश देने की कोशिश की है कि हर व्यक्ति समान है जाति को लेकर हो या रंगरूप को लेकर प्रत्येक मनुष्य को अभिमान व प्रतिशोध की भावना त्यागना ही श्रेयष्कर है तभी राष्ट्र के लोग आपस में प्रेम से रहने की सोच सकते हैं ।

----

1. झाँसी गजेटियर (यूनाइटेड प्राविंसेज, आगरा और अवध), भाग-14, पृ.-189.

विराटा की पद्मिनी : वृन्दावनलाल वर्मा ने सन् 1936 में विराटा की पद्मिनी नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की । इस उपन्यास का कथानक पालर ग्राम के एक दांगी परिवार में उत्पन्न हुई कुमुद नाम की सुन्दर लड़की को देवी का अवतार माने जाने से निर्मित हुआ है । उसके रूप सौन्दर्य के कारण गांव वाले उसकी पूजा अर्चना करते हैं । दूर के गांवों के लोगों का भी आना-जाना शुरू हो जाता है क्योंकि उसके रूप, गुण, शील और स्वभाव की चर्चा चारों ओर फैल जाती है । लोग कुमुद को अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्ति भेंट स्वरूप अर्पित करते हैं ।

दिलीप नगर के राजा नायक सिंह के कानों में कुमुद के रूप सौन्दर्य की बात पहुँचती है वह पालर झील के किनारे अपनी सवारी का डेरा डलवा देता है । नायक सिंह का दासी-पुत्र कुंजर सिंह सेनापति लोचन सिंह के साथ देवी के दर्शन करने मन्दिर में आ जाता है । उसी समय मन्दिर के बाहर लोचनसिंह और मुसलमान सिपाहियों में लड़ाई हो जाती है व मुसलमान सिपाही भाग जाते हैं ।

इस घटना के बाद दिलीप नगर के राजा नायकसिंह और कालपी के नवाब अलीमर्दान के बीच संघर्ष होना आरम्भ होता है । नायकसिंह को मरणासन्न दशा में देखकर दुल्हा बना देवीसिंह नाम का एक बुन्देला उनकी रक्षा करता है । देवीसिंह के युद्ध में उलझ जाने से उसकी शादी नहीं होती है । इस घटना से देवीसिंह राजा का स्नेह पात्र बन कर दिलीप नगर में रहता है ।

अलीमर्दान कुमुद की सुन्दरता के बारे में सुनता है और उसको पाने के लिये पालर पर आक्रमण करने की योजना बनाता है । सन्देह वश कुमुद के पिता नरपतसिंह कुमुद को लेकर विराटा नदी के बीच टापू

में स्थित एक मन्दिर में शरण ले लेते हैं । लेकिन कुमुद की पूजा यहाँ पर भी देवी रूप में होने लगती है ।

नायकसिंह की मृत्यु होने के बाद उसके मंत्री जनार्दन शर्मा से मिलकर देवीसिंह उस राज्य का राजा बन जाता है । देवीसिंह सेनापति लोचनसिंह को भी अपना प्रभुत्व स्वीकार करवा देता है । दासीपुत्र कुंजरसिंह को तो देवीसिंह निकाल देता है लेकिन कुंजरसिंह राज्य प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है । टापू में कुमुद की भेंट कुंजरसिंह से होती है तो कुंजरसिंह वहीं रहने लगता है । विराटा के राजा सबदल सिंह कुंजरसिंह को मदद का वचन देता है और उसको मन्दिर में ही रहने को कहता है इस तरह कुमुद व कुंजरसिंह दोनों के साथ-साथ रहने से उनका प्रेम भी फलता-फूलता है लेकिन दोनों इस प्रेम को प्रकट होने नहीं देते हैं ।

इस बीच अलीमर्दान और देवीसिंह के बीच भयंकर युद्ध होता है । कुंजरसिंहं नायकसिंह की छोटी रानी को अपनी ओर मिला लेता है व छोटी रानी अलीमर्दान दिलीपनगर के राजा की छोटी व बड़ी रानी रामनगर का राजा से सभी मिलकर विराटा पर आक्रमण करते हैं । देवीसिंह व कुंजरसिंह में युद्ध होता है और अलीमर्दान कुमुद के लिए विराटा पर आक्रमण करता है । उसमें विराटा के दांगी जौहर करते हैं और बाकी लड़ते-लड़ते मर जाते हैं । अन्तिम विदा लेते समय कुमुद कुंजर के गले में माला डाल देती है और कहती है अब हम लोग अंत में मिलेंगे ।

कुमुद जल समाधि लेने बेतवा नदी की ओर जाती है और कुंजरसिंह, युद्ध भूमि में, लेकिन कुमुद को अलीमर्दान पकड़ने के लिए दौड़ता है तभी कुंजर उधर देखता है और उस समय देवीसिंह उसका

सिर धड़ से अलग कर देता है । कुमुद जल समाधि ले लेती है, छोटी रानी युद्ध में मारी जाती है अन्त में अलीमर्दान देवीसिंह से संधि कर लेता है ।

इस उपन्यास में एक और कथा चलती है वह है पालर की रहने वाली गोमती की । गोमती का देवीसिंह के साथ विवाह होने वाला था लेकिन युद्ध के कारण बारात घर तक न आ पाई । देवीसिंह को दिलीपनगर का राजा बनने के समाचार से गोमती बहुत खुश होती है । कुमुद और गोमती दोनों विराटा के मन्दिर में साथ-साथ रहती हैं । छोटी रानी का अनुचर रामदयाल गौमती का विश्वास पात्र बन जाता है । गोमती देवीसिंह से जब मिलती है तो देवीसिंह उसका तिरस्कार करता है व बेहोश हो जाती है । कुमुद रामदयाल को गोमती के सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिए आग्रह करती है । रामदयाल अलीमर्दान की छावनी के पास ले जाकर अपना प्रेम प्रकट करता है, पर गोमती को अब जीवन से कुछ भी मोह नहीं रहता है इसलिए वह भी युद्ध में मारी जाती है ।

इसके अलावा इसमें छोटी-छोटी कई कथाएं हैं लेकिन विराटा की पद्मिनी में कुमुद को केन्द्र बिन्दु बनाकर सभी घटनाएं होती हैं और उसके इर्द-गिर्द ही सभी पात्रों का चरित्र उजागर होता है ।

इस उपन्यास को वर्माजी ने 107 छोटे बड़े परिच्छेदों में विभक्त किया है । "गढ़कुण्डार" की तरह इसके परिच्छेदों का नामकरण नहीं किया है । इसका कथानक 18वीं शताब्दी के राजनीतिक वातावरण की पृष्ठभूमि पर निर्मित हुआ है । उस समय मुसलमानों की शक्ति कमजोर हो रही थी और देश के सभी छोटे बड़े राजा स्वतंत्र हो रहे थे, केन्द्र की शक्ति निर्बल हो चुकी थी । इस उपन्यास में कल्पना का अधिक प्रयोग किया गया है । वातावरण व पात्र कुछ ऐतिहासिक हैं, कुछ

काल्पनिक हैं । विराटा की पद्मिनी "कुमुद" की कथा ऐतिहासिक है । मुसलमानों के नवाब व कुमुद की घटना भी ऐतिहासिकता पर वर्णित है । और इस उपन्यास में आई छोटी-मोटी घटनाएं भी ऐतिहासिकता पर आधारित हैं । सहायक घटनाओं में कुछ कल्पना का पुट है लेकिन अधिकांशत: ऐतिहासिक ही है । उपन्यास में जो परिस्थितियां दिखाई गई हैं वे वातावरण के अनुसार हैं । वर्माजी बड़ी सतर्कता से इस उपन्यास को समयानुकूल बनाये रखने में सफल हुये हैं । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ शशिभूषण सिंहल ने लिखा है - "लगभग सन् 1700 की विराटा गांव (परगना - तहसील मोठ, जिला - झांसी) की दस्तूर देही मिसिल बन्दोबन्स सन् 1862 में इस घटना का उल्लेख है ।" विराटा में दांगी जाति की "पद्मिनी" थी । नवाब कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी ।"[1] इस तरह देखा जाता है कि यह घटना ऐतिहासिक सत्य है ।

इस उपन्यास के बारे में वर्माजी ने परिचय में लिखा है - "उपन्यास - कथित घटनाएं सत्यमूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूंथ दी गई है ।"[2] इस सन्दर्भ में डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद लिखते हैं - "इसमें सारे रक्तपात का मूल कारण सत्ता की लोलुपता तथा मुख्यत: विराटा की पद्मिनी का सौन्दर्य ही सिद्ध होता है ।"[3] यह पूर्णत: सत्य है कि उस समय युद्ध या तो नारी के सौन्दर्य को लेकर या राज्य विस्तार की पिपासा को लेकर होता था । इस उपन्यास में दोनों ही कारणों से युद्ध होता है ।

1· डॉ॰ शशिभूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰-63.
2· विराटा की पद्मिनी - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰-12,
3· डॉ॰ सियारामशरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-64.

डॉ॰ मोहनी सहाय के मतानुसार - "समूचे उपन्यास में उनके प्रेम की मूक वेदना ही स्पंदित हुई है । कुमुद के मूक उत्सर्ग के साथ इस दुखान्त उपन्यास का अन्त हुआ है । प्रेम के कलात्मक गुणों और मनोवैज्ञानिक विकास के कारण यह उपन्यास "गढ़-कुण्डार" की अपेक्षा अधिक सफल है । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कुमुद और राजा नायकसिंह के चरित्र बड़े सजीव और स्पष्ट हैं । नायकसिंह वीर है, कामुक भी । कुमुद भारतीय आदर्श नारी का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है ।"[1] लेकिन मेरी दृष्टि से कुमुद को एक निर्बल नारी के रूप में चित्रित किया गया है उसमें न तो आत्मविश्वास है और न साहस । केवल सुन्दरता के लिए उसको "दुर्गा" या शक्ति "देवी" की पदवी देना न्याय संगत नहीं ठहरता है । "दुर्गा" भारतीय संस्कृति में शक्ति रूपा हैं शत्रुओं का नाश करने वाली बहादुर निर्भीक और रंग भूमि में रणचण्डी का रूप धारण करने वाली दुर्गा और यह कुमुद जो इसके विपरीत ठहरती है । इसकी संगति एवं संतुलन थोड़ा ठहराव पैदा करता है ।

इस उपन्यास में घटनाओं की बहुलता के कारण इसमें विस्तार अधिक हो गया है, लेकिन वर्माजी ने उपन्यास को रोचक बनाने के लिए "कुमुद" का सौंदर्य, युद्ध रोचक वातावरण आदि का बहुत ही सफलता से वर्णन किया है । इसको पढ़ते समय उत्सुकता बनी रहती है । इस उपन्यास का अन्त दुखान्त होने से यह एक सफल ट्रेजिक कृति के रूप में हमारे सामने आई है ।

वर्माजी को बुन्देलखण्ड कीभौगोलिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था उन्होंने अपने उपन्यास में बुन्देलखण्ड के सौन्दर्य का वर्णन बड़ी खूबी से

1· डॉ॰ मोहिनी सहाय - वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य, पृ॰-113.

किया है । झांसी के आस-पास की भूमि से उनका बड़ा नजदीकी परिचय था । इस उपन्यास में उन्होंने वहाँ के पहाड़, पहाड़ियों, नदी, नालों, खोह भरकों, खंडहरों, भग्नावशेषों का सुन्दर परिचय दिया है । बेतवा नदी नामनगर की गढ़ी तथा विराटा आदि का सुन्दर वर्णन किया है । वर्माजी ने बुन्देलखण्ड की भाषा का प्रयोग किया है । अतः हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास में आंचलिकता के तत्व भी देखे जा सकते हैं व इसमें सांस्कृतिक समन्वय देखा जा सकता है ।

<u>मुसाहिबजू</u> : वर्माजी ने इस उपन्यास की रचना 1946 में की । यह एक लघु ऐतिहासिक उपन्यास है जिसका सम्बन्ध दतिया राज्य से है । दतिया राज्य के अन्तर्गत केरूआ एक जागीर थी । मुसाहिब जू दलीपसिंह ही उसके कर्त्ताधर्त्ता थे । उनका डेरा भरतगढ़ फाटक पर लगा हुआ था । दलीपसिंह व उनकी पत्नी चरखारीवाली अत्यन्त सहृदय व दयालु थे हर अतिथि व सैनिकों को खाना-पीना करवा कर भेजते थे । इससे उनके बहुत से सैनिक स्वामीभक्त थे ।

एक बार दतिया के राजा के यहाँ उत्सव था । मुसाहिबजू के पास निमंत्रण आया लेकिन उनकी पत्नी के पास जेवर न होने की वजह से वह उस उत्सव में नहीं जा सकी । इस प्रकार अपने स्वामी की पत्नी को दुःखी देखकर सैनिकों ने डकैती डाल दी, इसकी सूचना राजा के पास गई, क्योंकि आभूषण छीने गये थे, उसमें मुसाहिबजू के साहूकार की पत्नी भी थी । सभी को यह शंका होने लगी कि मेहत्तरों ने डाका चरखारी के कहने पर डाला है । मुसाहिबजू को यह बात मालूम नहीं थी । साहूकारों ने राजा से कहा राजा तो राजा मुसाहिबजू को बन्दी बनाने का आदेश दिया । मुसाहिब जू को बन्दीगृह में डाल दिया गया । न्याय करते समय राजा मुसाहिबजू को देश निकाले की

सजा देते हैं । मुसाहिबजू इस सजा से विचलित नहीं होते हैं वे युद्ध के लिए भी तैयार होते हैं, परन्तु कोतवाल ने नमक खाया उसकी लाज रखने को कहता है और अत्यन्त अपनत्व प्रदर्शित करता है । तब जाकर मुसाहिबजू केरूआ जाने पर राजी होते हैं । किन्तु अपने अधीनों पर आंच तक नहीं आने देते हैं ।

राजा को जब सूचना मिलती है कि मुसाहिबजू राज्य छोड़ कर जा रहे हैं तो राजा को बहुत पश्चाताप होता है क्योंकि मुसाहिबजू स्वामीभक्त थे । वे सैनिकों की रक्षा के लिए स्वयं का बलिदान देने को तैयार रहते थे । केरूआ के लिए रास्ता दतिया होकर ही जाता था । अत: किले के झरोखे पर राजा बैठे हुये थे, मुसाहिबजू घोड़े से उतर कर मुजरा करता है उस समय राजा अत्यन्त दु:खी होते हैं और उनकी आँखें भर आती हैं । राजा कोतवाल व रामसिंह को उन्हें मनाने भेजते हैं । मुसाहिबजू को बहुत मनाया गया, सभी ने क्षमा मांगी पर नहीं माने अन्त में उनको कहा कि बाहरी आक्रमणों का डर है तब पुन: केरूआ लौटे । अंत में स्वयं राजा ने मनाया और कहा कि तुम प्रजा की अच्छी तरह से देखभाल करो ।

इस कथा में एक प्रासंगिक कथा भी है । कुंजीलाल महाजन की पुत्री सुभद्रा की जो विवाहिता होते हुये भी अपने पिता के घर रहती है, क्योंकि ससुराल वालों से अनबन हो जाती है । लल्ली जब सुभद्रा को देखता है तो उसके निकट जाने की चेष्टा करता है । सुभद्रा उसकी उपेक्षा करती है तो भी लल्ली उसके निकट जाता है । सुभद्रा उस समय साहूकार की स्त्रियों के साथ थी; जब मुसाहिबजू के सैनिकों ने डाका डाला था, उसमें लल्ली मेहत्तर भी होता है । सुभद्रा उसको पहचान लेती है । लूट में मिले आभूषणों को रानी के पास भेज देते हैं जो चांदी

के आभूषण बचते हैं, लल्ली सुभद्रा के पास भेंट स्वरूप ले जाता है । सुभद्रा आभूषणों को पहचान जाती है और उसे लेने के लिए मना करती है । उसी समय कुंजीलाल सेठ आता है और लल्ली को आभूषणों सहित देख लेता है । साहूकार का शक पक्का हो जाता है और सभी लोग मिलकर राजा के पास जाते हैं । इसमें मुसाहिबजू राजा से उलझता है और वह राज्य को त्याग कर जाने लगता है ।

"मुसाहिबजू" एक लघु उपन्यास है इसका संबंध दतिया राज्य से है । इसकी भूमिका ऐतिहासिक है अधिकांश घटनाएं व पात्र काल्पनिक हैं । इससे इस उपन्यास के बारे में डॉ॰ रामशोभित प्रसाद के अनुसार - "भारत में सामन्त युग की समाप्ति के साथ-साथ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बुन्देलखण्ड की सामाजिक,धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने में यह लघु ऐतिहासिक उपन्यास सफल हुआ ।"[1] अर्थात मुगलों के पतन के बाद अंग्रेजों के पैर भारत में जमने लगे, मराठा शक्ति अभी कायम थी लेकिन आपसी झगड़ों के कारण यह शक्ति क्षीण हो रही थी । बुन्देलखण्ड के रजवाड़ों के ऊपर संधियों का बन्धन पड़ चुका था । देश में नयी शासन प्रणाली से बुन्देलखण्ड भी इस मोह में फंस गया था परन्तु अभी उनमें शिथिलता थी ।

यह उपन्यास वर्माजी का पुरुष चरित्र प्रधान उपन्यास है । इस उपन्यास का घटनाचक्र मुसाहिबजू को प्रधान बनाकर लिखा गया है । दतिया राज्य के केरुआ जागीरदार मुसाहिबजू अपने राजा की आज्ञा का पालन करते हैं । वह प्रजा के हितकारी होने के साथ-साथ अपने प्रान्त में आनेवाला संकट दूर करने में सदा तत्पर रहते हैं । इसीलिए राज्य

---

1. डॉ॰ रामशोभित प्रसाद सिंह - हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल, पृ॰-283.

त्याग के समय कोतवाल कहते हैं कि आप ने इस राज्य का नमक खाया है अत: देश की रक्षा का भार आपके ऊपर है । इस कथन से मुसाहिब जू रुकते हैं अत: हम कह सकते हैं कि उनको स्वराज्य पसन्द था । हालांकि सामन्ती वृत्ति होने पर भी उनके दिल में दया, सहृदयता की भावना देखने को मिल जाती है । मेहतरों को चाहने वाले मुसाहिबजू सामन्तों में अपवाद के रूप में देखे जाते हैं । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ रामशोभित के अनुसार - "जो दरिद्रता के चक्र में पिसते हुए भी अपने जातीय गौरव से ओत-प्रोत थे ।"[1] दलीपसिंह वस्तुत: अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों के अस्त होते हुए उन सामन्तों और मुसाहिबों के प्रतीक हैं जो स्वयं तो गरीबी में पिस रहे थे, किन्तु अपनी प्रजा के लिए सब कुछ होम कर देने के लिए तत्पर रहा करते थे ।[2] अत: यह देखा जाता है कि सामन्तलोग अपने लोगों पर बहुत अत्याचार करते हैं लेकिन दलीपसिंह और उनकी पत्नी दोनों दयालु होते हैं । अपना सब कुछ प्रजा के लिए कुर्बान करते हैं ।

मुसाहिबजू अपने लोगों को बचाने में अपना सब कुछ लगाते हैं । वर्माजी सामन्त वर्ग में त्याग सहिष्णुता दिखाकर अपने उपन्यास को आदर्शवादी बनाना चाहते हैं । उपन्यास में मुसाहिबजू दलीपसिंह और रामसिंह ऐतिहासिक पात्र हैं शेष पात्र कल्पित हैं । कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी ओजवर्द्धक रोचक और संवेदनशील है । और

1· डॉ॰ रामशोभित प्रसाद सिंह - हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल, पृ॰-283.
2· डॉ॰ गोविन्द जी - हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, पृ॰-202.

सभी घटनाएँ अपने स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ती हैं । वर्माजी अपने पात्रों द्वारा भेदभाव मिटाना चाहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि जब तक जाति-पाँति, ऊँच-नीच की भावना होगी तब तक कोई देश,कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता । एक कूपमण्डूक की तरह अपना जीवन जीता रहता है । अत: विकास के लिए विचारों का विकास होना आवश्यक है ।

झांसी की रानी {लक्ष्मीबाई} : इस उपन्यास की रचना वर्माजी ने सन् 1946 में की । इसकी मुख्य कथा इस प्रकार है ।

मोरोपन्त की पुत्री मनू {बाद में लक्ष्मीबाई} बचपन से ही पेशवा के दत्तक पुत्र नाना धोंधूपन्त और उनके भाइयों के साथ खेला करती थी । वह आरम्भ से ही साहसी और वीर थी । उनके हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना जागृत हो गई थी । बचपन से ही उसे अस्त्र-शस्त्र चलाना, अश्वारोहण व वीरतापूर्ण कार्यों को करने में अधिक आनन्द आता था । झांसी के राजा गंगाधरराव के साथ मनू का विवाह सम्पन्न होता है कुछ समय उपरान्त रानी एक पुत्र को जन्म देती है । परन्तु तीन महीने की अल्प आयु में ही उसकी मृत्यु हो जाती है । इस घटना से गंगाधरराव को भारी आघात लगता है ।

लक्ष्मीबाई का स्वभाव गंगाधरराव के स्वभाव से मेल नहीं खाता था । क्योंकि राजा अधिक विलासी व आलसी प्रवृत्ति का था लेकिन लक्ष्मीबाई की रुचि घुड़सवारी, तलवार भाले चलाना, कसरत करने में थी और सभी सहेलियों को भी ये सब सिखाती थी । इसी स्वभाव के कारण वे अपने राज्य में सभी का मन मोह लेती है ।

कुछ समय उपरान्त गंगाधरराव अपने सजातीय बालक को गोद लेकर अपना वारिस नियुक्त करके दामोदर नाम रखते हैं । कुछ समय

पश्चात् गंगाधरराव की मृत्यु हो जाती है । उस समय लक्ष्मीबाई 18 वर्ष की होती हैं । इस घटना से रानी के हृदय को बड़ा आघात लगता है । परन्तु दुर्बल न होकर सभी समस्याओं का सामना धैर्य से करती हैं । अंग्रेजों द्वारा गोद प्रथा को स्वीकार न करने पर जनता और रानी को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है । अंग्रेजों के अत्याचार दिन-प्रति-दिन बढ़ते ही जा रहे थे । रानी अपने बचपन के साथ तात्याटोपे और नाना साहब को बुलवाती हैं और उनसे विचार-विमर्श करने के बाद यह निर्णय लिया जाता है कि अंग्रेजों को हरा कर देश को स्वतंत्र कराना है ।

एक बार गंगाधरराव के द्वारा अपमानित होकर नवाब अली बहादुर अंग्रेजी शासक एलिस से घनिष्ठता बढ़ाने लगता है जिससे कि बदला ले सके । इधर अंग्रेजों को नवाब अली किले का रहस्य और होने वाली घटनाओं का वर्णन सविस्तार बता देता है । महिलाओं को अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा देने का काम चलता रहता है ।

अंग्रेजों की सेना दिल्ली के झगड़ों में उलझी हुई थी तब रानी 4 जून, 1856 को अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह करके झांसी को अपने हाथ में ले लेती है । मुख्य पदों पर रानी अपने आदमियों को रखती है । उसी समय झांसी के विरूद्ध नत्थे खां आक्रमण करता है लेकिन रानी दृढ़ता से उसका मुकाबला करती है । जनरल रोज अंग्रेजी फौज के साथ झांसी पर आक्रमण करता है । रानी की वीरता देखकर रोज चकित रह जाता है । लेकिन उसी समय पीर अली व दूल्हाजू तोपची के विश्वासघात से अंग्रेजी सेना किले में घुस आती है और रानी को किला छोड़कर भागना पड़ता है ।

रानी कालपी जाती है लेकिन वहां पर भी हार होती है । क्योंकि वहां का शासक बालाराव पेशवा आलसी व विलासिता में डूबा

रहता है । रानी ने अनेक बार उनको समझाया परन्तु उनकी विलास-पूर्ण प्रवृत्ति में कमी न हुई । परिणाम रोज का आक्रमण और कालपी पर अंग्रेजों की विजय । रानी ग्वालियर जाती हैं और उनकी सूझबूझ से ग्वालियर का किला राव साहब के हाथ आता है । विजय की खुशी में रावसाहब नाच-गान करवाते हैं । इस पर रानी बहुत दुःखी होती है । रानी घूमने निकलती हैं, उस समय रानी की एक संन्यासी बाबा गंगादास से भेंट होती है । वे "गीता" के कर्मयोग के मर्म को समझाते हैं । रानी मन में संकल्प करती है कि जीवन में विजय पराजय को न देख कर केवल संघर्ष करती रहूँगी ।

जनरल रोज ग्वालियर के राजा को अपने पक्ष में करके ग्वालियर पर आक्रमण करता है । रानी कुशलता से सैन्य संचालन करती हुई बड़े पराक्रम से युद्ध करती हुई अन्त में मर जाती है । उनका शरीर गंगादास की कुटिया में जला दिया जाता है ।

इस प्रमुख कथा के साथ-साथ प्रासंगिक कथाएं भी चलती हैं । मोती बाई और खुदा बख़्श की कथा, मोतीबाई नाट्यशाला की सुन्दर अभिनेत्री होती है । रानी के सम्पर्क में आने पर अपना जीवन देश हित में लगा देती है । खुदाबख़्श मोतीबाई से प्रेम करता है, लेकिन देश की स्वतंत्रता का उद्देश्य उनके सामने पहले था । युद्ध में ओर्छा फाटक से गोली की वर्षा करते हुऐ अंग्रेजों की गोलियों से दोनों मारे जाते हैं ।

एक और कथा तात्या टोपे और जूही की है, जूही तात्या टोपे से प्यार करती है । तात्या स्वतंत्रता संग्राम की योजनाएँ बताने रानी के पास आया करता है । तात्या टोपे अपना कर्त्तव्य देश की

रक्षा करना समझते हैं । इसी में तीसरी प्रासंगिक कथा दीवान रघुनाथ सिंह व मुन्दर के बीच उत्पन्न प्रेम और दोनों का अन्त होना है । दीवान रघुनाथ सिंह स्वतन्त्रता संग्राम के सम्बन्ध में रानी से मंत्रणा करने आते है । नत्थेखां के आक्रमण पर रघुनाथ सिंह रानी की सहायता करता है । विजय होने पर रानी मुन्दर के हाथ से रघुनाथ को लड्डू खिलाती है । उनका प्रेम आत्मिक होता है । मुन्दर रानी के पहले युद्ध में मारी जाती है । रघुनाथ सिंह रानी के साथ मुन्दर का दाह संस्कार करते हैं । स्वयं युद्ध करते हुये मारे जाते हैं । अन्त में छोटी प्रासंगिक कथा आती है । वर्णाश्रम धर्म के विरूद्ध । ब्रह्मण नारायण शास्त्री तथा भंगिन छोटी के प्रेम की ।

यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिकता लिए हुए लिखा गया है सारी कथा का संयोजक रानी लक्ष्मी बाई के इर्द-गिर्द हुआ है । रानी की वीरता, बुद्धिमानी और दृढ़ निश्चय से सभी प्रभावित होते है । इस उपन्यास का आरम्भ कुछ परिचयात्मक वर्णन से किया गया है । लेखक की मान्यता है कि "रानी स्वराज्य के लिए लड़ीं, इस सम्बन्ध में रानी के दत्तक पुत्र दामोदरराव से लेखक की बात हुई । उन्होंने भी यही बात स्पष्ट की । रानी के पत्रों द्वारा भी यह बात सामने आती है । लेकिन पारसनीस जी कहते हैं - "रानी का शौर्य विवशता की परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था ।"[1] लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों पर दृष्टि डाल कर विचार करे तो वर्मा जी का कथन ज्यादा वज़नदार लगता है । वर्माजी ने कथावस्तु में सभी बातें प्रमाण सहित स्पष्ट करने

---

1. डॉ॰ श्री नारायण भारद्वाज - ऐतिहासिक उपन्यास तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰-103.

की कोशिश की । पारसनीय के कथन को वर्माजी ने असत्य करने की पूरी कोशिश की है । इस उपन्यास में पात्रों की रचना इतिहास सम्मत है और घटनाएँ वास्तविक हैं । केवल कुछ प्रसंग को छोड़ कर । उपन्यास में अनेक प्रेम प्रसंग आये हैं उसमें वर्मा जी ने अपनी कल्पना से रोचकता लाने की पूरी कोशिश की है और सफल भी हुये हैं ।

रानी को इस उपन्यास में वीर, निर्भीक और स्वातन्त्र्य संग्राम की नायिका माना गया है । क्योंकि लक्ष्मीबाई बचपन से ही अस्त्र-शस्त्रों के प्रति रूचि रखती थी । रानी बन जाने पर युद्ध की कला को उसने और अधिक विकसित किया जिससे साधारण स्त्रियों तक को इसकी शिक्षा मिल सके । रानी की दूरदर्शिता जासूसी विभाग के बारे में अधिक नहीं लगती है क्योंकि पीरअली को जासूस नियुक्त करते समय उसकी जांच पड़ताल नहीं करवाई गई । बुरहानुद्दीन रानी को दो बार सचेत करता है, वह अपना इस्तीफा तक दे देता है । मोतीबाई भी इसके बारे में कहती है - "पीरअली बेईमानी कर सकता है ।"[1] इस पर भी रानी को उसकी हरकतों और जिस रास्ते से जाता है उस पर निगाह नहीं रखती । अतः कभी-कभी यह सोच कर हमे आश्चर्य होता है कि रानी इतनी योग्य व समझदार होते हुये भी गद्दार व्यक्ति को नहीं पहचान सकी ।

दूल्हाजू को अंग्रेज अपनी ओर मिलाकर किले का फाटक खुलवाने में सफल होते हैं । क्योंकि अंग्रेज लोग जानते थे कि पैसों से भारतवासियों को जो अपमानित हो चुके हैं को खरीदना आसान है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-399.

लेकिन तात्या टोपे एक ऐसा व्यक्ति था जो सारे देशों का भ्रमण कर अंग्रेजी राज्य के खिलाफ आवाज उठाता है और अन्त में अंग्रेज उसको फांसी पर लटका देते हैं ।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि यह एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें वर्माजी ने बड़ी सफलता से तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन किया है । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ रामविलास शर्मा लिखते हैं - "श्री वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का मार्ग चिह्न है । इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे यह उपन्यास परवर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों का मार्गदर्शन करता रहेगा । कारण यह है कि वर्माजी ने लक्ष्मीबाई के सहारे झांसी की जनता में सामन्तशाही, निरंकुशता, सामाजिक उत्पीड़न अंग्रेजों के खिलाफ जनता का संयुक्त मोर्चा बुन्देलखण्ड की भाषा संस्कृति आदि के सजीव और विशद चित्र मिलते हैं ।"[1]

सम्पूर्ण उपन्यास में लोगों के आचार-विचार सामने आते हैं । यशपाल का झूठा-सच उपन्यास में भी देश की जनता व सरकार के कार्यों का ईमानदारी से चित्रण किया गया है । उसी तरह वर्माजी इस उपन्यास में उस युग का दर्पण पेश करने में सफल हुये । उपन्यास में सभी वर्णन सच्चाई से लिखने का प्रयत्न किया है । अत: हम कह सकते हैं कि यह उपन्यास उच्चकोटि का सफल ऐतिहासिक उपन्यास है ।

वर्माजी का यह उपन्यास उद्देश्य लिए हुए है । इसमें स्वतंत्रता चाहने वालों को दिखाया है । देश के प्रति प्यार रखने वाले तथा

---

1. डॉ॰ रामविलास शर्मा - वृन्दावनलाल वर्मा : शीर्षक, निबन्ध नया पथ, अप्रैल

गद्दारों को भी दिखाया है । रानी देश प्रेम के कारण अपना बलिदान तक दे देती है, परन्तु गुलाम बनना मंजूर नहीं करती । इतिहास को लोगों के सामने प्रस्तुत कर वर्माजी ने वर्तमान में लोगों को सचेत करने का प्रयत्न किया है । देश प्रेम, राष्ट्र प्रेम ही उनका मुख्य उद्देश्य रहता है ।

माधव जी सिंधिया : वर्माजी ने 18वीं शताब्दी का चित्रण "माधव जी सिंधिया" उपन्यास में किया है । इसकी रचना 1948 में हुई । "माधव जी सिंधिया" की कथा का आरम्भ दक्षिण में निजाम सलावत जंग के साथ मराठा युद्ध से होता है । माधव जी के सुझावों से मराठा सेना की विजय हुई उसी समय रूहेलों और अवध के नवाब सफदरजंग के मध्य युद्ध छिड़ जाता है । सफदरजंग ने मराठों और भरतपुर के जाट सूरजमल से सहायता मांगी । इन तीनों की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख रूहेले ठहर नहीं सके और वे कुमाँयू के जंगलों में भाग कर छिप गये । माधव जी को इस युद्ध में अपना रणकौशल दिखाने का अधिक अवसर मिला । अतः उनका यश चारों ओर फैल गया ।

सम्पूर्ण स्थितियों से अवगत गाजीउद्दीन के पुत्र शिहाबुद्दीन ने -"सिन्धिया भाईयों - दत्ताजी और माधवजी से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की न केवल प्रार्थना की वरन् माधवजी पर अनुराग प्रकट कर उन्हें अपने पक्ष में भी करना चाहा ।"[1] इधर अहमदशाह अब्दाली पंजाब पर आक्रमण करके आगे बढ़ता हुआ दिल्ली, मथुरा, गोकुल,

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ.-15.

वृन्दावन को एक साथ उजाड़ता हुआ दिल्ली में रूहेलखण्ड के मनसब नाजिर खां को अपना और शिहाबुद्दीन को वहां का वजीर बनाकर काबुल लौट जाता है । इसे देख कर पेशवा पंजाब और राजस्थान पर अपने अधिकार की रक्षा के लिए रघुनाथराव मल्हारराव दत्ताजी और माधवजी सिंधिया को दिल्ली भेजता है । दत्ताजी और नजीब की सागरताल के झाऊ प्रदेश में टक्कर होती है और दत्ताजी वीरगति को प्राप्त होते हैं । मराठा सेना का यह अभियान सफल नहीं हो पाता ।

देश का शत्रु अब्दाली पुन: आक्रमण के लिए आता है । बालाजी के पुत्र विश्वासराव के नेतृत्व में सेनापति सदाशिवराव भाऊ, मल्हारराव होल्कर इब्राहीम खां गार्दी जनकोजी तथा माधव जी सिंधिया आदि को सेना सहित दिल्ली भेजना पड़ता है । भरतपुर के राजा सूरजमल और शिहाबुद्दीन की मैत्री से माधव जी दिल्ली पर विजय प्राप्त करते हैं किन्तु अब्दाली के साथ संधि सम्बन्धी बैठक में सदाशिवराव भाऊ के अपमानजनक व्यवहार के कारण राजा सूरजमल सेना सहित भरतपुर चले जाते हैं । इससे मराठा सेना धन और अन्न के अभाव से पीड़ित हो जाती है और उसे पानीपत के मैदान में पराजय का सामना करना पड़ता है । इस सदमें को बालाजी सहन नहीं कर सके अत: उनकी मृत्यु हो जाती है । बालाजी का द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा बनता है और रघुनाथराव उसका अभिभावक ।

माधव जी जाटों तथा गंगापार के रूहेलों को युद्ध में पराजित कर देते हैं । नजीब की मृत्यु के बाद मराठा सेना दिल्ली पर अधिकार कर लेती है । नजीब का लड़का जाबिता खां बादशाह का मीरबख़्शी बनता है और कुछ बचे हुये सैनिक युद्ध में पराजित होकर सिक्ख बन जाते हैं । माधव जी को अपने अधिकार के लिए जयपुर पर आक्रमण करना

पड़ता है । अलवर के राजा से सहायता पाकर विजय प्राप्त करते हैं । माधव जी दिल्ली आकर शाहआलम को बादशाह बनाकर गो-वध रोकने का फरमान जारी करके दिल्ली पूना की शक्ति को मजबूत करने में सफल होते हैं । माधव जी स्वयं को पेशवा का पटेल घोषित कर महान् गौरव प्राप्त करते हैं । इस उन्नति को देखकर नाना फड़नवीस व उनके व्यक्तियों को ईर्ष्या होती है । अत: तुकोजी के पुत्र मल्हार द्वारा विषपान करवाने से उनकी मृत्यु हो जाती है ।

इस कथा के साथ-साथ अनेक प्रासंगिक कथायें चलती हैं । उसमें मुख्य कथा जवाहरसिंह का गन्ना बेगम से प्यार । गन्ना बेगम जवाहर सिंह से शादी करने को तैयार होती है लेकिन गन्ना बेगम की मां उसकी शादी दिल्ली के वजीर शिहाबुद्दीन के साथ करति है । शिहाबुद्दीन की पहली पत्नी उम्दा बेगम होती है । कुछ समय बाद शिहाबुद्दीन अपनी दोनों बेगमों को लेकर जाट सूरजमल के आश्रम में रहता है । वहीं पर जवाहरसिंह से गन्ना बेगम मिलती हैं । माधव जी से गन्ना बेगम अधिक प्रभावित होती हैं अत: माधव जी को शिहाबुद्दीन की सभी योजनाएं बताती है और नजीब की चालों से माधव जी को बचाती है । इसी उपन्यास में आई सादूजी के भाई की विधवा पत्नी ताराबाई की कथा का सम्बन्ध पूना से है जो सतारा में रहकर पेशवा के विरूद्ध बगावत करने वाले एवं षड्यंत्र रचने वाले सरदारों को सहयोग दिया करती हैं ।

यह उपन्यास चरित्र प्रधान है । इसके मुख्य नायक माधव जी सिंधिया हैं । इस उपन्यास के प्राय: सभी पात्र इतिहास प्रसिद्ध हैं । कुछ पात्र काल्पनिक हैं । उपन्यास के कथानक के बारे में डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद लिखते हैं - "इसमें इतनी घटनायें और मोड़ हैं कि क्रमबद्ध

कथा विकास का स्मरण किसी पाठक को शायद ही रहे । इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि तथ्यों का भयानक मोह लेखक के अन्दर आसन मारकर बैठा है ।"[1] माधव जी ने अंग्रेजों के खिलाफ भारत की सारी शक्तियों को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया और सफल हुए । डॉ॰ प्रतापनारायण टंडन ने इस उपन्यास की सफलता के बारे में लिखा है कि - "इस उपन्यास की सफलता का प्रमुख कारण यही है कि लेखक को कथा-नायक के चरित्र का चित्रण करने में आश्चर्य जनक सफलता मिली है । इस उपन्यास के अन्य पात्र भी कथा के अनुकूल ही चित्रित किये हैं ।"[2] अर्थात उपन्यास में घटनाएं तथा पात्रों का वर्णन वर्माजी इतनी कुशलता से करते हैं कि पाठक को पता ही नहीं लगता है कि कौन-सा पात्र एवं घटनाएं इतिहास सम्मत है और कौन सी घटनाएं एवं पात्र काल्पनिक । माधवजी गंभीर व्यक्ति होने के साथ-साथ सुलझी हुई बुद्धि रखते थे । अनेक समस्याओं को सुलझाने में उनको सफलता मिली है जैसे अफगानों, मराठों, सिक्खो तथा जाटों द्वारा जो चालें चली गईं उन चालों को माधव जी ने नाकाम कर दिया । इस उपन्यास में आई जवाहरसिंह एवं शहाबुद्दीन, गन्ना बेगम और उम्दा बेगम की प्रासंगिक कथाएँ भी उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक हुई हैं ।

इस उपन्यास का माधव जी सिंधिया नामकरण उचित है । क्योंकि पूरे उपन्यास में एक मात्र ये ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनका उपन्यास में आये सभी पात्रों एवं घटनाओं से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध अवश्य

1· डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-75.
2· डॉ॰ प्रतापनारायण टंडन - हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास, पृ॰-285.

है । नाना पडनबीस को स्वराज्य के लिए संघर्ष करते हुए दिखाया गया है, परन्तु वे अंग्रेजों की चाल में जल्दी आ जाते हैं । टीपू सुल्तान अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष जारी रखता है । माधव जी ने भी टीपू को अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध जारी रखने को कहा । मुस्लिम शासकों में विलासिता व धनलोलुपता अधिक बढ़ने से उनके अन्दर अमानुषिकता चरम सीमा पर पहुँच गई थी ।

गन्ना बेगम जवाहरसिंह के प्रेम में सफल न होने पर भी माधव जी की मदद करती रहती है । अपनी सौत के अत्याचार सहन करती है क्योंकि गन्ना की माँ राजनैतिक षड्यंत्रों से घिरी हुई स्वार्थी औरत होती है ।

इस उपन्यास का कथानक विस्तृत एवं जटिल है । घटनाओं की बहुलता एवं पात्रों की संख्या भी अधिक है जिससे पात्रों का परिचय याद रखना कभी-कभी कठिन हो जाता है । इस उपन्यास का ऐतिहासिक महत्व है ।

<u>टूटे कांटे</u>: टूटे कांटे अट्ठारवीं शताब्दी के आरंभिक युग को लेकर लिखा गया उपन्यास है । इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है -

जाट गरीब किसान मोहनलाल अपनी पत्नी के कर्कश स्वभाव तथा रूखे-कड़वे व्यवहार से दु:खी होकर अपने घर को त्याग कर चला जाता है । और मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के मीरबख्शी सादत खां की फौज में भर्ती हो जाता है । वह मराठा सेना के साथ युद्ध करता है । पर शुबराती नाम के सैनिक को वह छोड़ देता है । दूसरी बार के युद्ध में शुबराती घायल मोहनलाल की रक्षा करता है । इसके बाद मोहन

मराठा सेना में चला जाता है । उसी समय शाही व मराठा सेना में युद्ध होता है । मोहन लापता हो जाता है अत: मोहन के घर पर उसके मरने की सूचना दे दी जाती है और उसका शव लापता घोषित कर देते हैं ।

मोहन की पत्नी रोनी उसका क्रियाकर्म करके काम की तलाश में तोता को साथ लेकर भरतपुर जाती है । इधर मोहन को घर जाने की इच्छा होती है । गाँव जाने पर सभी गांव के लोग उसको भूत समझ कर भगा देते हैं । रोनी व तोता के बारे में मालूम होने पर मोहन भरतपुर जाता है । उसकी पत्नी भी उसको प्रेतात्मा समझती है । निराश मन से मोहन सादत खां के दस्ते में मिल जाता है ।

सादत खां की महफिल में नूरबाई नाम की नर्तकी होती है । उसकी कला दिल्ली के शाही महल में अधिक चर्चित होती है और वह बादशाह की चहेती बन जाती है । बादशाह सादतखां को मीरबख़्शी के पद से उतार कर दूसरे व्यक्ति को मीरबख़्शी बना देता है । इससे सादत खां के मन में प्रतिशोध की भावना दृढ़ हो जाती है । और वह बादशाह के असन्तुष्टों का दल बनाता है । ईरान के नादिरशाह को आक्रमण करने का निमंत्रण देता है । नादिरशाह दिल्ली आता है तो बादशाह युद्ध के हर्जाने के रूप में नूरबाई और उसके साथ चार सहस्र दासियों को नादिरशाह की सेवा में भेंट करता है परन्तु नादिरशाह रकम लेने के लिए अड़ा रहता है ।

सादत खां को सूचना मिलती है कि नूरबाई को ईरान ले जायेंगे तो नूरबाई का वियोग उसको टूटे-कांटे के समान लगता है और वह आत्महत्या कर लेता है । नूरबाई ईरान जाना नहीं चाहती थी अत: एक दिन अवसर देखकर मोहनलाल जाट के साथ भाग जाती है ।

रास्ते में लुटेरों का सरदार चिंतामन नूरबाई व मोहन को अपने घर ले जाता है । बाद में घर से निकलने पर उन पर आक्रमण कर देता है । नूरबाई अपने कमर पर बंधी हीरे जवाहरात की पेटी उसके सामने फेंक देती है । उसके बाद नूरबाई को जीवन से विरक्ति हो जाती है । इसीलिए वह मोहन को लेकर वृन्दावन जाती है वहां पर दोनों कृष्ण भक्ति में लीन हो जाते हैं ।

इधर रोनी व तोता मोहन की आत्मा को शान्ति दिलाने के लिए वृन्दावन जाते हैं । वहाँ पर मोहन से भेंट होती है । नूरबाई के समझाने से रोनी उनके पास रूक जाती है लेकिन तोता चला जाता है । मोहन अब धार्मिक कार्यों में लग जाता है । भरतपुर के राजा बदनसिंह नूरबाई व रोनी के रूप सौन्दर्य को सुनता है अतः दोनों को प्राप्त करने के लिए दो साधुधारी कुटनों को भेजता है परन्तु सफलता नहीं मिलती है । रोनी कृष्ण भक्ति में लीन न रहकर फतेहपुर चली जाती है वहाँ पर खेती बाड़ी कर अपना जीवन बिताती है ।

इधर हरजाने में रकम न मिलने पर नादिरशाह सार्वजनिक वध की आज्ञा देता है । दिल्ली श्मशान बन जाती है । अन्त में वह करोड़ रूपये, तख्ते ताउस व चार हजार दासियों के साथ ईरान रवाना होता है । बाजीराव को पूना से अपनी प्रेमिका मस्तानी को साथ न लाने पर दुःख होता है । लेकिन बाजीराव को सूचना मिलती है कि मस्तानी को उनके बड़े भाई चिमनाजी आपा और उसके बड़े पुत्र बालाजी ने कैद कर रखा है । इससे उनको आघात लगता है और उनकी मृत्यु हो जाती है । मस्तानी भी वहीं जाकर मर जाती है ।

टूटे कांटे ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें मुगल सम्राट की विलासिता और देश में फैली अराजकता का सचित्र वर्णन है । इस उपन्यास

में मोहनलाल व नूरबाई का वर्णन करते हुये लेखक ने मोहन को सैनिक व भक्त दोनों रूपों में दिखाया है। क्योंकि उसमें पौरुष के साथ-साथ उदारता भी है परन्तु वह सैनिक दलों को बदलता रहता है उसका यही अवगुण है जो इस उपन्यास में दिखाया गया है।

नूरबाई अद्वितीय सुन्दरी है उसको अपने देश से प्यार है इसी कारण वह नादिरशाह के साथ ईरान नहीं जाना चाहती। वह जन्म से मुसलमान व कर्म से वेश्या होते हुये भी रोनी जैसी स्त्री से कहीं अधिक अच्छी है। कृष्ण की भक्ति करके एक आदर्श प्रस्तुत करती है। लेखक नूरबाई को आदर्श रूप में दिखाते हुए लिखते हैं - "नूरबाई अन्त में वेश्या का काम छोड़ कर मोहन के साथ आदर्श प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर भक्ति में लवलीन हो जाती है। मोहन में वह प्रिय और बृज के मोहन का तादात्म्य पाती है।"[1]

उपन्यास में बहुत-सी प्रासंगिक कथाएँ आती हैं जैसे मोहन का भाई-तोता, मराठा सैनिक, शुबराती, मीरबख्शी, सादत खां, पूना के बाजीराव पेशवा और मस्तानी की कथा, लुटेरा चिन्तामन की कथा तथा नादिरशाह की कहानी आदि। यह सभी पात्र कथानक का विकास करने में सहयोग देते हैं।

मुसलमानों की विलास प्रियता व अनुशासनहीनता के कारण नादिरशाह जैसा हत्यारा देश को नष्ट करने में सफल होता है। लेखक ने उस समय के माहौल का वर्णन बड़ी ही सजीवता से किया है। चिन्तामन जैसा लुटेरा देश का कलंक है जो साधारण जनता को परेशान

---

1. टूटे कांटे - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ.-361.

करता है । सादत खां गद्दार बनकर नादिरशाह को आक्रमण करने के लिए निमंत्रण देता है । बाजीराव पेशवा अपनी प्रेमिका मस्तानी के लिए मर जाते हैं परन्तु अपने देश व जाति तक को भुला देते हैं । ऐसे-ऐसे लोग वर्तमान में भी मौजूद हैं लेखक के लिखने का उद्देश्य है कि अपने देश व राष्ट्र के प्रति गद्दार न बन कर उसके प्रति प्रेम व समर्पण की भावना रखना ही हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है ।

<u>कचनार</u> : वर्माजी ने "कचनार" की रचना सन् 1950 में की । इसकी कथा इस प्रकार है । धमोनी राज्य के राजा दलीपसिंह अपने विवाह के समय अस्वस्थ होते हैं । राजा ने अपने चचेरे भाई मानसिंह को अपनी तलवार देकर कलावती को पत्थर गांव से विवाह कर लाने को भेजा । मानसिंह विवाह कर दूल्हन के साथ दहेज स्वरूप दो दासी को भी अपने साथ लाता है । उनका नाम कचनार और ललिता होता है । कलावती दलीपसिंह की ओर आकृष्ट न होकर मानसिंह को चाहती है । "कचनार" सुन्दर होने के साथ-साथ गुणवाली भी है । दलीपसिंह का झुकाव कचनार की ओर होने पर भी कचनार राजा के सामने समर्पण नहीं करती है । क्योंकि वह चाहती है कि राजा मेरे साथ विवाह करे अर्थात भांवरे डालने की स्वीकृति दे ।

एक बार सागर की सेना धमोनी पर आक्रमण करती है । राजा और मानसिंह सेना के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करते हैं और विजय की खुशी लिये लौटते समय घोड़े से गिर जाते हैं । सिर की चोट के कारण उनकी स्मरण-शक्ति समाप्त हो जाती है । बहुत इलाज के बाद भी ठीक होते न दिखाई दिए तो मानसिंह और कलावती ने मिलकर राजा को ज्वर की जड़ी-बूटी दे देते हैं । ज्वर बढ़ने से उनकी मृत्यु हो जाती है । शव को श्मशान ले जाते वक्त मार्ग में तेज हवा व वर्षा

हो जाने से लोग शव को रख कर इधर-उधर जाते हैं । वर्षा समाप्त होने पर लोग शव को लेने जाते हैं तो शव नहीं मिलता है । सभी ने यही समझा की शव को जानवरों ने खा लिया या उठाकर ले गये ।

उस समय गोसांई अचलपुरी ऊँट पर जा रहे थे रास्ते में शव को देखा तो उसमें कुछ जान थी । वे उसको उठाकर अपने आश्रम में ले जाते हैं । और दलीपसिंह का नाम सुमन्तपुरी रखते हैं । उधर मानसिंह कलावती के साथ विवाह कर लेते हैं । परन्तु उनकी इच्छा कचनार को प्राप्त करने की होती है । क्योंकि ललिता तो उसे ऐसे ही प्राप्त हो जाती है । कचनार किले से भाग जाती है और गुसाइयों के आश्रम में जाती है वहां पर कंचनपुरी बन के जीवनयापन करती है । आश्रम में दलीपसिंह के समान व्यक्ति को देखकर घबरा जाती है परन्तु धीरे-धीरे ठीक हो जाती है ।

गुसाइयों के साथ राजा दलीपसिंह धमोनी पर आक्रमण करता है उस समय दलीपसिंह का दीवार से कूदते समय पैर फिसल जाता है । चोट उसी जगह लगती है जहाँ पहले लगी थी । अत: उनकी स्मरण शक्ति पुन: प्राप्त हो जाती है । वे पुन: धमोनी का राजा बन कचनार से विधि पूर्वक विवाह करते हैं और कलावती व मानसिंह को क्षमा करके उनको पाँच गांव एक गद्दी देकर धमोनी से सम्मानपूर्वक विदा करते हैं ।

इस कथा के साथ-साथ एक प्रासंगिक कथा भी आती है । डरू नाम का अहीर अपने भाई व पत्नी मन्ना के साथ दलीपसिंह की रियासत में रहता है । राजा के काका सोनेसाह का लगान के लिए डरू के भाई बेजनाथ से कहासुनी होती है और सोनेसाह बेजनाथ को पीटता है । यह दृश्य देखकर डरू सोनेसाह की हत्या करके जंगल में भाग जाता है । राजा क्रोध में बेजनाथ की हत्या कर डरू की खोज

करवाता है । डरू को जंगल में खोजने जाता है वहां पर डरू मिलता है उसको खाना खिलाके जंगल से दूर भाग जाने की सलाह देता है । डरू मानसिंह पर अपनी पत्नी व भाई की देख-रेख का भार छोड़ कर चला जाता है ।

एक रात डरू साधुवेश में धमोनी में अपनी पत्नी मन्ना से मिलने आता है । मन्ना द्वारा भाई की हत्या का पता चलता है तो डरू धमोनी को नष्ट करने की ठान लेता है इसीलिए सेना में भर्ती हो जाता है । वह डरू से डोरीसिंह सूबेदार बन जाता है । वह अमीर खाँ के चंगुल में आ जाता है । अपनी सेना की पूरी जिम्मेदारी महन्त पर छोड़कर डोरीसिंह सागर चला जाता है । महन्त धमोनी पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । सागर में भौसले की सेना आ जाने से पिडारियों को कुचल कर शीघ्र धमोनी की ओर कूच करने लगती है । जिससे सैनिक भागने लगते हैं बहुत सैनिक बन्दी बना लिए जाते है । बन्दी बनाये गये सैनिकों में डोरीसिंह भी होता है । दलीपसिंह उसको फांसी की सज़ा देने का हुक्म देते हैं । परन्तु मन्ना रोते हुए आ जाती है । राजा उसको माफ करते हैं लेकिन अपने राज्य से निकाल देते हैं ।

"कचनार" वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान रखता है । यह नायिका प्रधान उपन्यास है । "कचनार" में इतिहास और परम्परा दोनों का प्रयोग हुआ है । वर्मा जी के अनुसार - "इसमें वर्णित सभी घटनाएँ सच्ची हैं - किन्तु एक देश और एक काल की न होकर विभिन्न देश और कालों की हैं ।"[1] इसीलिए

1· वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ-5.

उन्होंने अपनी कुशल लेखनी से सारी कथा को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लाकर एक काल और एक स्थान में गूँथ दिया ।

इस उपन्यास में "कचनार" की मुख्य भूमिका है । समाज में नारी को भोग की वस्तु मानकर स्त्रीजाति को अपमानित किया जाता है । लेकिन "कचनार" ने गुसाइयों के मध्य नारी गुसांई बनकर अपनी महत्ता व संयमशीलता का परिचय दिया । इसी से महन्त सुमन्तपुरी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं - "कचनार सरीखी स्त्रियाँ हमारे समाज में हो जायं तो घर-घर में उजाला छा जाय ।"[1] उपन्यासकार ने कथानक के अन्तिम भाग में सत् और असत् सत्कर्म और दुष्कर्म के बीच हुए संघर्ष में सत् की विजय तथा असत् की पराजय दिखाकर यहां इस बात का संकेत दिया है कि जीवन संग्राम में असत् की विजय कुछ क्षण के लिए भले ही हो जाय लेकिन अन्त में सत् पक्ष की ही स्थायी विजय होती है ।

दलीपसिंह की मृत्यु के बाद कलावती मानसिंह के साथ विवाह करती है । इसमें लेखक के आधुनिक विचार सामने आते हैं । लेखक ने कलावती को विद्रोही नारी के रूप में प्रस्तुत किया है क्योंकि तलवार से विवाह करना उसे मान्य नहीं था ।

कथावस्तु का सम्बन्ध 18वीं शताब्दी से है जब टीपू सुल्तान अंग्रेजों से युद्ध कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखना चाहता था । लेखक ने उस समय के राजाओं की राज्य लिप्सा व विलासिता का चित्रण सफलता से किया है । ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अनेक काल्पनिक और नाटकीय घटनाओं का वर्णन वर्माजी ने किया है । अनेक पात्र वर्माजी की कल्पना से उत्पन्न हुए हैं ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ.-418.

<u>मृगनयनी</u> : इस उपन्यास की रचना सन् 1950 में हुई । इसकी कथा इस प्रकार है -

राई गांव की गरीब गूजर कन्या निन्नी अपने भाई अटल के साथ रहती है । मां न होने पर भी भाई का अत्यधिक स्नेह मिलने के कारण उसके मन में दु:ख नहीं होता था । उसे बचपन से ही शिकार का शौक था । उसकी अभिन्न सखी लाखी उसके साथ शिकार के लिए जाती है । लाखी की मां मर जाती है तब लाखी निन्नी के घर आकर रहने लगती है । दोनों सहेलियों का निशाना अचूक होने से जंगली अरनें, भैंसे आदि का शिकार करना उनके बांये हाथ का खेल होता है । दोनों के रूप, गुण की चर्चा दूर-दूर तक फैल जाती है । मांडू का सुलतान गयासुद्दीन मालवा और गुजरात के सुलतान इन दोनों को पाने के लिए अनेक षड्यंत्र रचते रहते हैं ।

गयासुद्दीन चार शस्त्रधारी घुड़सवारों को राई भेजता है । निन्नी और लाखी पहले घबराती हैं । लेकिन बाद में हिम्मत बटोर कर दो घुड़सवारों का वहीं संहार करती हैं और दो अपनी जान बचाकर भाग जाते हैं । लेकिन गांव वाले घबरा जाते हैं कि अब तुर्क जरूर राई पर आक्रमण करेंगे ।

राई गांव का पुजारी बोधन ग्वालियर जाकर राजा मानसिंह को कहता है कि हमारे गांव में दो लड़कियां शस्त्र-निपुण और सुन्दर हैं आप एक बार हमारे गांव पधारो । राजा आश्वासन देकर पुजारी को विदा कर देता है । एक बार शिकार खेलते-खेलते मानसिंह राई गांव जाते हैं । निन्नी की सुन्दरता को देखकर मानसिंह आश्चर्य करते हैं । निन्नी शिकार के लिए मानसिंह के साथ जाती है वहां निन्नी अरनें को सींग पकड़कर मरोड़ देती है, राजा बहुत खुश होते हैं । निन्नी से विवाह कर उसको ग्वालियर अपने साथ ले जाते है ।

इधर गयासुद्दीन लाखी और निन्नी को पकड़ने में असफल रहते हैं । सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर पांच बार आक्रमण करता है लेकिन उसको निराशा ही हाथ लगती है । गयासुद्दीन नरवर के किले पर आक्रमण की योजना बनाता है । नट लोग लाखी और अटल को उसी किले में लेकर आ जाते हैं । नटों की योजनानुसार लाखी रस्सी द्वारा किले के बाहर उतरने को तैयार होती है, परन्तु पिल्ली से कुछ बातें मालुम होने पर लाखी नटों की रस्सी काट डालती है जिससे पिल्ली मर जाती है । गयासुद्दीन के सैनिकों की योजना नाकाम होती है जिससे गयासुद्दीन उनको निकाल देते हैं । मटरू इस अपमान का बदला गयासुद्दीन के पुत्र से मिलकर गयासुद्दीन को जहर पिलाकर लेता है ।

नरवर के किले से मानसिंह लाखी और अटल को ग्वालियर लाते हैं और लाखी अटल का विवाह करवाते हैं । यह विवाह अन्तर्जातीय होने से समाज को मान्य नहीं था । इसी कारण बोधन ब्राह्मण क्रोधित होकर चला जाता है । मुसलमानों द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है । इधर विवाह के बहाने मानसिंह आठ रानियां लाखी को भेज देती है उसमें बड़ी रानी विष खिलाने का असफल प्रयास करती है फिर भी लाखी और मृगनयनी संयम से काम लेती हैं ।

राजसिंह पहले नरवर के किले का राजा था, परन्तु अब नरवर मानसिंह के अधीन होता है । राजसिंह किले को प्राप्त करने के लिए अपनी प्रेमिका कला व संगीतज्ञ बैजू को भेजता है जोकि किले के गुप्त समाचार चित्र आदि लाने का प्रयत्न करते हैं । कला का भेद खुल जाने पर भी मानसिंह उसको सम्मान के साथ राजसिंह के पास भेज देता है और बैजू सच्चा कलाकार होने से राजा मानसिंह के दरबार में ही रह जाता है, वहीं पर नये-नये रागों का आविष्कार करने में लीन

हो जाता है । मृगनयनी ≬निन्नी≬ बैजू से संगीत सीखती है । चित्र बनाना और शास्त्रों का अध्ययन भी करती रहती है । वह मानसिंह की दिशा-निर्देशिका बनती है । मृगनयनी मानसिंह की आठों पत्नियों द्वारा अपमानित होने पर भी कभी कटु नहीं बनी । वह बड़ी रानी के पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करती है ।

सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से राई पर आक्रमण करता है । लाखी और अटल उस किले की रक्षा करते हुये मारे जाते हैं । सिकन्दर लोदी और राजसिंह मिलकर नरवर पर भी आक्रमण करते हैं । विजय प्राप्त होने पर राजसिंह को नरवर का किला अस्त-व्यस्त हालत में मिलता है ।

राजा मानसिंह को मृगनयनी कर्त्तव्य की याद दिलाने के लिये "कर्त्तव्य और कला" नामक चित्र बनाती है । राजा मान मन्दिर" व "गूजरी महल" का निर्माण करवाता है । कला प्रेमी होने से मानसिंह ने राज्य में अनेक भवनों, मन्दिरों कानिर्माण करवाया जो अपनी कला के लिए प्रसिद्ध हुए ।

उपन्यास में कई छोटी बड़ी कथायें आती हैं जैसे - लाखी अटल की प्रेम कथा, गयासुद्दीन व उसका पुत्र नसीरूद्दीन, मटरू नट नटनियों की कथा, राजसिंह उसकी प्रेमिका कला और बैजू गायक तथा राई का पुजारी बोधन सिकन्दर लोदी की कथा उपन्यास को आगे बढ़ाने में सफल होती है ।

वर्माजी का यह उपन्यास ऐतिहासिक है इसमें 15वीं शताब्दी के राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक जीवन का अच्छा वर्णन है । मृगनयनी नायिका प्रधान उपन्यास है । उसके नामकरण के बारे में डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद ने आपत्ति करते हुऐ लिखा है कि - "यद्यपि मृगनयनी को

ही नायिका स्वीकार कर उसी के नाम पर उपन्यास का नामकरण किया गया है तथापि लाखी का चरित्र इतना सशक्त है कि यदाकदा वह मृगनयनी से भी प्रबल दिखाई पड़ने लगती है ।"[1] डॉ॰ प्रसाद का मानना ठीक नहीं है क्योंकि लाखी अन्त तक न रहकर बीच में ही विलीन हो जाती है । लेकिन मृगनयनी का चरित्र शुरू से अन्त तक अच्छा रहता है । वह वीरता, योग्यता तथा सौन्दर्य में सभी प्रकार से पूर्ण थी इसीलिए यह नाम हमारी दृष्टि में सार्थक है । ऐसे तो लाखी मृगनयनी के समान थी लेकिन बाद में बराबर नहीं बन सकी । इसीलिए सर्वजीत राय के अनुसार - "मृगनयनी को नायिका बनाकर लेखक ने नारी को महत्व प्रदान किया है ।"[2] अर्थात इनके विचार से मृगनयनी एक आदर्श नारी थी जिसने दाम्पत्य जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया । स्वार्थ भावना उसके पास तक नहीं फटकती है ।

उपन्यास की कथा को अटल और लाखी की कथा आगे बढ़ाने में भरपूर सहयोग देती है । दोनों के विवाह से जाति के लोग उनका बहिष्कार कर देते हैं । वर्माजी ने वर्तमान व्यवस्था पर मार्मिक व्यंग्य किया है । राजा द्वारा कई बार इसका विरोध भी करवाया है । यह वर्माजी के मस्तिष्क की उपज ही थी वरना उस समय ऐसे सोच भी नहीं सकते थे । लेखक ने अन्धविश्वास व रूढ़ियों को इस प्रकार चित्रित किया है कि उस समय का माहौल जैसे सजीव हो गया हो । राजनैतिक स्थिति के बारे में लेखक ने अत्यधिक कौशल का परिचय दिया है । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ त्रिभुवन सिंह का मत है कि - "देश पर अधिकांश शासन

1· डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-67.

2· सर्वजीतराय - हिन्दी उपन्यास-साहित्य में आदर्शवाद, पृ॰-152.

यवनों का था और जो स्वदेशीय राज्य थे वे पारस्परिक कलह में उलझे हुए थे, जिनके बीच जनता पिसी जा रही थी ।"[1] अर्थात् उस समय बार-बार बाह्य आक्रमण होने से देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति अच्छी नहीं थी । आपसी फूट के कारण विदेशी लाभ उठाते थे ।

इस उपन्यास की कुछ त्रुटियां भी सामने आती है । इसमें लेखक ने कथा की स्वाभाविकता की उपेक्षा करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों का अधिक संकलन किया है, वह खटकता है । इसमें बहुत से लम्बे-लम्बे प्रसंग भी आये हैं जो कथा से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और न ही किसी के चरित्र का विकास होता दिखाई देता है । सामन्त होते हुये भी मानसिंह को प्रजावत्सल बताया है । और वह धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करता है । गयासुद्दीन सिकन्दर लोदी आदि का चरित्र इतिहास से लिया है इसमें सभी पात्र इतिहास सम्मत हैं । कुछ नाम व घटनाएं काल्पनिक होते हुए भी लगता है जैसे ऐतिहासिकता लिए हुए हो । अतः यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिकता की कोटि में आता है ।

<u>अहिल्या बाई</u> : सन् 1955 में इस कृति की रचना वर्माजी ने की ।

अहिल्या बाई साधारण परिवार की होती है परन्तु उनका विवाह राजपरिवार में सम्पन्न होता है । लेकिन अहिल्या बाई 29 वर्ष की अवस्था में विधवा हो जाती है । इसके बाद उनके जीवन में एक के बाद एक दुःख आते रहते हैं । पहले बेटे की मृत्यु उसके बाद

---

1. डॉ॰ त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृ॰-333.

दामाद की मृत्यु तथा बेटी का सती हो जाना । इसके बाद भी अहिल्या बाई ईमानदारी से अपना कर्म करती रही ।

अहिल्या बाई दूर के संबंधी तुकोजीराव होलकर के पुत्र मल्हार राव होलकर से स्नेह करती है । रानी चाहती है कि वह एक कर्त्तव्य परायण सदाचारी योग्य राजा बने । लेकिन मल्हार का चरित्र भ्रष्ट शराबी, लोभी, कामुक आदि अवगुणों से भरा था । रानी को विश्वास होता है कि मल्हार कभी न कभी जरूर सुधरेगा । परन्तु मल्हारराव डाकुओं और आनन्दी के साथ मिलकर लूट-पाट मचाता है । रानी और तुकोजी जब यह समाचार सुनते हैं तो उसको विश्वास नहीं होता है । वे वहाँ की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए भोपत मोधिया और उसकी गूंगी बहरी बहन सिन्दूरी को रख देते हैं ।

उस समय रानी अनेक समस्याओं से घिरी हुई होने पर भी हिम्मत से काम लेती है । रानी अनेक यात्राएं करती हुई जगह-जगह मन्दिर कुएं तालाब बनवाती है । इधर बहू और आनन्दी मल्हारराव के दल से अलग हो जाते हैं । दक्षिण के नासिर प्रान्त में मल्हार लूट-पाट करता है । इधर भोपत रानी के महल में चोरी करने आता है परन्तु सिन्दूरी की वजह से पकड़ा जाता है । सिन्दूरी रानी की प्रिय हो जाती है । बिहसिंह गनपत बन कर रानी के पास आता है तो उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है ।

मल्हारराव के अत्याचार बढ़ते ही जाते हैं । वह आनन्दी को मार देता है । रानी मल्हार को कैद करती है परन्तु तुकोजी के आग्रह पर छोड़ देती है । मल्हार फिर से उत्पात मचाता है । अन्त में रानी राजपुर-मानपुर को युद्ध न करने व भीलों को भी शान्त करती है । रानी अपना हाथ सिन्दूरी पर रखकर एवं परिजनों को आशीर्वाद देकर स्वर्ग सिधार जाती है ।

वर्मा जी का यह लघु उपन्यास है । 18वीं शताब्दी की शासन व्यवस्था में चारों ओर अशांति थी । सामाजिक धार्मिक परिवेश के अन्तर्गत व्याप्त अंधविश्वासों में सती प्रथा एवं बलिप्रथा का बोलबाला था । उस समय के अंधकारपूर्ण एवं अशांत वातावरण में वर्माजी ने इस उपन्यास में रानी को एक न्यायप्रिय धर्मप्रिय तथा जनता के प्रति प्रेम रखने वाली सहृदय शासिका के रूप में दिखाया है । हालांकि रानी को व्यक्तिगत रूप से कई दु:खों, कष्टों और पीड़ाओं को झेलना पड़ा था । इस सन्दर्भ में डॉ॰ सियारामशरण प्रसाद के अनुसार "अहिल्याबाई का चरित्र कई स्थलों पर अभिन्नयात्मक और मुख्यत: विश्लेषणात्मक है । स्वाभाविकता उसका गुण है । सिन्दूरी जैसे दोष ग्रस्त मोहाभिभूत नारी का अहिल्याबाई के संसर्ग से सद्प्रवृत्तियों के वशीभूत होना अहिल्या बाई के चरित्र की महानता का द्योतक है ।"[1] लेकिन रानी के चरित्र में कई दुर्बलताएं भी हैं जैसे अपने दामाद की असाध्य रूग्णावस्था को देखकर वह बलि चढ़ाने के लिए भी सहमत हो जाती है । मल्हारराव को इतना उत्पात करने पर भी दंड नहीं देती है । परन्तु मानपुर राजपुर के राजपूतों को विद्रोह करने के अपराध में तोपों से उड़वाया ।

मल्हार राव उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाता है । आनन्दी गणपत राव आदि बुरे चरित्र में आते हुए भी अन्त में गणपत के जीवन में परिवर्तन को दिखा कर वर्मा जी ने इस उपन्यास को आदर्शवादी बना दिया । इस उपन्यास में और भी अनेक पात्र हैं जो अनेक गुण-दोषों

1· डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-73.

के साथ कथा का विकास करते हैं ।

यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक नहीं हो पाया है । क्योंकि इसका फलक छोटा होने के साथ-साथ वर्माजी ने यहाँ-वहाँ से बिखरी सामग्री और घटनाओं को जोड़-जोड़ कर अहिल्याबाई उपन्यास लिखा । इसको पढ़ कर ऐसा लगता है कि लेखक को ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति मोह है । अत: यह उपन्यास ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों रूपों में हमारे सामने आता है ।

<u>भुवन-विक्रम</u> : भुवन-विक्रम उत्तर वैदिक-युग के काल को लेकर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है । फलत: इसमें वैदिक-कालीन संयम, अनुशासनपूर्ण जीवन पद्धति एवं व्यवस्था का वर्णन विस्तार से किया गया है । इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है ।

अयोध्या के राजा रोमक के शासनकाल में भीषण अकाल पड़ा । राजा की स्वार्थ बुद्धि, कम वेतन की नीति व असफल योजनाओं को लेकर श्रमिक वर्ग में असन्तोष फैल जाता है । राजा हृदय से उदार होता है लेकिन उनका पुत्र भुवन उच्छृंखल, उदंड तथा बाचाल होता है । राजा के गुरू मेघ ने राज्य के लोगों को भड़काना शुरू किया जिससे राज्य की जनपद समिति ने राजा को पद से उस समय तक हटा दिया जब तक राज्य की स्थिति सुधर नहीं जाती । राजा रोमक अपने पुत्र को नेमिषारण्य में स्थित महातत्वज्ञानी ऋषि धौम्य के पास ले जाते हैं और उसकी शिक्षा हेतु पुत्र को वहीं छोड़ देते हैं ।

योग्य गुरू मिलने से भुवन में अनुशासन, शिक्षा व शील जैसे गुणों का विकास होता है । अपने पिता द्वारा शूद्र कपिंजल का वध किए जाने का विरोध करके भुवन गुरू को अपनी योग्यता का परिचय देता

है । भुवन भिक्षाटन के लिए गांव में जाता है तो उसको गौरी नामक युवती दरवाजे पर खड़ी मिलती है । हर रोज भुवन उसको देखता है । दोनों में प्रेम हो जाता है तब भुवन गौरी की मां से कहता है कि मै निकट भविष्य में गौरी को अपनी धर्म पत्नी बनाने की प्रतिज्ञा करता हूँ । इस बात का पता धौम्य ऋषि को लगता है तो भुवन को आज्ञा देते हैं कि तुम किसी स्त्री से एकान्त में नहीं मिलोगे और न ही एक बार से अधिक किसी के दरवाजे पर भिक्षा मांगने जाओगे । भुवन गुरू की आज्ञा का पालन करता है । कई वर्षों बाद राजा रोमक ऋषि के आश्रम में अपने पतन का वास्तविक कारण जानने के उद्देश्य से पहुँचता है । उसके हृदय में यही विचार था कि कपिंजल जैसे शूद्र का तप करना ही उसके पतन का कारण है इससे राजा कपिंजल की हत्या करना चाहता है लेकिन रास्ते में सत्य का प्रकाश देखने से राजा की आँखें खुल जाती हैं । इसीलिए राजा के दुर्दिन का कारण किसी शूद्र की तपस्या करना नहीं बल्कि अपने ही दोषों की वृद्धि को मानता है ।

गुरू के आशीर्वाद के साथ रोमक व भुवन अयोध्या आकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अकाल पीड़ितों को दान कर देते हैं । रोमक नील-पाठीश व्यापारी के पास ऋण मांगने जाता है परन्तु ऋण नहीं मिलता । नीलपाठीश अपनी पुत्री हिमानी का विवाह भुवन से करने का प्रस्ताव रखता है । हिमानी का स्वभाव बड़ा ही कुटिल क्रूर होता है । हिमानी और उसके पिता यह षड्यंत्र रचते हैं कि विवाह के समय भुवन को जान से मार देंगे । लेकिन भुवन की पूर्व प्रेमिका गौरी तथा कपिंजल के प्रयासों से भुवन की जान बच पाई । भुवन के माता-पिता भुवन व गौरी का विवाह करते हैं । गौरी अपने माता-पिता द्वारा लिये ऋण से मुक्त हो जाती है । रोमक को अयोध्या का खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त होता है ।

यह उपन्यास सन् 1957 में प्रकाशित हुआ । यह वर्मा जी का लिखा दूसरा पुरूष प्रधान उपन्यास है । इसमें वर्माजी की कल्पना की एक नवीन संचरण भूमि दृष्टिगोचर होती है । इसमें राजा के पुत्र भुवन को नायक बनाकर कथा का विकास होता है । धौम्य ऋषि द्वारा अपने शिष्यों को आत्मा के विवेक की व्यवस्था किस प्रकार की जाय यह उपदेश देते थे । इसी कारण भुवन अपने पिताजी के शूद्र कपिंजल के वध करने के निश्चय पर दुख होता है और पिताजी को कहता है - "अधर्मयुक्त साधन से राज्य को प्राप्त करना आपको शोभा नहीं देता । उतने दिनों जिन शूद्रों का आप पक्षपात करते रहे, क्या उन्हें अब मिटाने जा रहे हैं ? अपने बहुत बड़ों ने कहा कि परमात्मा का भक्त शूद्र परमगति को प्राप्त करना है, यहाँ तक कि नीतिवान हरिभक्त चाण्डाल श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्विज से भी बढ़कर है ।"[1] वर्मा जी ने इस उपन्यास में बड़े-छोटे, राजा-रंक सभी को बराबर जीने का हक दिया है क्योंकि सभी परमात्मा की सन्तान हैं । उस समय जातिवाद ज्यादा ही था इसी को हटाने के लिए वर्मा जी अपनी पूरी कोशिश करते हैं । डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद भी लिखते हैं - "समाज के स्वस्थ विकास के लिए हमें क्या करना होगा ? इसी तथ्य पर समुचित ढंग से यह उपन्यास प्रकाश डालता है ।"[2] वर्मा जी धौम्य ऋषि द्वारा भुवन को पुरूषार्थ के साथ सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय श्रेष्ठ ढंग से समझाने में सफल हुए हैं ।

प्रसंगिक कथाओं से भी उपन्यास आगे बढ़ता है । भुवन और गौर की कथा जो उपन्यास के मध्य मे जाकर कुछ समय तक रूक जाती

---

1. भुवन विक्रम - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰-163.
2. डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-74.

है । भुवन को पहले उदंड बताया लेकिन गुरु की कृपा से वह नेक इन्सान बनने में सफल होता है । वर्माजी ने उस काल के जनतंत्र का अच्छा चित्रण किया है । लेकिन राज्य में अंधविश्वास, अनुशासनहीनता और षड्यंत्रों की अधिकता के कारण लोग धोखा खा जाया करते हैं । भुवन भी इसका शिकार होता है ।

गौरी और हिमानी के माध्यम से भारत व विदेशी संस्कृतियों में फर्क महसूस होता है । क्योंकि गौरी का प्रेम त्याग व समर्पित एक निष्ठ होता है लेकिन हिमानी व्यापारी बुद्धि की होने से स्वार्थी, विश्वासघाती व उदंड होती है ।

इस कथा के साथ शूद्र कपिंजल की कथा, दीर्घबाहु, आचार्य मेघ तथा धौम्य ऋषि की कथाएं चलती रहती हैं । शूद्र कपिंजल की कथा पढ़ने पर लगता है कि उस समय वर्णव्यवस्था कठोर थी परन्तु धौम्य ऋषि इसका अपवाद होते हैं । उनके आश्रम में सभी वर्ग के लोग आकर विद्या ग्रहण कर सकते थे । इसमें वर्माजी का उद्देश्य है कि - "उस काल के सलोनेपन, जीवन संयम और सहृदयता को हम आज जीवन में उतार सकें तो क्या बात है, बिना संयम और अनुशासन की गाड़ी आगे नहीं बढ़ाई जाती ... अब क्या से क्या हो गया ।"[1] वर्मा जी अतीत के माध्यम से वर्तमान को प्रेरणा देने का कार्य करते हैं ।

कुल मिलाकर हम इस उपन्यास को आदर्शोन्मुखी ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं । यह उपन्यास और उपन्यासों से अलग हट कर है । इसमें वैदिक युग की अर्थव्यवस्था, वर्णव्यवस्था, धर्म-व्यवस्था का वर्णन सफलता से किया गया है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन विक्रम, पृ.-10.

<u>रामगढ़ की रानी</u> : सन् 1857 की क्रान्ति में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाली मध्य प्रदेश के मण्डला जिले के रामगढ़ में रहने वाली रानी अवन्ती बाई का चरित्र वर्माजी ने बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत किया । रानी मण्डला क्षेत्र की स्वामिनी होने के साथ वह कुशल सैन्य-संचालक होती हैं । रानी का पति विक्रमादित्य के पागल होने से अंग्रेज रामगढ़ को अपने अधिकार में कर लेते हैं । रानी अपने पति की सेवा करने के साथ-साथ देश की राजनीतिक गतिविधियों में रूचि रखती है । अमानसिंह और शेरसिंह रानी के पुत्र होते हैं बड़ा बेटा प्रमुख सेनापति बनता है ।

अंग्रेजों से क्षुब्ध होकर शंकरशाह अपनी हवेली पर जबलपुर व खड़देवरा के सरदारों की बैठक करते हैं । उसमें रानी अपने दो प्रतिनिधि उमरावसिंह व गिरधारी को भेजती है । सभी एक मत से अंग्रेजों को देश से निकालने का उपाय करते हैं । सभी अंग्रेजों के पास जाते हैं लेकिन परिणाम कुछ नहीं निकलता है । परन्तु रानी हिम्मत से काम लेती है और वह सभी सरदारों के पास कांच की चूड़ी व कागज की पुड़िया भेजती है । जिसका अर्थ होता है कि देश की रक्षा करने वाले आगे आयें वरन् यह चूड़ी पहन ले । रानी का प्रयास सफल होता है । अनेक ठाकुर रानी को सहायता देने का वचन देते हैं । भगतसिंह, कर्णदेव, बहादुरसिंह शंकरशाह आदि रानी को सहयोग देने का वादा करते हैं । कवि सम्मेलन न होने के कारण गिरधारी अपने को अपमानित महसूस करता है । वह अंग्रेजों को रानी की योजना विस्तार से बता देता है । जिससे अंग्रेजों ने शंकरशाह रघुनाथशाह के घर की तलाशी लेते हैं उसमें कुछ कागज निकलते हैं । अंग्रेजों ने दोनों को तोप के मुँह पर रख कर उड़ा देते हैं ।

इधर विक्रमादित्य की मृत्यु हो जाती है, परन्तु रानी अपना कर्तव्य नहीं भूलती । एक बार रानी एक अंग्रेज को चांटा लगाती है क्योंकि वह जनता को पीड़ित कर रहा होता है । अंग्रेजों के विरूद्ध खुला विद्रोह करती हुई रामगढ़ से कोर्ट आफ बार्डस के कर्मचारियों को निकाल देती है । किसानों का पूरा सहयोग मिलने से बिछिया नारायणगंज, घुघरी रामनगर पर रानी अधिकार कर लेती है । रानी अंग्रेजों से छापामार युद्ध करती है लेकिन शत्रुओं की सेना रानी पर आक्रमण कर देती है । घमासान युद्ध होता है, रानी के हाथ पर गोली लगती है जिससे रानी की बन्दूक गिर जाती है । रानी उमराव सिंह से तलवार लेकर अपने पेट में भोंक देती है । मृत्यु शय्या पर पड़ी रानी स्वयं को इस विद्रोह का दोषी बताकर एवं किसानों को निर्दोष बताकर मर जाती है । रानी की सहायता करने वाले विजयराव गढ़ के राजा सरयू प्रसाद सिंह को काले पानी की सज़ा हो जाती है पर वे मार्ग में ही आत्मघात करने में सफल हो जाते हैं ।

यह उपन्यास इतिहास के तथ्यों पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है । 1857 की क्रान्ति में रानी बहादुरी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होती हैं । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ कृष्णा अवस्थी के अनुसार - "इस महान् नारी के अमर बलिदान ने विदेशियों की आँखों को अश्रुपूरित कर दिया हो तो आश्चर्य ही क्या ?"[1] अर्थात् रानी सच्ची देश-भक्त होती है।उसने एक स्थान पर कहा कि - "जब तक हमारे तन में रक्त की एक बूंद है तब तक कोई हमारा धर्म नष्ट नहीं कर सकेगा ··· अन्याय के प्रति जीवन-पर्यन्त लड़ूँगी ।"[2] इससे पता चलता है कि रानी विद्रोही

1· डॉ॰ कृष्णा अवस्थी - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृति अध्ययन, पृ॰-144.

2· वृन्दावनलाल वर्मा - रामगढ़ की रानी, पृ॰-23.

प्रवृत्ति की है । उससे अन्याय सहन नहीं होता है । जनता के प्रति प्रेम होने से ही मरते समय अपनी प्रजा को निर्दोष बता देती है ।

इस कथा के साथ कुछ प्रासंगिक कथाएं हैं जो रानी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती हैं । जैसे उमराव सिंह, शंकरशाह व रघुनाथ साह, शंकरशाह का कारिन्दा गिरधारी तथा अंग्रेज अफसर आदि की कथाएं एक दूसरे से बंधी हैं । शंकरशाह व रघुनाथ साह की वीरता व साहस देखकर एक अंग्रेज डॉ॰ भी आश्चर्य चकित रह जाता है ।

कहते हैं असफलताओं के पीछे एक धोखा है । रानी के साथ भी यही हुआ । गिरधारी जैसा देशद्रोही होने पर पराजय का सामना करना पड़ा । यह देश के लिए कलंक बन गया । इस उपन्यास में एक पक्षीय दृष्टिकोण दिखाया गया है । उस समय की सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन लेखक ने कुशलता के साथ किया है । इस उपन्यास में पात्रों की अधिकता है । अनेक ऐतिहासिक पात्रों के साथ-साथ कई काल्पनिक पात्रों की रचना भी लेखक ने की है । वर्माजी की कल्पना-शक्ति अद्वितीय है । उपन्यास के पढ़ने से लगता है कि सभी घटनाएं व पात्र जैसे इतिहास से ही हैं ।

महारानी दुर्गावती : इस उपन्यास की रचना वर्माजी ने सन् 1964 में की है । इसमें रानी दुर्गावती के शौर्य तथा उसकी सुन्दरता का वर्णन बड़ा ही रोचक ढंग से किया है । इस उपन्यास की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

मनियागढ़ में मनिया देवी की पूजा के लिए अगहन की पूर्णिमा को मेला लगा करता है । उस समय राजगोड़ व चन्देल दोनों ही इस अवसर पर आते हैं । गोडवान के राजा दलपति सिंह तीन तीरों से एक बड़े शेर को मार कर उस मन्दिर के पास लोगों को दिखाने के लिए

रखते है । लोग आते हैं और देख कर दलपति की प्रशंसा करते हैं । उस समय कालंजर के चन्देल राजा कीर्तिसिंह की पुत्री दुर्गावती की सहेली रामचेरी शेर को देखकर आश्चर्य प्रकट न कर यह कहती है कि हमारे यहाँ तो तीन तीरों की बजाय एक ही तीर में शेर को मार देते हैं । दूर खड़े दलपति व उसके साथी मोहनदास यह बात सुन कर रामचेरी को बुलाते हैं । उस समय रामचेरी दुर्गावती के अचूक निशाने व चित्रकला, संगीत आदि की प्रशंसा करती है और दुर्गावती को दलपति के शौर्य व सौन्दर्य से अवगत करवाती है । दुर्गावती अपने मन में उसको अपना आराध्य देव स्वीकार कर लेती है । इधर मोहनदास व रामचेरी आपस में प्रेम करने लगते हैं ।

दुर्गावती चन्देलवंश की है और राजा दलपतिसिंह के राजगोड़ होने से दोनों का विवाह नहीं हो सकता था । क्योंकि चन्देल लोग अपने को राजगोड़ों से ऊँचा मानते थे । कीर्तिसिंह ने एक मात्र सन्तान होने से दुर्गावती को पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी । वह बाणविद्या, तलवार चलाना व शिकार खेलने में पारंगत होती है । राजकीय समस्याओं पर पिता के साथ विचार-विमर्श किया करती थी । उस समय शेरशाह का आक्रमण हुआ था उससे निपटने के लिए दुर्गावती सोचती है कि काश बघेले, पडिहार और कलचुरी एक होकर कालंजर का साथ दे तो शेरशाह को आसानी से पराजित किया जा सकता है । परन्तु यह सब असंभव होता है । दुर्गावती ने सोचा की दलपति वीर है और बावन गढ़ों का स्वामी है अगर इससे विवाह करूँगी तो कालंजर को सहायता ही मिलेगी । दलपति,कीर्तिसिंह,दुर्गावती व रामचेरी शिकार खेलने जाते हैं । दुर्गावती को दलपति एक घायल शेरनी से बचाता है । दुर्गावती उसी से विवाह करने की बात पिता को कहती है । पिता चाहता तो था लेकिन जाति के डर से वह दूर चला जाता है । दुर्गावती किले की

सुरंग के रास्ते से होती हुई सिगौरगढ़ पहुँचती है, दलपति भी साथ होते हैं। वहीं पर इनकी शादी सम्पन्न होती है। रामचेरी और मोहनदास की भी शादी वहीं पर हो जाती है।

विवाह के बाद भी दुर्गावती दलपति को राज्यकार्य में सहयोग देती है। रानी के एक पुत्र वीरनारायण होता है। लेकिन वह तीन वर्ष का होता है तो रानी विधवा हो जाती है। वह पर्दा नहीं रखती थी। रानी का देवर चन्द्रसिंह रूठ कर चांदा चला जाता है फिर नहीं आता। रानी बड़ी कुशलता से राज्य का कार्य संभालती है। उस समय राज्य में अनेक कुओं, तालाबों तथा मन्दिरों का निर्माण करवाती है।

इधर दुर्गावती के विवाह का समाचार सुनकर सुधरसिंह को बड़ा क्रोध आता है। वह दुर्गावती और कीर्तिसिंह से बदला लेने का निश्चय करता है। अवसर देखकर शेरशाह को कीर्तिसिंह पर आक्रमण में सहयोग देता है। कीर्तिसिंह का वध हो जाता है और सुधरसिंह को निकाल देते हैं। वह गोपानन्द का रूप बनाकर अकबर से भेंट करता है और उसका विश्वास पात्र बनता है। दुर्गावती के किले में भी विश्वास-पात्र बनकर रहता है जिससे अकबर को वहां की सूचना देता रहे।

मोहनदास और दुर्गावती वीरता से शत्रु की सेना से युद्ध करते हैं, अन्त में दुर्गावती अपने हाथ से अपनी छाती में कटार भोंक देती है। उसके साथ इसका हाथी व महावत गनू की भी मृत्यु हो जाती है। रामचेरी और अन्य स्त्रियाँ मिलकर सती हो जाती हैं। वीरनारायण युद्ध करता हुआ मारा जाता है। अन्त में आसफ खां चौरागढ़ को लूटता है और लूट का कुछ अंश अकबर को भेजता है। उसी के साथ दो स्त्रियों को भेजता है - यह कहते हुए कि इसमें से एक दुर्गावती की बहन है और दूसरी वीरनारायण की होने वाली पत्नी। जिस स्थान पर रानी दुर्गावती

की मृत्यु हुई उस स्थान पर गाँव वालों ने चबूतरा बना दिया । वहाँ पर सभी आकर श्वेत फूल या श्वेत पत्थर के कंकड़ चढ़ाते हैं ।

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें दुर्गावती के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन है इसका नामकरण सार्थक है क्योंकि यह नायिका प्रधान है और पूरा उपन्यास दुर्गावती के इर्द-गिर्द घूमता है । इसमें अनेक प्रासंगिक कथाएं हैं जैसे रामचेरी और मोहनदास की कथा, महावत गनू की कथा, शेरशाह,अकबर और आसफ खां आदि की कथा । इसमें रामचेरी व मोहनदास की कथा प्रधान होते हुऐ भी सुघरसिंह की कथा प्रधान लगती है । इन सभी से उपन्यास के विकास में सहयोग मिलता है ।

सुघरसिंह कीर्तिसिंह और दुर्गावती के पतन का कारण बनता है । इस उपन्यास में वह खलनायक के रूप में उभरा है । वर्माजी अपने उपन्यास के सभी पात्रों की कथा को समाप्ति तक पहुँचाते हैं लेकिन सुघरसिंह की कथा अधूरी छोड़ दी । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ मोहिनी सहाय के अनुसार "दुर्गावती की कथा की समाप्ति के बाद भी जब उपन्यासकार ने परिशिष्ट में वीरनारायण आधारसिंह, मोहनदास, रामचेरी आदि की अधूरी कथा को समाप्ति पर पहुँचाने का प्रयत्न किया है तब इसकी कथा को बीच में छोड़ देना खटकने की बात हो जाती है ।"[1] अर्थात् यह कथन सही है कि इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति को वर्माजी ने उसका अन्त कैसे और कहाँ हुआ ? नहीं बताया ।

दुर्गावती के समय अधिकांश भारत में अशान्ति और उपद्रव का साम्राज्य होता है । जातिगत भेदभाव की भावना लोगों में ज्यादा थी । दुर्गावती ने जातिगत ऊँच-नीच की भावनाओं के विरूद्ध विवाह किया ।

1· डॉ॰ मोहिनी सहाय - वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास-साहित्य, पृ॰-211.

यहाँ पर लेखक का प्रगतिवादी दृष्टिकोण सामने आता है । दुर्गावती की न्याय-प्रियता सुन्दरता व वीरता का गुणगान चारों तरफ होता था । उसने अनेक ऐसे कार्य किये जिन्हें आज भी जनता नहीं भूली है । पूरे उपन्यास में दुर्गावती को संघर्षशील नारी के रूप में उभारा है ।

इस उपन्यास में कई ऐसे पात्र व घटनाएं आई हैं जो ज्यादा महत्व नहीं रखती हैं । पूरे उपन्यास में नारी पात्र दो ही दिखाई देती हैं । दुर्गावती व रामचेरी, दुर्गावती का व्यक्तित्व इतना प्रबल है कि उपन्यास में स्त्री पात्रों की कमी को पूरा कर देता है । दुर्गावती को देशहित, राष्ट्रहित के लिए संघर्ष करते हुये दिखाया है । एक बार वह कहती है - "हमारी आपसी कलह से ही विदेशी यहां अपना पैर जमाते हैं ।"[1] अर्थात रानी की इच्छा होती है कि सम्पूर्ण राज्यों की शक्ति एक होकर विदेशी शक्ति को समाप्त कर सकती है । अन्तत: उस समय के सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक, धार्मिक जीवन की सम्पूर्ण झलक इस उपन्यास में दिखाई देती है । अत: इसे शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं ।

<u>सोती आग</u> : वर्माजी ने यह उपन्यास सन् 1729 में दिल्ली में हुए साम्प्रदायिक दंगों को लेकर लिखा है । इस उपन्यास की रचना वर्माजी ने सन् 1967 में की । इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है ।

"सोती आग" उपन्यास की मुख्य कथा शबनम व गुलाब खाँ के विवाह न होने की है । शबनम का विवाह गुलाब खां से होने वाला

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ.-12.

होता है परन्तु कोकीजू उसकी शादी रौशनुद्दौला के साथ कर देती है। इसी बात से गुलाब खां के मन में प्रतिकार की भावना उत्पन्न होती है। वह हिन्दुस्तानी दल से हट कर जूताफरोशों के दल में मिल जाता है। छोटी-सी बात को लेकर भयानक दंगा करवाने का दोष गुलाब खां को दिया जाता है।

अकबर बादशाह के अथाह परिश्रम से हिन्दू-मुसलमानों में प्रेम भावना को बढ़ावा मिलता है। लेकिन औरंगजेब ने इसमें साम्प्रदायिकता का विष भर दिया जिससे देश में दो गुट हो गये। पहला गुट देश को चाहने वाला उसमें हिन्दू व यहाँ के स्थायी मुसलमान, दूसरा गुट जूताफरोशों का उसमें ईरान-इराक-तुर्क थे। यह गुट यहाँ से मार-काट करके पैसे ले जाने का काम करता था।

बादशाह मुहम्मदशाह स्वयं कट्टरवादी होता है वह अपनी प्रेमिका कोकीजू के कहने से आजम खां की पुत्री शबनम का विवाह रौशनुद्दौला से करवाता है। गुलाब खां का विवाह शबनम से न होने पर भी वह उससे सम्बन्ध रखना चाहता है। परन्तु उसको निराशा मिलती है। प्रतिकार की भावना रखते हुए गुलाब खां जूताफरोशों के गुट में शामिल हो जाता है। कोकीजू तख़्त-ताउस की चाह से कमरूद्दीन को वजीर के पद से हटा कर रौशनुद्दौला को वजीर बनाती है। वह हिन्दुस्तानी दल के पक्ष में रहती है।

एक बार हिन्दू व मुसलमानों के बच्चे सादुल्ला खां के चौक में पटाखे छोड़ते हैं उसकी चिनगारी शुभकर्ण के दरबारी लिबास पर पड़ जाती है। इसी से क्रुद्ध हो उसके सिपाही हिन्दू-मुस्लिम बालकों को पकड़ कर उनकी पिटाई करते हैं। बच्चों को छुड़ाने एक वृद्ध मुसलमान हाज़ी हफ़ीज खां आगे आते हैं। लेकिन सैनिकों के क्रोध से इनकी जान

चली जाती है । इसी घटना को लेकर गुलाब खां हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध भड़काना शुरू करता है ।"मार्च 1719 के दिन यह दंगा होता है । शेर अफगान को देखकर जूताफरोशों का दल बेकाबू हो जाता है और मस्जिद में घमासान युद्ध छिड़ जाता है, मारकाट होती है । उसी समय गुलाब खां सुनता है कि - "हवेली की बेगमों को तबाह कर दो ।"[1] उसी समय गुलाब खां अपनी प्रेमिका शबनम की रक्षा करने हवेली में जाता है । शबनम की रक्षा करते हुए उसकी मृत्यु हो जाती है । शबनम उसको हवेली में ही दफन कर देती है । उसकी कब्र की चादर पर फूल चढ़ाते वक्त वह रो देती है और कहती है - "गुलाब मुझे माफ कर देना ।"[2]

यह उपन्यास ऐतिहासिक है, लेखक ने पहले इसका नाम दिल्ली का दंगा रखा था परन्तु यह नाम ज्यादा सार्थक नहीं लगा । इसीलिए इसका नाम "सोती आग" रख दिया । इसका वर्णन वर्माजी ने महारानी दुर्गावती उपन्यास के परिचय में किया है । यह उपन्यास घटना प्रधान है इसमें सन् 1729 में हुए दिल्ली के भीषण दंगों में हुई मार-काट का वर्णन है ।

उपन्यास के अन्दर मुहम्मदशाह के दरबारी षड्यंत्रों की एक झलक देखने को मिलती है । छोटी सी घटना एक भीषण हत्याकांड बन जाती है । वर्माजी ने अपने उपन्यास में लिखा है कि - "साम्प्रदायिक हिंसा के पटाखों की एक चिंनगारी से विकराल रूप धारण कर सारी दिल्ली को अपनी लपेट में ले लिया ।"[3] इसी घृणा और हिंसा में शेर अफगान की मित्र वत्सलता और गुलाब खां जैसों का आत्मत्याग सराहने योग्य है ।

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ.-102
2. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती - परिचय, पृ.-2
3. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ.- 93

लेखक गुलाब खां के माध्यम से यह बताने की कोशिश करते हैं कि गुलाब खां इतना बुरा नहीं होता क्योंकि उसको इस बात का पता नहीं होता कि उसकी लगाई चिनगारी इतनी फैल जायेगी । जब हिंसा फैलती है तो उसकी आत्मा को दुःख होता है उसी का प्रायश्चित करने के लिए अपने प्राणों की आहुती दे देता है । गुलाब खां को सच्चा प्रेम करने वाला दिखाया है । कोकीजू इस उपन्यास मे स्वार्थी स्त्री दिखाई देती है, स्वार्थ वश ही वह शबनम व गुलाब खां की शादी नहीं होने देती है । राजनीति के षड्यंत्रों में इसकी भूमिका अधिक रहती है और कुछ हद तक दंगे होने का कारण वही होती है ।

यह उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी यथार्थ का चित्रण करता है । कल्पना के भी कुछ अंश इसमें समाये हुये हैं । इसका नामकरण सार्थक है । वर्माजी की दृष्टि आगे तक जाती है क्योंकि आज भी देश में इसी रूप में देगे होते हैं । यशपाल का 'झूठा सच' उपन्यास इसी तरह से लिखा गया है । आज भी हिन्दू मुस्लिम दंगे होते हैं । रामजन्म भूमि जैसी समस्या को लेकर, पंजाब, असम, कश्मीर आदि में जातिवाद को लेकर ऐसी घटनाएं रोज होती रहती हैं । अतः वर्माजी ने उपन्यास में जिस समस्या को चित्रित किया है वह आज भी वैसी ही बनी हुई है ।

.....

2· सामाजिक उपन्यास

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में समाज की समस्याओं का वर्णन मिलता है । गांधीवादी विचारों से प्रभावित उनके उपन्यास उच्चकोटि के बन पड़े हैं । जैसे "प्रत्यागत" उपन्यास में समाज में अंध-विश्वास व धर्मों को लेकर लिखा गया है, जिसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार लोग धर्म का दुरपयोग करते हैं । "संगम," "प्रेम की भेंट," "लगन," "अचल मेरा कोई" आदि अनेक उपन्यासों में समाज की समस्याओं को और सामाजिक जीवन को सामने रखा गया है । वर्माजी इन समस्याओं का हल खोजने में सफल भी रहे । वर्मा जी के अनुसार व्यक्ति ही समाज को अच्छा-बुरा बनाता है । अगर व्यक्ति चाहे तो अपने स्वभाव, आचरण, कर्म द्वारा समाज को स्वर्ग बना सकता है । यहाँ वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों का विश्लेषण करके देखेंगे की वर्माजी ने समाज में फैली समस्याओं को कहाँ तक उठाया और उसका समाधान किस तरह से निकालने की कोशिश की है ।

लगन : यह वर्माजी का प्रथम सामाजिक उपन्यास है । इसकी रचना सन् 1927 में हुई । यह दहेज की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास है । इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :

बजटा के शिबूमाते और बरौल के बादल चौधरी के पास चार-चार सौ गायें-भैंसें होने से वे गाँव में धनी कहलाते हैं । शिबूमाते का पुत्र देवसिंह और बादल चौधरी की एकलौती पुत्री रामा की शादी निश्चित हो जाती है । चौधरी ने शिबूमाते को दहेज में सौ भैंसे देने का वचन दिया, लेकिन उसने दहेज में भैंसे नहीं दी । इसका परिणाम यह हुआ कि शिबूमाते, बादल चौधरी को सैकड़ों गालियां देता हुआ बहू को विदा

कराए बिना ही अपने पुत्र को बजटा ले जाता है । अपने पुत्र का पुनर्लग्न करने के निश्चिय की सूचना बादल चौधरी को भेज देता है ।

रामा और देवसिंह नहीं चाहते कि हमारा पुनः किसी दूसरों के साथ विवाह हो । लेकिन दोनों ही अपने पिता के डर से मुँह नहीं खोल पाते हैं । देवसिंह सुनता है कि रामा का विवाह और कहीं होने वाला है । उसके मन में उथल-पुथल होने लगती है । अतः वह रामा से मिलने नदी पार करके जाता है तो उसको रास्ते में पन्नालाल मिलता है । पन्नालाल अत्यन्त चालाक कामुक एवं आवारा युवक होता है । रामा व सुभद्रा को देखकर पन्नालाल छेड़खानी करने लगता है । उस समय देवसिंह को ज्ञात होता है कि पन्नालाल के साथ रामा का रिश्ता होने वाला है ।

देवसिंह रामा से मिलने नित्य ही बेतवा नदी पार करके जाता है । रामा भी उसका इन्तजार करती है और उसके आने पर खिड़की से धोती लटका देती है जिससे कि देवसिंह अटारी के ऊपर चढ़ सके । सुबह होने के पहले ही वह चला जाता है । एक दिन रामा का भाई बैताली पन्नालाल को खाने के लिए बुलाता है, फिर रात को वहीं सुला देता है । रात में पन्नालाल की कुटिलता एवं कामुकता जागती है । वह उठ कर रामा की कोठरी के अन्दर जाता है परन्तु वहाँ रामा नहीं मिलती है । पन्नालाल कोठरी से बाहर निकलने ही वाला होता है तभी देवसिंह की आवाज़ आती है । पन्नालाल देवसिंह को ऊपर चढ़ा देखकर शोर मचाता है । देवसिंह और रामा के गुप्त मिलन का रहस्य खुल जाता है । रामा डर के मारे नदी पार कर अपने ससुराल चली जाती है । अपने ससुर को सारी घटना बताती है । शिबूमाते रामा को अपने घर रोक कर बरौल जाता है । अपने अपराध के लिए

बादल चौधरी से क्षमा मांगता है, इधर बादल चौधरी भी क्षमा मांगता है। बादल चौधरी सौ भैंसें शिबूमाते के घर पहुँचवा देते हैं।

"लगन" सामाजिक उपन्यास है। इसमें समाज में फैली दहेज रूपी कुरीति को दिखाया गया है। इसमें दहेज न देने पर वर-वधू को मिलने नहीं देते हैं। बड़े लोगों के सहारे यह मिलन होता न देख यह कार्य स्वयं वर-वधू करने के लिए बाध्य होते है। लेखक ने देवसिंह के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि आज का नवयुवक भी किसी रूढ़ियों के आगे सिर न झुकाये। इस उपन्यास में वर्मा जी ने दहेज का हल भी खोजने का प्रयास किया है। उनके कहने का आशय यही है कि अगर नवयुवक-युवतियां चाहें तो क्या कुछ न कर सकते हैं, परन्तु उनमें साहस होना अति आवश्यक है। रामा दूसरी शादी की इच्छुक नहीं थी इसीलिए अपने पति देवसिंह को अपने कोठरी में रात को चढ़ाती है। रामा होशियार व साहसी स्त्री होती है। इसका एक उदाहरण यह भी है कि बेतवा नदी को पार कर रात के अंधेरे से न डर अपने ससुराल जाती है इससे यही साबित होता है कि रामा ने समाज की दहेज प्रथा से जकड़े व्यक्तियों को खुली चुनौती दी है। इस उपन्यास में लेखक की कमजोरी उस समय सामने आती है जब दहेज न मिलने पर देवसिंह के पिता वधू को विदा न करवा के ऐसे ही बारातियों को व देवसिंह को उठाकर गांव चलने को कहता है। क्या उस समय देवसिंह बोल नहीं सकता था?

लगन उपन्यास की कथा छोटी है। इसमें दो परिवारों को आधार बनाकर लेखक ने दहेज की समस्या को सामने रखा है पर दहेज जैसी भयानक सामाजिक कुरीति का पूरे समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस उपन्यास से यह सामने नहीं आता है।

संगम : उपन्यास का आरम्भ भिखारीलाल के पुत्र सम्पतलाल व डाकू लालमन की बहिन की बेटी जानकी के विवाह निश्चित होने के साथ होता है । जानकी बरुआ सागर के धनी दयावान व नि:सन्तान नाई धनीराम के पास रहती है, उसी घर में विवाह हो रहा था उस विवाह में लालमन भी आया था । बारात में हंसी मजाक को लेकर वर पक्ष और कन्या पक्ष वालों में मार-पीट हो गई । नन्दराम द्वारा लड़ाई आरम्भ होने से लालमन डाकू उसे दण्ड देता है । नन्दराम इससे बहुत क्रोधित होता है और वह झासी जाकर धनीराम के ऊपर दावा करके वारंट निकलवाता है ।

सुखराम को जातिच्युत करते हैं क्योंकि उसने अहीरिन को घर में रखैल रख दिया था । उसी से रामचरण पुत्र उत्पन्न हुआ । सुखराम के सामने लोग कुछ नहीं बोलते क्योंकि वह धनी व्यक्ति होता है । नन्दराम ने सुखराम से कर्ज लेकर मुकदमें को आगे बढ़ाया, उसका साथ भिखारीलाल भी देता है । इसलिए जानकी को दो-चार दिन का सुख मिलता है और बाद में उसको पति, सास, ससुर सभी लोग सताने लगते हैं ।

कोई प्रमाण नहीं मिलने से धनीराम का मुकदमा खारिज हो जाता है । इसी कारण नन्दराम व भिखारीलाल दोनों धनीराम के शत्रु हो जाते हैं । लालमन के कहने से धनीराम नन्दराम पर मुकदमा करता है और सुखराम भी मुकदमा कर देता है । इससे नन्दराम की स्थिति बिगड़ जाती है । एक दिन झांसी से ठिमरोली जाते समय सुखराम को नन्दराम गोली मार देता है । उस समय लालमन वहाँ आ जाता है और सुखराम की सेवा करके उसको ठीक करता है । इधर झांसी में तेजी से प्लेग फैलता है लोग घरों को छोड़-छोड़कर भागते हैं । रामचरण लोगों

की सेवा करता है परन्तु भिखारीलाल का पुत्र सम्पतलाल जानकी को बरूआ सागर पहुँचा कर स्वयं सूने मकानों के ताले तोड़कर चोरियां करता है । अधिक धन प्राप्ति के लिए सम्पतलाल स्त्रियों के व्यापारी के साथ स्वयं को स्त्री रूप धरकर बेचने का घटिया कार्य करता है । उसका भेद रेल में जाते समय खुलता है । संयोग से उसी डिब्बे में जानकी व धनीराम मथुरा यात्रा करने के लिए जा रहे होते हैं । सम्पतलाल की उस समय जानकी व धनीराम बहुत मदद करते हैं, जिससे सम्पतलाल में परिवर्तन आ जाता है ।

सुखलाल के गोली लगने की खबर से भिखारीलाल उसकी सम्पत्ति का दावेदार होने का मुकदमा करता है । सम्पतलाल के विरोध के बाद भी उसके पिता हठ नहीं छोड़ते । रामचरण लोगों की सेवा करता है परन्तु वह पुलिस के कार्यों की आलोचना करता है । पुलिस उसको पिता की मौत के संदेह में पकड़ लेती है और उसको कैद की सज़ा हो जाती है । रामचरण अपनी बहन (सुखलाल की विधवा पुत्री) राजा बेटी को पिता की सम्पत्ति दिलाने की कोशिश करता है । गंगा से उसको प्रेम होता है । लालमन सुखलाल को घर छोड़ने आता है तभी रामचरण को लालमन मिल जाता है । दोनों में मार-पीट होती है । गंगा रामचरण को बचाती है । लालमन को हॉस्पिटल ले जाते हैं वहाँ वह बयान देकर मर जाता है ।

नन्दराम पुलिस के सामने आत्मसमर्पण करता है । सुखलाल समाज के भय का परित्याग कर अपनी सम्पत्ति के दो भाग करके एक भाग अपनी पुत्री और दूसरा भाग पुत्र रामचरण को देता है और गंगा का विवाह रामचरण के साथ कराता है । नन्दराम का मकान नीलाम नहीं करवाता है और भिखारीलाल को भी माफ करता है । अन्त में सुखराम तीर्थयात्रा पर निकल जाता है । सम्पतलाल व जानकी सुखी जीवन बिताने व अच्छे कार्यों को करने का प्रण लेते हैं ।

इस उपन्यास में प्रधान घटना बरूआ सागर में हुई लड़ाई की है जिससे एक दूसरे के मन में घृणा उत्पन्न होती है । सम्पतलाल का जीवन पहले कुव्यसनों से भरा होता है लेकिन अन्त में हृदय परिवर्तन दिखाकर लेखक ने आदर्श प्रस्तुत किया है । परन्तु जानकी का वर्णन ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं लगा, लेकिन हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि लालमन ने अपनी भांजी को नाई के घर क्यों रखा । क्या वह नहीं जानता था कि बाद में विवाह होगा जब कठिनाई होगी । इसकी वजह लेखक ने नहीं बताई है । लेखक ने उस समय की जाति व्यवस्था की कठोरता को दर्शाया है । सुखलाल अपनी रखैल के पुत्र रामचरण को घर से निकाल देता है क्योंकि उसको समाज का डर बना रहता है । इस सन्दर्भ में सियाराम शरण प्रसाद लिखते हैं कि - "उस समय जातीयता की संकीर्णता में आबद्ध होकर मानवता तक का विस्मरण कर बैठते हैं । यह रामचरण पर ब्राह्मण वर्ग के आक्षेप सामाजिक विश्रृंखलता द्वारा देख सकते हैं ।"[1] इस उपन्यास में समाज के जातिगत भेद-भाव का यथार्थरूप दिखाई देता है । रामचरण को स्वाभिमानी दिखाया है । राजाबेटी व गंगा का चित्रण कर लेखक ने विधवाओं के जीवन की समस्याओं व समाज में उनकी स्थिति का वर्णन किया है । लालमन का वर्णन कर लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया की डाकू जन्म-जात नहीं बनता बल्कि उसमें समाज, पुलिस आदि का हाथ अधिक होता है । लालमन के दिल में भी गरीबों के प्रति दया थी ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि यह उपन्यास यथार्थवादी होने के साथ-साथ आदर्शोन्मुखी भी है । क्योंकि वर्माजी ने अपने पात्रों को अन्त

---

1. डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-29.

में आदर्श का जामा पहना दिया । लेकिन वर्माजी ने घटनाओं में अपना मन ज्यादा रमाया है । गांधीवादी विचारों से जुड़े होने से जातीयता की कठोरता की निन्दा की । समाज के उन ठेकेदारों पर चोट की है जोकि बेटी के रहते कोई और पिता की सम्पत्ति का हकदार होने का दावा करे और समाज के लोग कुछ न बोलें ।

<u>कुण्डली चक्र</u> : ललितसेन और उसकी छोटी बहन रतन नया गाँव छावनी में रहते थे । उनके माता-पिता न होने से ललितसेन बहन को अत्यधिक चाहता है । अजितकुमार नामक युवक को ललितसेन बहन रतन का अध्यापक नियुक्त करता है । अजित को रतन के प्रति आकर्षित हुआ देख ललितसेन घर से अजित को बाहर निकाल देता है । अपमान का घूँट पीकर भी अजित उसी गांव मे रहता है और समाज सेवा करने लगता है । एक बार धूर्त्त विधुर भुजबल मऊरानीपुर के शिवलाल जमींदार के साथ ललितसेन से ऋण मांगने आता है । परन्तु बाद में ललितसेन अपनी बहन का विवाह भुजबल से कर देता है । भुजबल अजितसिंह को अपने पहले वाले ससुराल घुमाने ले जाता है ।

भुजबल ललितसेन का टीपना अपनी साली पूना के लिए मांगता है परन्तु ललितसेन शादी करने से इनकार करता है । भुजबल रूपये का लोभी होने से ललितसेन को अपने जाल में फंसा लेता है । उधर शिवलाल को मूर्ख बनाकर कुछ हिस्सा जमींदारी का पूना के नाम करवाता है । पूना को प्राप्त करने के लिए भुजबल तरह-तरह के षड्यंत्र करता है । पूना उससे विवाह करने से मरना पसन्द करती है । भुजबल लगान न देने पर बुद्धा और पैलु की पिटाई करता है । बुद्धा को घायल अवस्था में अजीत सिगरावन ले जाता है । उसकी सेवा करके ठीक करता है । पूना की माँ उसी गांव में मरते समय "मास्टर पूना" बोलती है यह सभी लोग सुनते हैं ।

शिवलाल अजित से कर्ज के रूप में रूपये मांगता है । लेकिन उस समय उसके पास रूपये नहीं होते हैं । एक दिन अजित को खंडहर के पीछे स्वर्ण से भरा घड़ा मिलता है तो वह शिवलाल को देना चाहता है परन्तु शिवलाल संकोचवश नहीं लेता । तब अजित उस घड़े को पुलिस स्टेशन में जमा करवा देता है । इधर भुजबल चालाकी से ललितसेन से दस हजार रूपये ले लेता है । अपनी साली पूना का विवाह ललितसेन से करने का लालच देता है परन्तु बाद में वह कह देता है कि पूना आपकी बहन लगती है । भुजबल छल से शादी करने जाता है, परन्तु पूना पत्र द्वारा अजित को सहायता के लिए बुलाती है । बाद में ललितसेन भी जाता है । शिवलाल को गिरफ्तार करवाता है । पूना आत्महत्या करने जाती है अजित उसको बचा लेता है । उन दोनों का विवाह ललितसेन करवाता है और अपने जीजा भुजबल को घर लाता है । अजित को आधा हिस्सा स्वर्ण मुद्रा अदालत से मिलती है ।

कुण्डली चक्र सामाजिक उपन्यास है इसमें हिन्दू धर्म में फैले पुराने विश्वासों का वर्णन किया है जिसमें जन्मकुण्डली का मिलान आम बात है । कुण्डली मिलान के अंधविश्वासों से लोग अपने बच्चों की जिन्दगी खराब कर देते हैं । भुजबल से रतन की कुण्डली मिलने पर भी दोनों सुखी नहीं रह सके । ललितसेन इसी चक्कर में अविवाहित रहता है । अपनी बहन को दु:खी देखकर ललितसेन को समाज में फैले अंधविश्वासों से नफरत होने लगती है । वर्माजी के अनुसार - "रतन के असफल वैवाहिक जीवन से ललितसेन का पश्चाताप इस उपन्यास की मुख्य कथा है ।"[1] अत: यही सत्य है कि सन्तान को अगर सुख नहीं

1· वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ·-155.

मिलता तब भी उसको भाग्य का दोष बताकर माता-पिता शान्त रह जाते हैं । लेकिन ललितसेन की बुद्धि विवेकपूर्ण होने से अन्त में वह इस अन्धविश्वास को समझ जाता है ।

उपन्यास में चार प्रासंगिक कथाओं का समावेश हुआ है । अजित-पूना, शिवलाल जमींदार पेलू और बोद्धा जो मुख्यकथा को विकास की ओर अग्रसर करने में सहायक होती है । पूना की माँ को यहाँ रूढ़ियों से ग्रसित दिखाया है । विधुर भुजबल उम्र में बड़ा हाने पर भी वह उसके साथ पूना की शादी करने की इच्छा रखती है । ललितसेन के साथ विवाह इसलिए नहीं करती है कि ललितसेन ने अपनी बहन का विवाह भुजबल के साथ कर दिया जिससे रतन पूना की बहन हो गई और ललितसेन की भी । ऐसे-ऐसे विचार रखने वालों की इस समाज में कमी नहीं है । शिवलाल जैसा बूढ़ा जिसकी पत्नी मौजूद है फिर भी पूना से विवाह करने की इच्छा रखता है ।

अजित को आदर्शरूप में लेखक ने प्रस्तुत किया है । लेकिन अजित को किसी बात का विरोध करते हुये नहीं दिखाया । परन्तु पूना का विद्रोही भाव उस समय सामने आता है जब भुजबल से विवाह न कर वह घर से भाग जाती है । रतन को निर्बल बताया है क्योंकि अपने पति के विरुद्ध एक शब्द नहीं बोल सकती है । पति दूसरा विवाह करे और पत्नीं चुपचाप रहे इस बात से हमें आश्चर्य हुआ क्योंकि वर्माजी ने नारी को इतनी निरीह अवस्था में कभी नहीं बताया । बुद्धा और पेलू को कहीं-कहीं जमींदारी प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करते हुये दिखाया गया है । परन्तु ललितसेन पर पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव होते हुऐ भी वह कुण्डली मिलान में विश्वास करता है । यह बात हमें सोचने पर बाध्य करती है । इस प्रकार कह सकते हैं कि इस उपन्यास को आदर्श रूप में

दिखाने का प्रयत्न किया है । इसमें असत्य पर सत्य की विजय करवाई है । वर्माजी इस उपन्यास के परिचय में लिखते हैं - "इस उपन्यास में बुद्धा और पेलू, अजित-पूना के सम्बन्ध की घटनायें सच्ची हैं ।"[1] और इसमें कुछ पात्र वर्माजी ने अपनी कल्पना से निर्मित किये हैं ।

प्रत्यागत : वर्माजी ने यह उपन्यास धर्म के नाम पर लोगों को डराने व रूढ़ियों को न छोड़ने वाले व्यक्तियों पर लिखा है । मंगल ब्राह्मण को मुसलमानों द्वारा जबरन पानी पिला कर उसका हिन्दू-धर्म नष्ट कर देना और उसको हिन्दू-धर्म में पुन: लाने में कैसे-कैसे मतभेद उभर कर सामने आते हैं यही इस उपन्यास की मुख्य विषय वस्तु है । संक्षेप में इसकी कथा इस प्रकार है :

बांदा में ज्योतिष के जानकार टीकाराम अपने पुत्र मंगल पुत्र वधू सोमवती तथा अपनी पत्नी के साथ रहते हैं । वैष्णव धर्मानुरागी होने से वे रामायण सुनने सभापति पं· नवलबिहारी की सभा में जाते हैं । मंगल भी वहीं बैठा होता है । नवल बिहारी के गाने को - "भैंसे की तरह रेंकता" बतला कर मंगल उनका कोपभाजन बन जाता है । मंगल का पिता भी मंगल को कपूत, निकम्मा कहता है । उस समय मंगल की पत्नी भी उसको धनोपार्जन करने की राय देती है । इस पर मंगल घर से निकल जाता है । उसकी पत्नी देख लेती है वह अपने नौकर को पत्र देकर मंगल को स्टेशन से लाने भेजती है परन्तु मंगल घर नहीं लौटता ।

मंगल पहले बम्बई जाता है फिर पूना और मालाबार । मंगल की भेंट उसी रेलगाड़ी में रहमतुल्ला से होती है । दोनों मित्र बन जाते

1· वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डीचक्र, परिचय.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ·-3.

हैं, रहमतुल्ला मंगल को अपने साथ मस्जिद में ले जाता है । वहाँ पर उसको बलपूर्वक मुसलमान बना दिया जाता है । धर्म परिवर्तन से वह मर जाना चाहता है परन्तु रहमतुल्ला के आग्रह से वह उसकी पत्नी व बच्चों को सुरक्षित स्थान नेचलगढ़ी पहुँचाने जाता है । खिलाफत आन्दोलन {भोपाल-उपद्रव} हो जाने से हिन्दुओं को चुन-चुन कर मारते हैं । मंगल को हिन्दू समझ कर विद्रोही उसकी हत्या करना चाहते हैं लेकिन उसी वक्त रहमतुल्ला की पत्नी मंगल को बचा लेती है । पुलिस मंगल को पकड़ लेती है । जब वह सोमवती का पत्र पढ़ रहा होता है उस समय पत्र के आधार पर मंगल को बांदा भेज दिया जाता है । वहाँ उसके पिता के सुपुर्द कर देते हैं ।

मंगल अपने पिता को मुसलमान होने की बात कहता है । पिता उसको घर के अन्दर जाने से मना करते हैं फिर वे नवलबिहारी के पास जाते हैं । नवलबिहारी को कहते हैं कि मंगल को ब्राह्मण धर्म में कैसे लिया जायेगा, उसका क्या प्रायश्चित करना होगा । मंगल घर में चला जाता है जिससे पूरे घर को प्रायश्चित करना पड़ता है यह पंचायत का फैसला होता है । मंगल द्वारा पंचगव्य ग्रहण न करने पर नवलबिहारी इसका विरोध करते हैं । टीकाराम प्रायश्चित के बाद भोज करते हैं जिसमें नवलबिहारी व उनके समर्थक नहीं जाते हैं परन्तु बाबूराम के प्रयत्न से छात्र मंडली आकर भोजन कर जाती है । अनेक लड़के नवलबिहारी के पक्ष वालों के होते हैं । नवलबिहारी द्वारा भगवान की मूर्ति को उलटा कर देने से यह अफवाह फैल जाती है कि मंगल के मन्दिर में आने से भगवान नाराज हो गये । मंगल भगवान के दर्शन करने एवं चरणामृत पीने से अपना प्रायश्चित पूर्ण हुआ समझता है परन्तु नवलबिहारी नहीं मानता । पंचायत में इस बात की सच्चाई सामने आती है कि नवल बिहारी ने मूर्ति उलट कर ऐसा घटिया काम किया । मंगल की मां पुत्र को पाकर खुश होती है ।

यह सामाजिक उपन्यास है जो आदर्शोन्मुख है । इसमें लेखक ने धर्म परिवर्तन की समस्या को उठाया है । मंगल हृदय की दुर्बलता के कारण अपने मुसलमान हो जाने की बात सब पर प्रकट कर देता है ।"[1] सपरिवार प्रायश्चित करने के बाद भी समाज के कुछ लोग मंगल को जाति में अपनाने को स्वीकार नहीं होते हैं । इस पर वर्माजी अपना मत देते हुए कहते हैं कि हमारा समाज ऐसी मूढ़ता में उलझा हुआ है कि आगे बढ़ने में घोर कठिनाई हो रही है क्योंकि जाति परिवर्तन से अनेक समस्याएं सामने आती हैं जैसे धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़ग्रस्त धारणा आदि । इसी को मानकर हिन्दू आगे बढ़ना नहीं चाहता है । लेकिन वर्माजी ने अपने पात्रों से इस धर्मान्धता का विरोध करते हुए दिखाया है जैसे एक स्थान पर हेतसिंह कहते हैं - "प्राचीन की रक्षा के लिए और वर्तमान समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कुछ परिवर्तन जरूरी है ।"[2] अर्थात् इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि बुद्धिजीवी लोग रूढ़िवादी परम्परा को तोड़ना वर्तमान की मांग समझते हैं । मंगल की मां ममता के आगे धर्म को नहीं मानती उसके लिए पहले मंगल था वो ही अब भी है । उसकी मां रूढ़ियों से ग्रसित नहीं होती हैं । हरीराम नौकर होते हुये भी उसके गुण वर्तमान समाज की मांग के साथ चलते हैं ।

लेखक ने हरीराम व बाबूलाल को गांधीवादी विचारों से ओत-प्रोत दिखाने की चेष्टा की है । उस युग में आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी । लेखक इनसे प्रभावित हुए लगते हैं । रहमतुल्ला की पत्नी

1· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ·-115.
1· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ·-172.

सहृदयता दिखाकर हिन्दू-मुसलमानों के दिल में प्यार को व्यक्त किया है, परन्तु कुछ स्वार्थी तत्व दोनों जाति के लोगों को लड़ाना चाहते हैं। लेखक का उद्देश्य यह है कि हिन्दू धर्म में परिवर्तन होना चाहिए उसमें फैली रूढ़ियों, परम्पराओं व अन्धविश्वासों को मनुष्य के मन से निकाल देने का सन्देश दिया है।

<u>प्रेम की भेंट</u> : धीरज नाम का नवयुवक हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त करके खेती-बारी के धंधे मे लग जाता है। उसके गांव में भयानक अकाल पड़ने से सभी लोग गांव छोड़ कर चले जाते हैं। धीरज भी अपने दूर के रिश्तेदार के पास रहने चला जाता है। कम्मोद धीरज को आश्रय देता है। धीरज खाली बैठना नहीं चाहता है इसलिए कम्मोद के खेत में काम करने लगता है। कम्मोद की पुत्री सरस्वती और उसके साथ विधवा उजियारी दोनों साथ रहती थीं। धीरज सरस्वती से प्रेम करता है, उजियारी धीरज से प्रेम करती है। सरस्वती भी प्रेम करती है लेकिन उजियारी अपने प्रेम को धीरज के सामने जल्दी प्रकट कर देती है।

एक बार धीरज झांसी जाता है। सरस्वती के लिए सुन्दर साड़ी लाता है। उसके किनारे पर लिखा होता है "प्रेम की भेंट"। सरस्वती उस साड़ी को संभाल कर रखती है। इसी बीच कम्मोद की बहन की लड़की के ससुराल से नन्दन नाम का युवक आता है। कम्मोद उसे सरस्वती का वर मनोनीत करता है। नन्दन सरस्वती को प्यार करता है और पत्र द्वारा अपना प्रेम प्रकट करता है परन्तु सरस्वती उससे विरक्त ही रहती है तथा उसकी उपेक्षा करती है। उजियारी धीरज से प्रेम पाना असंभव समझ कर कम्मोद के मन में संदेह उत्पन्न करती है। इसका परिणाम यह होता है कि धीरज का सरस्वती से मिलना बन्द हो जाता है।

उजियारी सरस्वमी को मार्ग का कांटा समझ उसको सदा के लिए हटा देने के अभिप्राय से एक दिन खीर में विष मिला देती है । उस खीर को धीरज अनजाने में खा लेता है । सरस्वती के घर में अकेली होने से धीरज उसकी बीमारी पूछने उसके पास जाता है, चलते समय धीरज रो पड़ता है उस समय कम्मोद उसे देख लेता है और उसे निकाल बाहर करता है । विष का प्रभाव होने पर धीरज अचेतावस्था में बड़बड़ाता रहता है, उससे सरस्वती को साड़ी अपने पास रखने का आग्रह करता है । यह सुनकर कम्मोद को क्रोध आता है और वह सरस्वती के हाथ से साड़ी छीनकर जला देता है । परन्तु खिंचातानी में सरस्वती के हाथ में "प्रेम की भेंट" लिखा टुकड़ा रह जाता है । धीरज की मृत्यु हो जाती है और सरस्वती अचेत अवस्था में पूछती है "आ गये वह" ।

उजियारी, कम्मोद, नन्दन की प्रासंगिक कथाएं साथ-साथ चलती हैं । नन्दन सरस्वती को प्रेम करता है । उसकी सेवा करने में कोई कसर नहीं छोड़ता है परन्तु वह प्यार पाने में असफल रहता है । उजियारी प्रेम पाने के लिए विष तक खिलाने को तैयार होती है परन्तु वहाँ पर भी भाग्य साथ नहीं देता है ।

यह उपन्यास सामाजिक होने के साथ प्रेमपरक है । इसमें त्रिकोण प्रेम का वर्णन किया है । इस बात को मोहिनी सहाय ने भी स्वीकार किया है उनके अनुसार - "यह परिवार-केन्द्रित प्रेमपरक सामाजिक उपन्यास है ।"[1] इसमें सरस्वती का प्रेम शान्त मौन व संयमित रूप को लेकर हमारे सामने आता है । सरस्वती का प्रेम पवित्र प्रेम की कोटि में आता है । लेकिन उजियारी का प्रेम वासनाजन्य प्रतिदान चाहने वाला

---

1. डॉ॰ मोहिनी सहाय - वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य, पृ॰-251.

होता है । इसमें असंयमित प्रेम में गहनता कम प्रचण्डता अधिक दिखाई देती है । अनेक योजनाएं बनाती हैं अन्त में इतनी गिर जाती हैं कि जिसको पाना चाहती हैं वो ही उसकी बनाई खीर से मर जाता है । इस उपन्यास में पहले प्रेम विषयक धारणाएं तो रहस्यपूर्ण बनी रहती हैं लेकिन अन्त में इसका रहस्य खुलता है । इसमें मनोवैज्ञानिक रूप से वर्णन किया है । इसमें यह बात स्पष्ट होती है कि प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता वरन् तो परिणाम दुखदायी होता है ।

इसमें कुछ घटनाएं सत्य हैं जैसे - "युवक व युवती का प्रेम जिसमें लड़की मर जाती है लड़का पागल हो जाता है ।"[1] लेखक का उद्देश्य है कि समाज को अपने बच्चों की खुशी का ध्यान रखना चाहिए । और समाज के लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना ही वर्माजी का ध्येय है ।

<u>अचल मेरा कोई</u> : इस उपन्यास का आरम्भ सुधाकर और अचल जो राजनीतिक अभियुक्त है, उनकी रिहाई से होता है । निशा और कुन्ती उनके स्वागत के लिए फूलों की माला लिए आती हैं । जेल से बाहर आते ही हार दोनों के गले में डालती है । अचल और सुधाकर दोनो ही निशा व कुन्ती के प्रति आकर्षित हो जाते हैं । निशा के पिता वर ढूंढने के बहाने अपने घर मे नृत्य-संगीत व भोज का आयोजन करता है । निशा गाना गाती है और कुन्ती नृत्य करती है । निशा के लिए अचल व सुधाकर का कोई उत्साह न देख निशा के पिता उसकी शादी लखनऊ के लबकुमार से कर देते हैं ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - प्रेम की भेंट, (परिचय).

कुन्ती अचल से संगीत की शिक्षा लेने नित्य आने लगती है। सुधाकर की शादी कुन्ती से पक्की होने पर अचल व्याकुल होता है, उस समय अपना प्रेम कुन्ती पर प्रकट करता है। लेकिन अचल कुन्ती को सुधाकर से विवाह करने की सलाह देता है। कुन्ती सुधाकर से विवाह कर लेती है। कुछ दिनों तक तो प्रेम की तीव्रता रहती है परन्तु धीरे-धीरे कुन्ती को सुधाकर के प्रेम के प्रति विरक्ति सी होने लगती है। सुधाकर कुन्ती को हर प्रकार की स्वतन्त्रता देता है जैसे - क्लब-नाटक में जाना, बन्दूक चलाना आदि लेकिन सुधाकर की बुआ को यह अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी बुआ व कुन्ती में झगड़ा हो जाता था इसी को भुलाने के लिए कुन्ती बी·ए· की परीक्षा देना चाहती है। सुधाकर की अनुमति लेकर वह अचल से पढ़ने जाती है। अचल के घर अधिक समय रहने पर सुधाकर के मन में दरार पड़ने लगती है।

निशा पहली बार मायके आती है। कुन्ती उससे मिलकर खुश होती है कि उसका जीवन सुखी है। परन्तु साम्प्रदायिक दंगे होने से लवकुमार मारा जाता है। कुन्ती के प्रयास से निशा की पुनः शादी अचल से हो जाती है और दोनों का जीवन आनन्द से गुजरता है, परन्तु कुन्ती के भाग्य में शान्ति न थी। सुधाकर कुन्ती से ज्यादा बाहर रहने पर नाराज रहने लगता है। कुन्ती को अब झूठ बोलना पड़ता था। सुधाकर कुन्ती को बाहर जाने से रोकने के लिए भूख-हड़ताल करता है। कुन्ती मान जाती है लेकिन इससे कुन्ती को अपना अपमान लगता है इसीलिए वह बन्दूक से आत्महत्या कर लेती है। सुधाकर गोली की आवाज सुनकर कमरे में जाता है वहाँ कुन्ती की लाश देखता है और उसके पास एक कागज मिलता है उसमें लिखा होता है - "अचल मेरा कोई" इसके आगे एक बिगड़ी हुई लकीर होती है।"[1]

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई,

पंचम तथा गिरधारी, धोबन माते आदि की प्रासंगिक कथाएं इस उपन्यास में आती हैं। पंचम और गिरधारी को मार-पीट चोरी करने के जुर्म में जेल होती है। उसी जेल में राजनीतिक कैदी के रूप में अचल व सुधाकर से भेंट होती है। सभी साथ रिहा होते है उस समय अचल दोनों को मिलने का वादा करता है। अक्सर पंचम, गिरधारी, सुधाकर-अचल से मिलने शहर आते रहते हैं। दोनों के कहने से अचल व कुन्ती गांव वालों को पुलिस अत्याचारों से बचाने जाती है। पुलिस के अत्याचार पर कुन्ती क्रोधित होती है। और सभी स्त्रियों के बंधे हाथ को खोल देती है। पुलिसमैन यह देखकर हतप्रभ रह जाता है। बाद में गांव की जनता इन अत्याचारों का सामना करती है। गांव में गांधीवादी विचारों को आदर्श मानकर काम करने का सभी लोग संकल्प लेते हैं।

इस उपन्यास को प्रेम प्रधान सामाजिक उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं। गांधी युग की राजनीति को लेकर यह उपन्यास लिखा गया है। स्वतन्त्रता की लहर चल रही थी। नारी स्वतन्त्रता पर अधिक जोर दिया जा रहा था। अचल व सुधाकर नारी स्वतन्त्रता के समर्थक थे। लेकिन सुधाकर अपनी पत्नी कुन्ती को नियंत्रण में रखना चाहता है इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है -"मैं स्त्री स्वतंत्रता का पक्षधर व समर्थक होकर भी कुन्ती पर नियंत्रण करने का संकल्प करता हूँ।"[1] पुरूष केवल दिखाने के लिए ही स्वतन्त्रता के समर्थक बनते है। वे अपनी पत्नी का नहीं दूसरों की पत्नी की स्वतन्त्रता तक सीमित रखना चाहते हैं। निशा को शिक्षा दिलाने के बाद विवाह के विषय में उसके पिता उससे उसकी इच्छा नहीं पूछते। कुन्ती अपने परिवार से संघर्ष करने की बजाय एक कायर की मौत मरना उचित समझती है। क्या यही शिक्षा

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ.-260.

का फल होता है, इतनी निर्भीक होकर आत्महत्या करना उसके कमजोर पहलू को दर्शाता है । सुधाकर कुन्ती को शान्ति से समझाने में नाकाम होकर भूख हड़ताल करता है इसका परिणाम पत्नी की आत्महत्या के रूप में सामने आता है ।

इस उपन्यास मे पंचम और गिरधारी की कहानी व्यर्थ लगती है । मुख्य कथा से इसका गहरा सम्बन्ध नहीं है । लेखक ने इस उपन्यास को राजनीतिक रंग देने की चेष्टा की है जिससे यह उपन्यास न राजनीतिक बन पाया और न ही सामाजिक हुआ । इसमें लेखक विधवा विवाह करवाने से समाज के विधवाओं की समस्याओं को खत्म करना चाहते हैं । उपन्यास का अन्त दुखान्त होता है । इसमें लेखक का उद्देश्य यही है कि केवल नारी स्वतन्त्रता कहने से कुछ नहीं होता, उस पर अमल करना आवश्यक है । इसमे सुधाकर दिखावा करता है परन्तु अचल ने निशा से शादी करके समाज में विधवाओं के हृदय की भावना को समझा है । अचल का व्यक्तित्व इसमें निखर कर हमारे सामने आता है ।

<u>कभी न कभी</u> : लछमन व देवजू काम की खोज करते हुए झांसी पहुँचते हैं । वहाँ पर भवन-निर्माण का काम चल रहा होता है, वहीं पर दोनों को मजदूरी मिल जाती है । अलग-अलग गांव के होते हुए भी दोनों में अच्छी मित्रता हो गई । मजदूरी करते समय उनका परिचय हरलाल व उसकी बेटी लीला से होता है । लछमन देवजू की शादी लीला से करना चाहता है, लेकिन हरलाल देवजू को अपनी बेटी न देकर लछमन के साथ विवाह करना चाहता है । लछमन और देवजू का सम्बन्ध भाईयों जैसा हो जाता है । लछमन देवजू के लिए लड़की खोजने गांव जाता है । वहीं पर बीमार होने पर दु:खी होकर आत्महत्या करने निकलता है । परन्तु देवजू का तार आने व उसका अस्पताल में होने

की खबर से लछमन तुरन्त झांसी जाता है । उसकी सेवा करके उसे स्वस्थ करने में सफल होता है ।

देवजू ठीक होने पर मज़दूरी करने लग जाता है । वहाँ मेट नाम का ठेकेदार लीला को चाहता है वह किसी न किसी बहाने लीला को अपने पास बुलाता रहता है । लीला लछमन से विवाह करना चाहती हैं । धीरे-धीरे लछमन देवजू का सम्बन्ध कराने की बात भूलने लगता है । देवजू को इस बात से मानसिक क्लेश होता है । लछमन को एक दिन देर तक न आया देख देवजू उसके यहाँ जाता है परन्तु मार्ग में देखता है कि मेट लीला से छेड़खानी कर रहा है तो वह उसकी पिटाई करता है । उस समय लीला कुछ नहीं बोलती । उल्टा देवजू पर लछमन व लीला नाराज हो जाते हैं । दोनों मित्रों में मनमुटाव बढ़ता है यह देख देवजू समझदारी से काम लेता है । वह लछमन और लीला की शादी का प्रस्ताव हरलाल के सामने रखता है । हरलाल खुशी से प्रस्ताव को स्वीकार करता है और लछमन व लीला की शादी करवा देते हैं । अन्त में देवजू यही सोचकर अपने मन को शान्त करता है कि 'कभी न कभी' शान्ति मिलेगी ।

यह उपन्यास सामाजिक है इसमें प्रेम का त्रिकोण दिखाया है । इसमें मुख्य कथा देवजू व लछमन की है । हरलाल व उसकी बेटी लीला इस उपन्यास के विकास मे सहयोग देते हैं । वर्माजी ने मित्रों का प्रेम व एक दूसरे के दु:ख-दर्द को ईमानदारी से बांटने जैसे प्रश्नों को हल किया है । क्योंकि लछमन देवजू के लिए लड़की देखने बरूआ सागर से किराये की साइकिल लेकर दो-तीन गांवों का चक्कर लगाता है । अत: वह देवजू को किस हद तक चाहता है । देवजू लीला को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए मज़दूरों को पीटता है । शायद उसके मन में यही विचार रहते होंगे कि ऐसा करने से लीला मेरी हो जायेगी ।

देवजू के अन्दर दया, त्याग व प्रेम की भावना होती है इसीलिए वह लछमन की सेवा करता है। अन्त में अपनी मित्रता बनाये रखने के लिए लछमन के मार्ग से हट कर लीला से उसका विवाह करवा देने मे सफल होता है। यहीं पर देवजू के महान् होने का संकेत मिलता है। इसमें दो प्रेमियों के मिलन का सफल चित्रण किया गया है। एकांगी प्रेम में असफल देवजू को भी आदर्श रूप में दिखाया है। इसी से देवजू के मन में यह भावना दिखाई कि प्रेम से असफल होने से क्या हुआ - "मुझे कभी न कभी सुख शान्ति मिलेगी।"[1] वर्माजी ने इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखाने की चेष्टा की है कि मजदूरों के जीवन में भी प्रेम होता है। इस उपन्यास का शीर्षक सार्थक है। अन्त में आदर्श की स्थापना करके इस उपन्यास को आदर्शोन्मुखी उपन्यास की कोटि में लाने का प्रयास किया। इस उपन्यास में मजदूरों व ठेकेदारों के सम्बन्ध का अच्छा चित्रण किया है।

<u>सोना</u> : यह उपन्यास लोक-कथाओं पर आधारित है। दूधई गांव में सोना व रूपा दो बहिने अपने मामा के पास रहती थीं सोना रूपा से बड़ी होती है। उसी गांव में चम्पत मजूरी करता है। सोना, रूपा भी मजदूरी करती हैं। सोना और चम्पत में प्रेम होता है। उनकी बातें रूपा झाड़ी के पीछे छुप कर सुन लेती है यह देख कर सोना उसको चुड़ैल चंडी कहती है। इसी चुड़ैल शब्द से क्रोधित होकर रात में मामा को सारी बात बता देती है। मामा दोनों का विवाह जल्दी करने का निश्चय करता है।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - प्रेम की भेंट, पृ.-61.

रूपा का विवाह गरीब किसान से किया जाता है । रूपा अपने ससुराल डुंगरिया गांव में रहने लगती है । सोना की शादी देवगढ़ के लंगड़े, कुरूप और विधुर राजा धुरन्धर सिंह से होती है । रूपा सोना की शादी पर नहीं जाती लेकिन अपने पति अनुपसिंह को भोज देती है । वहाँ पर उसकी इज्जत न होने पर उसका मन दुःखी होता है । बूढ़े से विवाह होने पर सोना के मन में चम्पत के गीत सुनाई देते है । पति के प्रति रूचि नहीं रहती लेकिन उसे नये-नये आभूषण पहनने का अधिक चाव था । राजा की आय अधिक न होने से सोना लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिए चीलों को रोज मगोड़े खिलाती है । राजा उल्लुओं की पूजा करता है । एक दिन सोना चीलों को मगोड़े खिलाती है और वहीं अपना लालोंवाला हार रखकर स्नान करने चली जाती है । चील उस हार को डुंगरिया रूपा के घर के सामने कूड़े में डाल मरे सांप को लेकर उड़ जाती है ।

इधर रूपा भी लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिए नित्य पूजा करती है । दिपावली के दिन रूपा व अनुपसिंह अपने घर का आंगन खोदते हैं । उसमें हीरे जवाहरात के घड़े मिलते हैं । धनी होने पर अनुपसिंह को अहंकार हो जाता है । रूपा अपने पति को काम करने की सलाह देती है क्योंकि यह धन धीरे-धीरे खत्म होने लगता है । अनुपसिंह उसकी बात नहीं सुनता है । एक रात सोते हुऐ रूपा को दीपक सन्देह मिलता है । उस समय रूपा अपने परिवार की समृद्धि के लिए घर छोड़ कर मजदूरी करने निकल जाती है । सोना का पति मन्दिर बनवा रहा था अतः रूपा अपना श्रम मन्दिर में लगाना चाह रही थी इसलिए वहीं पर मजदूरी करने लगी । रूपा का छद्मवेश में मजदूरी करने का रहस्य चम्पत को पता चल जाता है । वह रूपा को फांसने का प्रयत्न करता है ।

एक दिन राजा मन्दिर का निरीक्षण करने आता है तो रूपा (नन्ही बाई) की तरफ देखकर उसकी वासना जाग्रत होती है । रूपा को बहला कर बगीचे में ले जाता है परन्तु चम्पत सोना के पास जाकर सारी बात बताता है । सोना अपनी बहिन को बचाती है । राजा रूपा से मांफी मांगता है और चम्पत को निकाल देता है । अनुपसिंह को सूचना मिलती है कि रूपा सोना के महल में है तो वह लेने जाता है । रूपा अनुष्ठानों के भ्रम से राजा को मुक्त करवाती है । सभी को श्रम करने की सलाह देती है । स्वयं भी डूंगरिया पहुँच कर परिश्रम करने का संकल्प करती है ।

यह एक सामाजिक उपन्यास होते हुए भी लोक-कथा पर आधारित है । उपन्यासकार सोना, रूपा के माध्यम से प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं कि धन की प्राप्ति के लिए शारीरिक श्रम आवश्यक है । फूलों की सेज और श्रम का संग कभी नहीं हो सकता और न कभी होगा । इस उपन्यास का "सोना" शीर्षक सार्थक नहीं है क्योंकि सोना के चरित्र से रूपा का चरित्र ज्यादा सशक्त एवं महत्वपूर्ण है । पूरे उपन्यास में रूपा का चरित्र उभर कर सामने आया है । रूपा अनुपसिंह को श्रम की महत्ता बताती है स्वयं भी मजदूरिन बनकर हमारे सामने आती है ।

उपन्यास में प्रासंगिक कथाएं साथ-साथ चलती है । चम्पत निराश प्रेमी के रूप में हमारे सामने आता है । पूरे उपन्यास में नारी चरित्र ही प्रभावशाली है । इस उपन्यास के पढ़ने पर ऐसा लगता है कि "दादी पूजा के समय कहानी कह रही हों ।"[1] चील वाली घटना, चम्पत को उसके पीछे डूंगरिया चले जाना यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ.-240.

होता है। अन्त में लेखक स्वयं कहते हैं कि - "मेहनत सफाई और कला की उपासना से ही जीवन का सच्चा बड़प्पन मिलता है।"[1] लेकिन सोना को आभूषण के मोह में इतना गिरा देना भी यथार्थपरक नहीं जान पड़ता है। सोना की मुख्य कथा होने पर भी रूपा की कथा मुख्य लगती है।

<u>अमर बेल</u> : यह उपन्यास वर्माजी ने देश में फैले अवैध धन्धों में लगे व्यक्तियों के बारे में लिखा है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है : -

देशराज और अंजना मिलकर अफीम का अवैध व्यापार करने लगते हैं। बाघराज के सहयोग से अफीम की पेटियां अंजना सुहाना लेकर आती है। कालीसिंह डाकू की सहायता से अफीम बाहर भेजते हैं। देशराज को यह कार्य अच्छा लगता है क्योंकि परिश्रम किये बिना धन प्राप्त हो जाता है। देशराज जमींदार होने से किसानों का शोषण करता है। वह रातों-रात लखपति बनने के सपने देखता है।

टहल नामक युवक देशराज के खिलाफ होता है। क्योंकि उसके विचार उग्र व पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ होते हैं। देशराज भी उसको अपना शत्रु समझता है अत: उसको समाप्त करवाने के लिए कालीसिंह डाकू की सहायता लेता है। कालीसिंह टहल को घायल कर भाग जाता है। घायल टहल की सेवा डॉ॰ सनेही व उनकी पत्नी राजकुमारी करते हैं। डॉ॰ सनेही के व्यवहार से टहल में परिवर्तन आता है। डॉ॰ सनेही का अनुयायी बनकर टहल गांव में प्रेम व लोगों को एक सूत्र में बांधने का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ॰-240.

काम करता है । ग्राम-रक्षक दल संगठन बनाता है और गांव मे नहर लाने बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए डॉ॰ सनेही व टहल गांव वालों से मदद लेते हैं ।

इधर देशराज को पंचायती चुनाव में अध्यक्ष बना दिया जाता है । अफीम का व्यापार लखनऊ, बनारस आदि शहरों में फैल जाता है । अंजना एक बार अफीम से भरी पेटियां ले जा रही थी कि उसकी पेटियां पकड़ी जाती है । परन्तु वह बच निकलती है । बाघराज को रूपयों का लोभ होने से एक षड्यन्त्र रचता है वह अनेक कलाकारों को बुलाता है उसमें अंजना व देशराज भी होते हैं । संगीत होने के बाद बाघराज कलाकारों को इनाम देकर विदा करता है । देशराज व अंजना को दो पेटी अफीम और पच्चीस हजार रूपया देता है । कालीसिंह बाघराज का संकेत पाते ही बीच रास्ते में कलाकारों पर हमला कर उन्हें लूट लेता है । देशराज पुलिस को बुलाकर बाघराज को गिरफ्तार करवाता है । इस घटना के बाद देशराज रूपयों का मोह त्याग कर अपनी खेती की ओर ध्यान देने लगता है । कालीसिंह देशराज पर हमला करता है । परन्तु डा॰ सनेही व गांव वालों की सहायता से देशराज बच जाता है ।

उपन्यास में अनेक प्रासंगिक कथाएं साथ-साथ चलती हैं । डॉ॰ सनेही व टहलराम के सहयोग से गांव में चेतना की लहर आती है । धरती पर महाजन दो पैसे प्रति सैकड़ा ब्याज की दर पर ऋण देकर अपने को समाज सुधारक बताता है । विक्रम सिंह जमींदार की चापलूसी करता है और बनमाली के साथ-साथ वह भी दूसरों की परती जमीन अपने नाम लिखा लेता है और देशराज के षड्यंत्र में सहयोगी बनने का कार्य करता है । विद्यार्थी जनकलाल को अपने घर भोजन के लिए बुलाकर पुलिस के हवाले कर पुरस्कार पाने की योजना बनाता है । अन्त में सहकारी समिति के विरूद्ध दमऊ को उकसाता है ।

जनकलाल उदण्ड प्रवृत्ति का होता है । जनकार्यों में भाग लेता है लेकिन ठेकेदारों से उलझ जाने से पुलिस उसको हिरासत में ले लेती है पर वह रास्ते से भाग जाता है । भूख से व्याकुल होकर स्वयं को पुलिस के हवाले करने के लिए दमऊ को साथ ले जाता है । जिससे उसको इनाम मिल सके । जेल से छूटने के बाद उसमें परिवर्तन आता है वह डा॰ सनेही व टहल के निर्देशन पर गाँव में काम करता है । टहल एक विधवा स्त्री (हरको) से शादी करता है वह मंटू की बहन होती है खेतों में काम करती है और पाठशाला में पढ़ने जाती है ।

वर्माजी का यह उपन्यास सामाजिक होते हुए भी सहकारी कृषि पर आधारित है । इस उपन्यास में वर्माजी ने कृषि से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं का सरलता से हल निकालने का प्रयास किया है । यह प्रयोग सर्वथा भिन्न व अनोखा है । इस उपन्यास में उन लोगों की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश है जो काम न करके पैसा प्राप्त करना चाहते हैं । अफीम का व्यापार करके लखपति बनने का सपना देखते हैं । इससे साधारण जनता को नुकसान हो रहा है इस बात से उनको कोई सरोकार नहीं रहता है ।

देशराज में परिवर्तन दिखाकर लेखक एक नया प्रयोग करता है । इस सन्दर्भ में विवेकीराय लिखते हैं कि - "देशराज का हृदय परिवर्तन हुआ । उसकी तानाशाहीवृत्ति ने प्रजातान्त्रिक मोड़ लिया और सरकार के सामने आत्म समर्पण कर दिया ।"[1] वर्माजी ने श्रम पर महत्व दिया एक बार टहल कहता है - "मेरे लिये जीवन में जो कुछ भी बहुत सुन्दर है, वह श्रम है । अपनी समिति में श्रम को हम लोग अधिक महत्व

---

1. विवेकीराय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ॰-175.

देंगे ।"[1] डॉ॰ सनेही व टहल द्वारा नि:स्वार्थ सेवा करता के आदर्श प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में वर्माजी सहकारिता के आन्दोलन के प्रचार प्रसार करने की बहुत कोशिश करते हैं । वह जगह-जगह पर ध्यान आकर्षित करते हैं कि देश को विकास की ओर अग्रसर करने के लिए कृषि उद्योग समितियां आदि पर ध्यान देना अनिवार्य है जिससे देश व राष्ट्र की उन्नति सम्भव है ।

विधवा विवाह के समर्थक बनकर वर्माजी ने विधवाओं की समस्याओं को हल करने की कोशिश की है । गांधीवादी विचारों की प्रधानता दिखाई देती है । अन्त में लेखक अपने पात्रों को आदर्श बनाने का प्रयत्न करते हैं । इसमें अनेक घटनाएं सत्य हैं जैसे सुहाना बागुदेव व नाहरगढ़ के गांव में यह घटनाएं घटी थी । कुछ कल्पना का सहारा लिया गया है ।

<u>आहत</u> : अंगद सिंह अमरपुर गांव का जमींदार होता है । उसे शिकार खेलने, सैर-सपाटे करने की आदत होती है । परन्तु जमींदारी-उन्मूलन हो जाने पर उसकी आर्थिक स्थिति दिनोदिन बिगड़ती जाती है । दीपसिंह उनका इकलौता पुत्र होने से शरारती व नटखट होता है । परीक्षा में फेल होने से पिता को क्रोध आता है, उसकी पिटाई करने लगता है परन्तु दीप की मां उसकी रक्षा करती है । एक दिन दीप घर से भाग जाता है और कानपुर पहुँच कर एक फेरीवाले के साथ रहने लगता है ।

दीपसिंह का घर से भाग जाना उसके माता-पिता के लिए दु:ख का कारण ही था । जगह-जगह खोज करने पर निराशा ही मिलती

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमर बेल, पृ॰-78.

है । उसके माता-पिता भगवान की भक्ति में लग जाते हैं । मंजरी और अंगद में झगड़े होते रहते हैं, परन्तु एक दिन अंगद घर से निकल कर साधु बन जाता है । मंजरी का मकान महाजन ले लेता है उसके बाद मंजरी अपनी सहेली मैना के घर रह कर उसके घर में कुछ काम करती रहती है । एक बार गंगास्नान करते समय मैना बाढ़ में फंस जाती है लेकिन मंजरी मैना को बचा लेती है परन्तु स्वयं पानी में बह जाती है ।

इधर दीपसिंह सदाफल के कहने से रात्रि पाठशाला जाने लगता है । दीप लगन से पढ़ता रहता है और सदाफल के कार्य में हाथ बंटाता है । इस तरह परिश्रम करते हुए बी॰ए॰ प्रथम वर्ष में पहुँचता है । कानपुर डिग्री कॉलेज में अपना नाम लिखाता है । एक दिन दुकान पर आई तीन लड़कियों में से छाया नाम की लड़की को देख वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । छाया के घर दीप फल व पत्रिकाएं ले जाने का काम करता है ।अखबार द्वारा मालूम होता है कि उसकी मां अपनी सहेली को बचाती हुई स्वयं बाढ़ में बह गई । यह पढ़ कर दीप अत्यधिक दु:खी होता है । वह अमरपुर जाकर अपनी मां का क्रियाकर्म करके कानपुर लौट आता है ।

छाया की शादी फैजाबाद में किसी दहेज-विरोधी के पुत्र के साथ निश्चत होती है परन्तु फेरों के पहले ही वर के पिता दहेज की मांग करते हैं । रूपये पूरे न होने की वजह से वर के पिता अपने पुत्र को विवाह न करने की सलाह देते हैं । उस बारात मे साधुओं की जमात आई हुई थी । छाया को क्रोध आ जाता है वह वर तथा उसके पिता की पिटाई करने लगती है । उसकी सहेलियों ने भी उसका साथ दिया । छाया चुनौती देती है - "है यहाँ कोई ऐसा वीर साहसी जो मेरे साथ ब्याह करने के लिए तैयार हो ?" दीप उस समय वहाँ पर उपस्थित

होता है अत: वह आगे बढ़कर छाया के साथ विवाह करता है । साधुओं में अंगद होता है वह अपने पुत्र को पहचान लेता है । सभी लोग अमरपुर जाते हैं वहाँ पर मंजरी जिंदा मिलती है । कुछ दिन बाद सभी कानपुर लौट आते हैं परन्तु अंगद गांव में ही रह कर समाज सेवा करने लगता है ।

यह उपन्यास वर्माजी ने बाल-मनोविज्ञान को लेकर लिखा है । अंगदसिंह अपने पुत्र दीपसिंह को सुधारने में असफल रहता है, लेकिन सदाफल को सफलता मिलती है । अर्थात बच्चे को डराने तथा पीटने से वह नहीं सुधरता है । बल्कि प्यार से बच्चों का मन जीत सकते हैं । अंगद आर्थिक परेशानी की खीझ अपने छोटे पुत्र व पत्नी पर निकालता है । परिणाम दीप घर से भाग जाता है । दीप को स्कूल में सही संरक्षण न मिलना व घर में उसकी मांगों को पूरा न किया जाने पर उसके मन में कुण्ठाएं जन्म लेती हैं । लेखक ने बच्चों की मानसिकता को बहुत सफलता से हमारे सामने रखा । मंजरी सामान्य स्त्रियों की तरह दिखाई देती है परन्तु छाया को सशक्त नारी के रूप में प्रस्तुत किया है । छाया व उसकी सहेलियों से वर व उसके पिता की पिटाई करवा के लेखक यह बताना चाहता है कि नारी केवल माटी की मूर्ति नहीं है वह शक्ति है । छाया की चुनौती दीपसिंह स्वीकार करता है और उससे विवाह करके सभी नवयुवकों को आगे आने की प्रेरणा देता है क्योंकि वर्तमान युग में ऐसी घटनाएं रोज ही होती हैं उस समय वर्माजी समाज सुधारकों में से एक थे । उन्होंने अनेक कहानी, नाटक लिख कर समाज को प्रेरणा देने का कार्य किया ।

सदाफल को इस उपन्यास में आदर्श का प्रतीक बताया है । अंगद को कमजोर बताया है क्योंकि उसमें परिस्थितियों के साथ लड़ने की शक्ति नहीं थी इसी कारण अपना घर छोड़कर साधु बन जाता है । सदाफल के प्यार से दीप को अच्छा इंसान बनाना लेखक अपने इस प्रयास

में सफल रहता है । इसका नामकरण सभी प्रकार से उचित है क्योंकि दीप एक घटना से "आहत" होकर घर से भाग जाता है। अन्त में आदर्श का जामा पहन कर उपन्यास समाप्त होता है ।

<u>उदय किरण</u> : कुंवरपुर के जागीरदार के अत्याचारों से तंग आकर दस परिवार पास की पहाड़ी के जंगल में बस गये । जिसका नाम डाबर गांव रख दिया । ये भिन्न जातियों के होते हुये भी इनका काम समान होता है जैसे पशुपालन करना और खेती करना आदि । तीस वर्ष में दस परिवार से बढ़कर पच्चीस परिवार हो गये । इन परिवारों के पास सरकार द्वारा बीस-बीस एकड़ भूमि खेती करने के लिए दी हुई थी । भूमि को लेकर डाबर व कुंवरपुर वालों में फूट पड़ जाती है । जागीरदार उन्हें बेदखल करने की चेष्टा करता है । परन्तु मुकदमें में जागीरदार हार जाता है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जागीरदारी प्रथा समाप्त हो जाती है । कुंवरपुरा में उदय नाम का लड़का कृषि कालेज में शिक्षा प्राप्त कर अपने गांव आता है । वहाँ वह खेती करने लगता है ।

सरकारी कर्मचारी बनरखा डाबर वालों को परेशान करता है क्योंकि जंगल उसके आधीन होता है । डाबर वाले डाकुओं से हमेशा परेशान रहते हैं । उनको खुश रखने के लिए मगन नाम का धनी व्यक्ति समय-समय पर भोजन भेजता रहता है । इतना करने के बाद भी डाकुओं ने धमकी दी कि एक हजार रूपया एक महीने में लाकर देना है । कुंवरपुरा व डाबर वालों ने सरकार से प्रार्थना की कि हमें बन्दूकों का लाइसेन्स दे दो । परन्तु सफलता नहीं मिलती है ।

कुंवरपुरा के सरपंच रामदयाल का भाई परमोले डाबर वालों के खेत में फसल की चोरी करता हुआ पकड़ा जाता है । उसकी पिटाई होने से परमोले के हाथ की हड्डी टूट जाती है । पुलिस केस होने पर

दोनों गांवों के लोग समझौता करने की कोशिश करते हैं । उदय की कोशिश से दोनों गांवों में प्रेम हो जाता है । उदय के व्यवहार से जागीरदार डूगरसिंह प्रसन्न होते हैं । उसके प्रयत्न से गांव में सहकारी समिति की स्थापना होती है । सहकारी समिति में लड़के-लड़कियों को भी शामिल करते हैं । लड़कियों में किरण नाम की लड़की अपना नाम सबसे पहले लिखाती है । मगन की बेटी किरण जो डाबर गांव की है अधिक परिश्रम से काम करती है । समिति के तीन संचालकों में एक नाम मगन का रखते हैं इसका कारण होता है कि ऐसा करने से दोनों गांवों के बीच मेल-मिलाप बढ़ता रहे । उदय स्त्रियों को शिक्षा व रक्षात्मक कार्य करने में मदद देता रहता है ।

जागीरदार डूगरसिंह और रामदयाल सहकारी समिति को अपने कुछ खेत देते हैं । गांव वाले उस पर मेहनत से खेती करते हैं, उनकी मेहनत रंग लाती है । उदय एक बार नाटक करता है । गांव वालों को बन्दूक का लाइसेन्स मिल जाता है । डाकुओं का हमला होने पर सभी गांव वाले मिल कर सामना करते हैं उनमें से किरण सबसे आगे रहती है । सभी डाकू मारे जाते हैं । डाबर वालों की वीरता सभी जगह फैल जाती है । उसमें किरण को अधिक श्रेय मिलता है । उदय-किरण में प्रेम हो जाने पर उनके माता-पिता दोनों का विवाह करवा देते हैं । विवाह के दिन बांध का उद्घाटन होता है । उनके विकास पर बनी फिल्म "चले-चलो" का प्रदर्शन होता है । उसको देख उदय-किरण से कहता है इस चित्र का नाम "उदय-किरण" होता तो कैसा रहता ? किरण कहती है और केवल तुम्हारा नाम ही रहता तो ?

यह उपन्यास आदर्शोन्मुखी सामाजिक उपन्यास है । इसमें पारस्परिक वैर-विरोध का खुलकर वर्णन किया गया है । उपन्यास में मुख्य-

पुरुष चरित्र उदय को उदार परिश्रमी और परोपकारी बताया गया है। किरण हमारे सामने शक्ति के रूप में आती है। गांव वालों को पढ़ाना व गांव की भलाई के बारे में वहां के लोगों को समझाना किरण यह काम अच्छी तरह से करती है। इसके अतिरिक्त मगन, छोटे महन्तों, परमोले, सरपंच डूंगरसिंह, रामदयाल कलक्टर आदि का वर्णन करने से कथा का विकास होता है। उपन्यास के बीच-बीच में सहकारिता के बारे में बताना उपन्यास की रोचकता को कम करता है। उदय का कार्य काफी सराहनीय है क्योंकि उसके दिल मे गांव वालों के प्रति प्रेम भावना रहती है इसी कारण गांव वाले उसकी सहायता करने को तत्पर रहते हैं। स्त्रियों में किरण का कार्य श्रेष्ठ लगता है। वर्माजी को शिकार का शौक होने से बन्दूक पर जोर देते हैं। किरण व अन्य स्त्रियों को बन्दूक की शिक्षा दिलाने में उनके हृदय की इच्छा पूरी होती दिखाई देती है।

कुंवरपुरा और डाबर वालों का आपसी वैर मिटाने के लिए लेखक ने उदय-किरण की शादी करना ही इस समस्या का समाधान माना है। सहकारी समिति के लिए गांव वाले अपनी जमींने सहर्ष दे देते हैं। पूरा उपन्यास सहकारिता को माध्यम बनाकर लिखा गया है। स्वयं वर्माजी ने लिखा है, सहकारिता की बात कहने वालों की पुकार उन देर से जगने वालों को अच्छी नहीं लगती।"[1] इस उपन्यास में ज्ञान से भरी बातें अधिक होने से इसकी औपन्यासिकता गौण पड़ गई है। इसमें पात्रों का विकास भी एक "सहकारिता" के ईर्द-गिर्द ही होता है।

यह उपन्यास सहकारिता को समझने में सहायक सिद्ध होता है। कलक्टर से सहकारी समिति के अफसरों के लम्बे-लम्बे विवरणों में

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - उदय-किरण, पृ॰-2.

लेखक के जीवन का अनुभव ही झलकता है । उपन्यास में आदर्श को ज्यादा महत्व दिया गया है । उपन्यास का नामकरण भी सार्थक प्रतीत होता है । "उदय-किरण" अर्थात् उन्नति के लिए लोगों में चेतना जागृत होना ।

.....

तृतीय अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ

1. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहास का स्वरूप

ऐतिहासिक उपन्यास किसी भी राष्ट्र, भाषा और साहित्य की अमूल्य निधि है । इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन का बोध होने के साथ मानवीय सत्य का रूप सामने आता है । इतिहास का आधार ग्रहण करते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य की निधि है । उपन्यासकार का सम्बन्ध इतिहास की सम्पूर्णता से नहीं होता अपितु इतिहास के काल घटना और पात्र विशेष से होता है । इतिहास को ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में परिवर्तित करने के लिये एक तो ऐतिहासिक तथ्यों को बिना किसी परिवर्तन के कथावस्तु के रूप में ढाल लेना आवश्यक हो जाता है । उन तथ्यों में भी ऐतिहासिक घटनाओं, तिथियों तथा नामों का ही प्राधान्य रहता है । इतिहासकार किसी युग और समाज के घटित स्थूल सत्यों को ही ग्रहण करता है, साहित्य उन स्थूल सत्यों के भीतर पहुँचकर अपनी वास्तविक सत्य तक पहुँचाने वाली शक्ति-कल्पना वृत्ति के द्वारा आन्तरिक सत्यों को प्रकाश में लाता है । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में इतिहास की सत्यता को कायम रखा । राजेन्द्रसिंह गौड़ के मतानुसार - "वर्माजी इतिहास के कंकाल में नवीन प्राणों की प्रतिष्ठा करके और अपनी भावुकता और कल्पना के समुचित

प्रयोग से अतीत के धुंधले और अस्पष्ट चित्रों को आलोकित, स्पष्ट और उच्छृंखलित करते हुए चलते हैं ।"[1]

वर्माजी की दृष्टि भारतीय इतिहास के केवल एक युग पर ही नहीं है उनकी दृष्टि मुगलकालीन इतिहास और अंग्रेजी शासन पर भी गई है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी अधिकांश ऐतिहासिक घटनाएं बुन्देलखंड की सीमा तक ही परिमित है इसलिए उनका क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित है, पर अपने इसी संकुचित क्षेत्र के भीतर उन्होंने संपूर्ण भारत की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को एक साथ उपन्यास में चित्रित करने का प्रयास किया । ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्जना में राष्ट्रीय जातीय, एवं क्षेत्रीय भावना को प्रकट करने का उद्देश्य निहित है । समाज-सुधार के वे पक्षपाती हैं । सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों में उनकी आस्था नहीं थी । ओमप्रकाश शर्मा के मतानुसार - "समाज की रूढ़िगत और जर्जर मान्यताओं के खिलाफ वर्माजी ने अपने उपन्यासों में जिन विद्रोहों को जन्म दिया है, वह भविष्य में एक प्रेरक शक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आयेगा ।"[2] इस प्रकार वर्माजी ने एक जागरूक कलाकार की तरह अपना कर्त्तव्य बखूबी से निभाया ।

वर्माजी के उपन्यासों में देशकाल की विशेषताएं और उस समय की घटनाओं का वर्णन हुआ है जिससे ऐसा लगता है कि उनका उद्देश्य अतीत की ओर जन-रूचि को प्रेरित करना और वर्तमान की समस्याओं के हल के लिए जन-जीवन के बीच उसका प्रचार करना रहा। जैसे गढ़-कुण्डार उपन्यास में बुन्देलों और खंगारों की आपसी जातीय ऊँच-नीच की भावना

1· हमारे लेखक - राजेन्द्रसिंह गौड़, पृ·-304.
2· ओमप्रकाश शर्मा - साहित्य कोश, पृ·-176.

को पकट करते हैं और वर्तमान को उस बराई से दर रहने तथा आपसी

की राजनीतिक घटनाओं को वर्णित किया गया है । "विराटा की पद्मिनी" में वर्माजी ने उन घटनाओं पर प्रकाश डाला है जिनके कारण कुमुद को अपने प्राण त्यागने पड़े । "लक्ष्मीबाई" उपन्यास में वर्माजी ने जातिगत भेदभाव कहीं पर भी नहीं दर्शाया क्योंकि उस समय देश को संगठित होने की आवश्यकता थी । हिन्दू-मुस्लिमों के आपसी प्यार व स्नेह को वर्माजी ने अपने उपन्यास में दिखाने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने यह दिखाने की चेष्टा की कि जन-साधारण में धार्मिक भेद-भाव था ही नहीं । बल्कि विदेशी शासकों ने यहाँ के आपसी पूर्वाग्रहों का लाभ उठाया और कलह की सर्जना कर अपना स्वार्थ साधा । "सोती आग" उपन्यास में कठपुतले मुहम्मदशाह के दरबारी षड्यंत्रों की झलक मिलती है । औरंगजेब की बोई साम्प्रदायिकता ने हिन्दू-मुसलमान अफगान, पठान, इरानी सभी जातियों को आपसी लड़ाई की ओर प्रेरित किया ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में इतिहास को आधार बनाया है । वर्माजी के उपन्यासों का आधार भारतवर्ष का इतिहास ही है । "झाँसी की रानी" उपन्यास शुद्ध इतिहास को आधार बनाकर लिखा गया है ।"माधवजी सिन्धिया","भुवन विक्रम","मुसाहिब जू" उपन्यास इतिहास के बहुत करीब है । कभी-कभी वर्माजी ने उपन्यास में

इतिहास की सत्यता को नकार देने की कोशिश भी की है । उदाहरण स्वरूप "अहिल्याबाई" नामक उपन्यास को देखा जा सकता है । इसमें अहिल्या बाई को खंडेराव की रानी बताया गया है, जबकि इतिहास अहिल्याबाई को मल्हारराव होलकर की रानी मानता है । इस तरह का कल्पना विलास ऐतिहासिक उपन्यास में ही हो सकता है, इतिहास में नहीं ।

शंभुनाथ जी के शब्दों में "वृन्दावनलाल वर्मा ने एक विकसित नज़रिए से इतिहास को देखा । ऐतिहासिक उपन्यास-रचना में इतिहास दृष्टि का विकास राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के विकास से जुड़ा हुआ था । अतः किशोरीलाल गोस्वामी की इतिहास-दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा की इतिहास-दृष्टि विकसित होती है । इन्होंने इतिहास को सांप्रदायिक और पृथकतावादी दृष्टि से नहीं देखा । दूसरे, इतिहास को तथ्यों का सूखा बंडल नहीं माना । उन्होंने इसकी अन्तरात्मा का संगीत सुनकर उस निरंतरता की खोज की, जो उनके युग के आंदोलित समाज के बदलाव को बल देने वाली हमारी विरासत थी । उनकी दृष्टि में सामाजिक सृजन में ऐतिहासिक उपन्यास काफी हाथ बंटा सकते हैं, यदि ऐतिहासिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का भी समावेश हो ।"[1]

वर्माजी के उपन्यासों में अतीत और वर्तमान का सुन्दर समन्वय होने से उनकी रचनाओं में रोचकता दिखाई देती है । अतीत और वर्तमान समान रूप से उनके उपन्यासों में प्रयुक्त होते हैं । इसीलिए रामविलास जी शर्मा लिखते हैं - "वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यास लिखते हुए वर्तमान समाज की समस्याओं का ध्यान रखते हैं । अपने युग को अतीत के नाम पर चित्रित

---

1. शंभुनाथ - भारतीय इतिहास की पहचान और कथा साहित्य, पृ.- 7-8. वृन्दावनलाल वर्मा जन्म-शतवार्षिकी, राष्ट्रीय संगोष्ठी सितम्बर 14-16, 1989.

नहीं करते वरन् अतीत के चित्रण से वर्तमान के लिए प्रेरणा लेते हैं। इस प्रकार अतीत और वर्तमान के बीच उनके लिये कोई दुर्भेद्य खाई नहीं है।"[1] उनके उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के इतिहास का गहरा अध्ययन मिलता है। लेकिन जहाँ पर इतिहास मौन रहता है वहाँ पर वर्माजी कल्पना का सहारा लेकर सिद्ध करने की कोशिश करते है कि वह घटना सत्य है। वर्माजी के उपन्यासों में उस समय का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास राष्ट्रीय और क्षेत्रीय परिवेश के जीवंत वर्णन करने से साकार हो उठा है। यहाँ हम यह देखेंगे कि उस समय किस तरह की परिस्थिति थी और उनके उपन्यासों पर उसका कितना प्रभाव पड़ा है।

(1) राजनीतिक इतिहास

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में भारत की तत्कालीन राजनीतिक झलक मिलती है। वर्माजी ने उस समय की जिन घटनाओं और व्यक्तियों को लिया है वे वास्तव में इतिहास प्रसिद्ध चरित्र हैं। उस समय केन्द्र में कोई मजबूत सत्ता न थी। छोटे-छोटे राजा, नवाब, सामन्त ही स्वतंत्र अधिपति थे। इसी कारण आये दिन आपसी लड़ाइयाँ होती रहती थीं। राजनीतिक उठा-पटक के कारण साधारण सामन्त राजा बन जाता और राजा गली का भिखारी। दिल्ली के तख़्त पर जो शासक होता वह सरदारों के हाथों की कठपुतली होता था। वह अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने की धुन में युद्ध करता रहता था। साधारण जनता के प्रति किसी का ध्यान नहीं था। शासन कार्य व्यक्तिगत आकांक्षाओं और वासनाओं का साधन मात्र रह गया था। राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे, फिर भी अत्याचार की ज्वाला में जलते हुए

---

1. रामविलास शर्मा - आस्था और सौन्दर्य, पृ.-199.

साधारण जन के वीरान हृदय के एकांत कोने में अपने धर्म और अपने कर्त्तव्य के अंश वर्तमान थे ।

इतिहास के जिस चौखटे में लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी, मृगनयनी, कचनार और माधव जी सिंधिया आदि का चित्रण किया गया है वह राजनीतिक घटनाओं के इतिहास के आधार पर निर्मित किया गया है । सन् 1287 के लगभग दिल्ली में गुलाम वंश के अंतिम प्रभावशाली सुल्तान बलवन का सूर्य अस्त हो रहा है । जुझौति के राजपूत खंगार और बुन्देल आपस में लड़ने का बहाना ढूंढा करते हैं । दोनों के लड़ने के और कारण भी हैं, खंगार मुसलमानों का साथ देते हैं और दूसरा कारण बुन्देल कन्या हेमवती के साथ विवाह का प्रस्ताव है । खंगार नागदेव, हेमवती से प्रेम करता है । जातीय प्रतिष्ठा में ऊँच-नीच होने के कारण विवाह न कर बुन्देल लोग छल द्वारा खंगारों का नाश करने में सफल हो जाते हैं । इतिहास में सभी घटनाओं का वर्णन आया है जिसमें बुन्देलों की वीरता, मुसलमानों का आक्रमण तथा धीर प्रधान का कुशल राजनीतिज्ञ होना प्रमाणित है ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में सिकन्दर लोदी दिल्ली का सुल्तान था । "मृगनयनी" उपन्यास उस समय के राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित है । ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर वीर और कला प्रेमी था । मांडू के सुल्तान गयासुद्दीन के अत्याचार तथा उसका और सिकन्दर लोदी का नरवर किले पर आक्रमण इतिहास की प्रमुख घटना है । मानसिंह तोमर द्वारा नरवर की रक्षा करना और सिकन्दर लोदी को हराना भी प्रमुख राजनीतिक घटना है ।"विराटा की पद्मिनी" पालर में एक दांगी के घर पैदा हुई "कुमुद" नामक कन्या की कहानी है । अलीमर्दान कुमुद को प्राप्त करने के लिये युद्ध करता है लेकिन कुमुद अन्त में बेतवा नदी में छलांग लगा कर अपने प्राण त्याग देती है । राजनीतिक

व्यवस्था अस्त-व्यस्त होने के साथ राजा व सामन्त लोग विलास में डूबे रहते हैं ।

"माधव जी सिन्धिया" उपन्यास में माधव जी को एक वीर योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी शासक के रूप में दिखाया गया है । माधव जी सारे भारत को एक सूत्र में बाधना चाहते हैं । उपन्यासकार लिखते हैं कि - "हद हो गई इस एक में नृशन्सता, नीचता, छल, कपट, शूरता और निर्ममता की । क्या थी राजनीति उस युग की । उस पतित और भ्रष्ट राजनीति के युग में भी माधव जी सिन्धिया सदृश्य महापुरूष को भारत ने जन्म दिया ।"[1] गन्ना बेगम गुनीसिंह बनकर माधव जी के साथ रहती थी । राजनीतिक स्तर बहुत गिरा हुआ था । मराठे अंग्रेजों व टीपू के युद्धों का वर्णन इतिहास में मिलता है । माधव जी की महानता उस समय प्रगट होती है जब उनको जहर दे दिया जाता है लेकिन माधव जी अपने सैनिकों से कहते हैं कि मुझे जहर देकर मारा गया इस बात को कभी प्रगट मत करना क्योंकि - "मैं सिपाही की मौत मरना चाहता हूँ ।"[2] माधव जी नहीं चाहते थे कि मेरे मरने के बाद पूना, महाराष्ट्र आदि में आपसी लड़ाई हो और स्वराज्य हाथ में आता-आता चला जाय ।

"महारानी दुर्गावती" उपन्यास में अकबर ने दुर्गावती पर आक्रमण किया । आपसी फूट के कारण रानी को मुगलों से युद्ध करना पड़ा । उसकी वीरता सभी इतिहासकारों ने मानी है । "रामगढ़ की रानी" ने अंग्रेजों से शौर्य व वीरता से युद्ध किया । उसने एक बार सारे

1· माधव जी सिन्धिया - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ·-5.
2· वही, पृ·-529.

अंग्रेज अफसरों को अपने राज्य से निकाल भी दिया । उस समय के देश प्रेमी शंकरशाह और उसके पुत्र रघुनाथशाह को अंग्रेजों ने बागियों से मिला हुआ बताकर दोनों को 18·9·1957 के दिन तोप से उड़ा दिया । उस समय जो अंग्रेज डा॰ वहाँ मौजूद था उसने कहा कि - "दोनों का धैर्य सन्तुलन और दृढ़ता देखकर आश्चर्य होता रहा ।"[1] "सोती आग" उपन्यास में वर्माजी ने सन् 1729 में हुए दिल्ली के दंगों का वर्णन किया है । राजनीतिक दलबन्दी की भंवर में पड़कर लोग कितनी प्रचण्ड और नृशंस हत्यायें कर बैठते हैं । दबी चिनगारी को फूंककर लोग जिस आग को प्रज्वलित करते हैं वह दावानल का भयानक रूप पकड़ती है, ऐसा कि फिर उनके ही बस की नहीं रहती । "सोती आग" का इतिहास है आपस में मुस्लिम-मुस्लिम ही लड़-लड़ कर मर गये । झांसी की रानी, लक्ष्मीबाई के समय अंग्रेजों की कूटनीति की चालें भारत में फैल रही थीं । 1857 का गदर होना, उसमें रानी का भाग लेना तथा स्वराज्य के लिए सभी राजाओं को एकत्र करना तथा झांसी को आगे देखने का स्वप्न आदि सभी राजनीतिक घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं । एक जगह रानी कहती हैं - "मोती मैं झाँसी को हर बात में आगे देखना चाहती हूँ । ··· मैं चाहती हूँ कि प्रत्येक विद्या में झाँसी देश भर में सबसे आगे रहे परन्तु होगा य ह तभी जब देश को अंग्रेजों के पंजे से छुटकारा मिल जाय ।"[2] ऐसे स्वप्नों को अधूरा ही छोड़ा गया क्योंकि देश में नमक-हरामों की कमी नहीं थी जैसे पीर अली, अली बहादुर, दूल्हाजू आदि । इन्हीं की बदौलत अंग्रेजों की कूटनीति फलती-फूलती रही और भारत में "फूट डालो राज्य करो" की नीति अपनानी शुरू की । तात्याँ टोपे, नाना व लक्ष्मीबाई जैसे वीरों की घटनाएं इतिहास सम्मत हैं ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - रामगढ़ की रानी, पृ·-3 (परिचय)
2· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·-240.

(2) सामाजिक इतिहास

सामाजिक उपन्यासों में लोकजीवन, जाति, धर्म,संस्कृति आदि का संदर वर्णन हुआ है । वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में इन सब का वर्णन करते हुए उनकी समस्याओं का समाधान करने का पूरा-पूरा प्रयास किया है । लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासों में इतनी सरलता से समस्याओं का समाधान वे नहीं कर पाये हैं । "गढ़ कुण्डार" में तारा और दिवाकर का विवाह न करवा कर उस समय के युग की मांग को ध्यान में रखा गया है । नागदेव खंगार जाति का था और हेमवती बुन्देल जाति की । बुन्देलों द्वारा अपनी जाति को ऊँचा मानने के कारण ही हेमवती को खंगारों द्वारा मांगना अपमान समझा गया । इसी तरह "मृगनयनी" उपन्यास में लाखी अहीर है और अटल गूजर अतः इन दोनों का विवाह समाज को मान्य नहीं होता है । राजा के लिए यह बन्धन नहीं है । "भुवन-विक्रम" उपन्यास में उत्तर वैदिक युग के ऋषियों के लिए वर्ण-व्यवस्था को कठोर रूप से समाज के लोगों पर लागू करना ही उनका धर्म था । लेकिन उस काल में भी एक ऋषि हुए जो वर्ण व्यवस्था की आलोचना करते हैं वे धौम्य ऋषि हैं । उनके अनुसार - "वर्ण विभाजन की कल्पना आधारित हो । श्रम सबके ऊपर है, सब का राजा ।"[1] अपनी व्यवस्था में धौम्य के लिये "शूद्र" किसी वर्ण का नहीं अपितु कर्त्तव्य भ्रष्टता और अनैतिकता का पर्याय है । भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रमुख स्थान है । यही कारण हैं कि हिन्दू सदा से धर्म को अपना प्राण समझते रहे हैं । सभी लोगों की आस्था शारीरिक और मानसिक सुख-शान्ति की प्राप्ति हेतु धर्म से सम्बद्ध व्रत,उपवास,पर्व,त्यौहार,स्नान,उत्सवों,मेलों आदि में रही है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.-70.

भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान वर्माजी के उपन्यासों में धर्म से सम्बन्ध रखने वाले इन तत्वों की यत्र-तत्र स्पष्ट झलक मिल जाती है । "कचनार" उपन्यास में कचनार का साध्वी बनना, साधुओं का राज्यों में फैलना आदि इस बात को दर्शाता है कि उस समय साधु-संन्यासियों का जोर था ।

ऐतिहासिक उपन्यासों मे जातिगत भेद-भाव होते हुए भी हिन्दू-मुसलमानों में आपसी प्रेम भाव देखने को मिलता है । लक्ष्मीबाई की सेना में मुस्लिम सिपाही बहुत थे जो देश भक्ति में किसी से कम नहीं थे । "माधव जी सिन्धिया" ने मुसलमानों को उच्च स्थान दिया । उनकी हमेशा यही कोशिश रहती थी कि हिन्दू-मुस्लिम आपस में भाई की तरह रहें । इसका एक उदाहरण सामने आता है जब इब्राहीमगार्दी को अब्दाली पत्र लिखता है कि वह मुसलमान है और हमारी सेना में आ जाये, लेकिन गार्दी जैसा देश भक्त अब्दाली को पत्र लिखता है कि - "वह मुसलमान कहलाने लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ कोशिश करने के लिये बरगलावे ।"[1] माधव जी उन लोगों को अधिक सम्मान देते थे जो देश के लिए बलिदान होने को तत्पर रहते थे । इसी तरह "टूटे-काँटे" उपन्यास में नूरबाई डाकुओं से मोहन को बचाती है । मुसाहिब जू का नीची जाति वालों के साथ प्रेम व स्नेह देखते ही बनता है । सबको समान समझने वाले मुसाहिब जू को यह मालूम होता है कि उनको शर्बत पिलाया गया और सभी को पानी इससे उनको बहुत दुःख होता है । वह क्रोधित होकर अपनी पत्नी से कहते हैं - "किसी को शर्बत किसी को पानी ! यह क्या ?" और वह स्पष्ट कहते हैं - "यह बहुत बुरा हुआ । जो कुछ हो, सबके

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिन्धिया, पृ.-236.

लिए एक-सा होना चाहिए । मेरा जीवन मेरे सैनिकों से ही सार्थक है । मेरे लिए धिक्कार है, यदि मैं पेट भर खाऊँ और मेरे आदमी भूखे या आधे पेट रहें ।"[1] यह मुसाहिब जू की आदर्श व्यवस्था का चित्रण है ।

§3§ सांस्कृतिक इतिहास

डॉ॰ सच्चिदानन्द राय के अनुसार - "संस्कृति वह जटिल विकासशील क्रिया है जो अर्जित और नैसर्गिक संस्कारों के माध्यम से मानव की अन्त: शक्तियों को प्रबुद्ध करके उसे सही रूप में अपने गुणों को प्राप्त करने में सक्षम बनाती है । यह प्रसारवादी और संप्रेषणशील होती है और प्रतीकों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होती रहती है । इसमें व्यक्ति की बौद्धिक वैचारिक आध्यात्मिक और भौतिक सभी आकांक्षाओं का अभिज्ञान निहित रहता है ।"[2] बुन्देलखण्डीय वातावरण के चित्रण में जनता के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के चित्र प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं । सामाजिक रीतिरिवाजों तथा उत्सवों में प्रजा की गहरी आस्था दृष्टिगोचर होती है । कुण्डार में होली के उत्सव का वर्णन इस प्रकार मिलता है - "प्रजा वैसे तो इस काल में दबी हुई सी रहती थी । जाति-पाँति और ऊँच नीच के भेदभाव अधिक थे । परन्तु होली एक ऐसा त्योहार था जिसमें मन की उच्छृंखलता अपने पूरे विकसित रूप में किलोल किया करती थी । भेद-भाव और ऊँच-नीच दो एक दिन के लिए विदा माँग जाते थे ।"[3] इसी तरह "मृगनयनी" में भी सिकन्दर लोदी के आक्रमण से आक्रान्त होते हुए तथा उसके हटते ही

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मुसाहिब जू, पृ॰-12.
2. डॉ॰ सच्चिदान्द राय - हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना,
3. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ॰-281.

लोगों का फाग, होली में मस्त होना, उस समय के जीवन की सरलता का परिचायक है । "झांसी की रानी" में 'हरदी कूंकू उत्सव' आदि का वर्णन होने से तत्कालीन समाज के हर्षोल्लास तथा आस्था और विश्वास का परिचय मिलता है । उस समय के ग्रामीणों के जीवन तथा उनकी परिस्थिति का भी पता चलता है । "ज्येष्ठ की दशमी शुक्ला को गंगा-दशहरा के दर्शन के दिन सर्वत्र त्यौहार मनाया जाता है । चन्देल राजा कीर्तिवर्म्मदेव के काल से लेकर दुर्गावती के पिता कीर्तिसिंह चन्देल के समय तक कालिंजर के नील कण्ठेश्वर महादेव की पूजा धूमधाम से होती रही ।"[1] बुन्देलखण्ड में और भी अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम समय-समय पर होते रहते थे । अनेक अवसरों पर लोकगीत गाते सुनाई पड़ते थे ।

§4§ राष्ट्रीय इतिहास

वर्मा जी के उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना होने के साथ-साथ बहुत से पात्रों में जन-कल्याण की भावना भी देखने को मिलती है । उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में "झांसी की रानी, माधव जी सिन्धिया, महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी, आते हैं इसमें घटनाएँ व पात्र वर्मा जी ने इतिहास से लिए हैं । 1857 की क्रांति राष्ट्र व्यापी क्रांति थी । उस क्रांति ने लगभग सभी भारतीयों को जागृत कर दिया था । अंग्रेजों को लक्ष्मीबाई ने कहा कि - "मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी । स्वराज्य के लिए संघर्ष करने वाली रानी ने आम जनता को भी इससे अवगत करवाया । तात्याटोपे ने राज्यों में घूम-घूम कर राष्ट्रीय भावना लोगों के मन में भरने का कार्य किया । रामगढ़ की रानी ने लक्ष्मीबाई का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ.-38-40.

अनुसरण किया । वे अंग्रेजों के खिलाफ मरतेदम तक लड़ती रहीं । "अचल मेरा कोई"... में अचल की भावना देश को अंग्रेजों से आजाद कराना था, इसलिए वह जेल भी जाकर आया । लक्ष्मीबाई व माधव जी ने देश को परतंत्रता की दासता से मुक्त कराने का प्रयास किया । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उन्होंने अतुलनीय वीरता, शौर्य और साहस का प्रदर्शन किया । "मृगनयनी" उपन्यास में राजा मानसिंह के अन्दर भी राष्ट्रीय भावना का पौधा पनपता हुआ दिखाई देता है । मृगनयनी वीर होने के साथ कला को आदर देती है । उसके मन में सदा यह भाव रहता है कि सभी स्त्री-पुरुष बलशाली होने चाहिए और उनके अन्दर देश-प्रेम की भावना विकसित होनी चाहिए जिससे अपने देश के तथा दूसरे देशों के शत्रुओं से भी रक्षा हो सके । इसी उपन्यास का एक उदाहरण है - "सिकन्दर लोदी के पिता बहलोल ने आक्रमण किया फिर सिकन्दर ने ग्वालियर का कचूमर निकालने में कसर नहीं छोड़ी । सिकन्दर ने ग्वालियर पर पाँच बार आक्रमण किया । पांचों बार मानसिंह के सामने लौट जाना पड़ा ।"[1] राजा मानसिंह तो देश-भक्त थे ही उनकी जनता में भी देश भक्ति की भावना थी । राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाय तो अहिल्याबाई व रामगढ़ की रानी में भी यह गुण विद्यमान है । रामगढ़ की रानी ने तो सभी राज्यों के राजाओं को संगठित करने के लिए एक संदेश भिजवाया जिसमें लिखा था - "देश की रक्षा करने के लिये या तो कमर कसो या चूड़ी पहिन कर घर में बन्द हो जाओ"।[2] इसी तरह विराटा की पद्मिनी में कुमुद को बचाने के लिए दांगी राजाओं ने सभी राजा को विदेशियों से युद्ध करने के लिए कहा था । ऐसे तो देवीसिंह, लोचनसिंह वीर योद्धा थे परन्तु उनमें राष्ट्र-प्रेम ज्यादा दिखाई नहीं देता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.-256.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - रामगढ़ की रानी, पृ.-39.

"मुसाहिब जू" उपन्यास में मुसाहिब जू का देश-प्रेम व अपनी जनता के प्रति स्नेह देखने में आता है । मुसाहिब जू के प्रति राजा का व्यवहार ठीक न होने पर तथा उसको देश निकाला दिये जाने पर भी कोतवाल के कहने से वहीं रुके रहे क्यों कि मुसाहिब जू को देश में शत्रुओं का भय बताया गया था इससे वे कहते हैं - "दतिया के ऊपर चढ़ आने वाले शत्रु को परास्त करके यदि जीवित रहे तो केरूआ चले जावेंगे परन्तु परित्यक भरतगढ़ में पैर न रखेंगे ।"[1] इस प्रकार ये लोग देश के लिए अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार रहते थे ।

इस तरह वर्मा जी के उपन्यासों के पात्रों में देश प्रेम जनता के प्रति प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है । वर्तमान युग में भी इसकी उतनी ही जरूरत है जितनी की उस समय हुआ करती थी । लक्ष्मीबाई तो हमारे सामने ऐसा उदाहरण है कि सभी भारतवासियों को गर्व होता है । उनके विचार से स्वराज्य का नारा ही लोगों के मन में स्वतन्त्रता की भावना भरता है । आज भी भारतवर्ष में ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो स्वार्थ और धनलोलुपता से कोसों दूर रहे । वर्मा जी अपने पात्रों में इस तरह की भावना भरते थे ।

(5) क्षेत्रीय इतिहास

क्षेत्रीय इतिहास उसे कहते हैं जो क्षेत्र विशेष से सम्बन्ध रखता हो जैसे गढ़-कुण्डार, रामगढ़ की रानी, भुवन विक्रम, मृगनयनी आदि ∠ उपन्यास और वर्मा जी के लगभग सभी उपन्यास बुन्देलखण्ड को लेकर लिखे गये हैं । बुन्देलखण्ड का नाम कैसे प्रचलित हुआ ? इसके सम्बन्ध में एक किंवदन्ती है - "काशी के गहरवार राजा के वंशज वीरबहादुर के पांच पुत्र थे ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मुसाहिब जू, पृ.-97.

पाँचवा पुत्र पंचम था । सन् 1170 ई॰ में पंचम के भाइयों ने उसे राज्य के भाग से वंचित कर निर्वासित कर दिया । निराश पंचम ने राज्यप्राप्ति हेतु मिर्जापुर के पास विन्ध्याचल में दुर्गा की सेवा में तप किया । अन्त में उसने गला काट कर देवी को भेंट करना चाहा । इस प्रयास में पंचम के गले से रक्त की बूंद टपकी । दुर्गा प्रकट हो गयीं और पंचम की कामना पूर्ण हुई । बलिदान की रक्त की उस "बूंद" के आधार पर "बुन्देला" शब्द प्रचलित हुआ । पंचम की सन्तान बुन्देला कहलायी और उनकी राज्य-भूमि बुन्देलखंड ।"[1] अनेक जिलों के भूगोल, इतिहास आदि का ब्यौरा प्रस्तुत करने वाले गजेटियरों तथा गांवों की दस्तूरदेहियों में ऐसे सूत्र प्राय: मिल जाते हैं । इन ब्यौरों को इतिहास से भिन्न स्तर पर रखने के लिए इन्हें "स्थानीय इतिहास की संज्ञा देना ठीक होगा । "गढ़ कुण्डार";"विराटा की पद्मिनी";"मृगनयनी";"कचनार";"लक्ष्मीबाई" आदि में क्षेत्र विशेष का वर्णन अधिक हुआ है । झांसी की रानी जहाँ पैदा हुई थीं और जहाँ उनके पूर्वज जन्में थे उस भूखण्ड से वर्मा जी को स्वभावत: बड़ा लगाव था । उनके हृदय में बुन्देलखण्ड की परम्परा और शौर्य को लेकर गहरा लगाव था इसी कारण उनके उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का ही वर्णन मिलता है । अपनी रचना-भूमि से गहन तादात्म्य स्थापित कर लेने के कारण वर्मा जी बुन्देलखण्डी पहले हैं, बाद में कुछ और ।

गढ़-कुण्डार में जातीय लड़ाई क्षेत्र विशेष की है । गढ़-कुण्डार का पूरा कथानक ही जातीय दम्भ की नींव पर खड़ा है । अपने प्रदेश की स्वतन्त्रता धर्म और संस्कृति को ध्वंसकारी मुसलमानों से बचाने की अपेक्षा बुन्देलों और उनके समर्थक तथाकथित उच्चवंशीय क्षत्रियों को

1· झांसी गज़ेटियर, पृ॰-181.

खंगारों को समूल नष्ट करना अधिक आवश्यक लगा । केवल इस कारण कि खंगार नागदेव ने बुन्देल कन्या से विवाह प्रस्ताव करने की धृष्टता की थी ।'विराटा की पद्मिनी'में कुमुद को समाज ने देवी बना दिया और उसकी पूजा करने लगे । लेखक ने दुर्गावती तथा मृगनयनी को शिकार का अत्यधिक शौकीन बताकर क्षेत्र विशेष के लोगों की भावनाओं को सामने रखा है । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में क्षेत्र विशेष का इतिहास और उसकी घटनाओं का वर्णन बड़ी बारीकी से किया है । झाँसी की रानी उपन्यास में झाँसी का इतिहास उस समय के लोगों की मानसिक विचारधाराओं को लेकर लिखा गया है । वर्मा जी लिखते हैं कि झाँसी के लोग मस्त और श्रमशील थे । परन्तु राजा गंगाधरराव को रंगशाला से इतना प्रेम था कि स्वयं नाटकों में भाग लेते थे । कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय सामंती व्यवस्था होने के कारण लोगों में विलासिता की भावना ज्यादा थी । अगर प्रजा पर राजा अत्याचार करता था तो प्रजा कुछ नहीं बोल सकती थी । परन्तु लक्ष्मीबाई सामन्तवादी विचारों के खिलाफ थी । अपनी प्रजा से प्यार करना तथा उनके दिलों में देश-प्रेम की भावना जाग्रत करना उसका प्रमुख कार्य था । वर्मा जी ने "भुवन-विक्रम" में जनता को सर्वोपरि माना है । प्रजा राजा का चुनाव करती है, अगर राजा उस पद के योग्य नहीं लगा तो प्रजा उसे हटा भी सकती थी । इसी कारण डॉ॰ रणवीर रांग्रा लिखते हैं - "भुवन-विक्रम" ही उनकी एक ऐसी रचना है जो वैदिक युग को मूर्त करती है ।"[1] अतः वर्माजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उस समय की विचारधाराओं को हमारे सामने रखा है जिससे कि हम उस युग के बारे में जान सकें ।

---

1. डॉ॰ रणवीर रांग्रा - समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका, पृ॰-60.

§6§ वर्मा जी के इतिहास स्रोतों के रूप

भारत में कुछ वर्षों से इतिहास के प्रति जागरूकता बढ़ी है और उसमें सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय स्रोतों को ढूंढने का प्रयास हो रहा है । वर्मा जी अपनी पूरी जिन्दगी इस कार्य में संलग्न रहे । ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में अपनी भूमिकाओं तथा परिचयों में वर्माजी ने इस बारे में विस्तार से लिखा है । इनमें अधिकांशत: वे अपनी सामग्री की प्रामाणिकता तथा स्रोतों का संकेत देते हैं ।

वर्मा जी ने इतिहास ग्रन्थों को ही अपनी रचनाओं का उपजीव्य स्वीकार किया है । उन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी तथा फारसी के इतिहास ग्रन्थों का मन्थन किया है तथा उनके आधार पर उपन्यासों में वर्णित तथ्यों को पुष्ट किया है । इतिहास के तथ्यों को उन्होंने विभिन्न पट्टे-परवानों, पत्रों तथा लेखों से परिपुष्ट किया है, उनकी चर्चा "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के परिचय में की गई है । महान् इतिहासकारों के वक्तव्यों तथा तुच्छ एवं नगण्य स्रोतों के वैषम्य की वर्मा जी ने खोज की है तथा पुष्ट प्रमाणों से संतुष्ट होकर लेखनी उठाई है ।

वर्मा जी ने परम्पराओं और किवदंतियों जन-श्रुतियों और रूढ़ियों तथा तत्कालीन विश्वासों को एकत्र किया । वर्मा जी ने इन सबका प्रयोग अपने साहित्य में किया । उन्होंने कथाओं का भी प्रयोग किया है । "सोना" उपन्यास में वर्मा जी लिखते हैं - "लोक-कथाओं में जो सम्मोहन है वह उनके पुरानेपन, व्यापकता और जनमत के मर्म को प्रभावित करने की रूढ़ि के कारण होता है ।"[1] इतिहास होते हुए

1· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना - परिचय

भी वर्मा जी ने लक्ष्मीबाई के जीवन की घटनाओं को लोक-कथाओं से जोड़ा । इसी से वर्मा जी लिखते हैं - "पारसनीस के अन्वेषण काफी मूल्यवान होते हुए भी उनका विचार है कि रानी झांसी का प्रबन्ध अंग्रेजों की ओर से गदर के जमाने में करती रही । परदादी और दादी की बतलाई हुई परम्पराओं के सामने मन में खपता नहीं था ।"[1] "कचनार" 'विराटा की पद्मिनी' 'सोना' उपन्यासों में भी लोक-कथाओं, दन्तकथाओं तथा परम्पराओं का सहारा लिया गया है । इन सबका प्रयोग करने पर भी लेखक ने ऐतिहासिक सत्य के तथ्यों पर बल ज्यादा दिया है ।

वर्माजी इतिहास की पूरी खोजबीन करके उसके अन्दर लोक-कथायें पत्रों, शिलालेख, परम्पराओं का पूरी तरह से विश्लेषण करने के बाद उपन्यास को पूरा करते हैं । अतः वर्मा जी के उपन्यासों में समाज और युग का दिग्दर्शन हो जाता है । उनके उपन्यासों में दिशादृष्टि होने से वे पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं । कभी-कभी तो उसके विचार भी वर्माजी के समान दृष्टिगत होने लगते हैं । वे ऐतिहासिक सत्यों को सामने रख कल्पना और यथार्थ का चित्रण करके अपनी कृतियों को सुन्दर व सफल बनाने का प्रयत्न करते थे ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, परिचय, पृ.-4.

2. ऐतिहासिक उपन्यासों में सत्य और कल्पना

सत्य और कल्पना मनुष्य की मन: स्थिति एवं मनोदशा से सम्बन्धित दो प्रक्रियाएं है । सत्य को प्रकट करना मनुष्य मात्र का व्यक्तिगत प्रश्न है । ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने निजी सत्य या अनुभव के साथ-साथ इतिहास के सत्य को ग्रहण करके चलता है । इसके अतिरिक्त समाज में जो प्रचलित सत्य है, उसे भी वह भुला नहीं सकता । वर्माजी ने अपने उपन्यास "कचनार" के माध्यम से बताने का प्रयास किया कि - "डरू की घटना जो उसके भाई के वध से सम्बन्ध रखती है धमोनी की नहीं बल्कि ओरछा राज्य स्थित उबोरा ग्राम से सम्बन्ध रखती है । डरू का नाम उबोरा से ही लिया गया है । बाकी घटनाओं का वर्णन जैसे डरू का कर्नल हो जाना, पिंडारियों द्वारा सागर की लूट में भाग लेना और अन्त में साहस के साथ अपने वध का सामना करना ऐतिहासिक है । इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिकता का कुछ अंश सत्य होने पर उपन्यासकार किस तरह अपनी कल्पना द्वारा पूर्णसत्य बनाने का प्रयत्न करता है । "कचनार" उपन्यास में कल्पना का सहारा अधिक लिया गया है । डॉ॰ चन्द्रकान्त ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का महत्व बताते हुये लिखते है - "कल्पना का सम्बन्ध मन से होता है । कल्पना एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी मानसिक स्थिति को एक भिन्न रूप में देखने की चेष्टा करता है ।"[1] जैसे कि "मृगनयनी" उपन्यास में वर्मा जी नदी की सुन्दर कल्पना मृगनयनी द्वारा करवाते हुये कहलाते है - "जहाँ भी रहूँ इस प्यारी नदी को दमकती हुई किलौलिनी धारा को अपने पास में रक्खू । बाहर जाऊँ तो क्या उसको बांधकर समेटकर नहीं ले जाया जा सकता ? ऊँघती

---

1. डॉ॰ चन्द्रकान्त गर्जे - हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-16.

लहराती बालों को किसी कागज पर उतार लिया जाय । पहाड़ों की ऊँचाइयों को एक स्थल पर क्यों न इकट्ठा कर लूँ ? बड़े-बड़े पेड़ों के बन्दनवार बना लिये जायें और डालियों-पत्तों के साजों के झरोखे में से चाँदी की कड़िया वाली लहरों को नाचता हुआ देखा जाय ।"[1] अर्थात वर्माजी ने नदी तथा पेड़ों, पहाड़ों को लेकर सुन्दर कल्पना की । ऐसा लगता है कि हमारी आँखों के सामने दृश्य उपस्थित हो और उस नदी पहाड़ों का आनन्द बैठे-बैठे ही ले रहे हों ।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में जहाँ इतिहास विषयक भ्रम हो जाता है वहाँ वे कल्पना को लेकर उस घटना को सत्य का रूप देने की कोशिश करते हैं । जैसे महारानी दुर्गावती उपन्यास में दुर्गावती का विवाह 1543 के अन्त के लगभग हुआ होगा । उसके उपरान्त शेरशाह सूरी का आक्रमण हुआ । शेरशाह और कीर्तिसिंह का अन्त सन् 1545 में हुआ ।[2] दुर्गावती के समय का यह उदाहरण देकर यह सिद्ध किया गया कि यह इतिहास सम्मत ही है । लेकिन "मृगनयनी" उपन्यास में वर्मा जी ने इतिहास से लेकर ही उदाहरण दिया । वर्माजी उस समय के शासन चक्र का वर्णन करते हुये लिखते हैं - "बहलोल लोदी ने फिर उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर ने सब तरह के उपाय किये परन्तु ग्वालियर का किला हाथ न लगा । सोचा था राजा मानसिंह युवक है अनुभवहीन । इसलिए ग्वालियर की ईंट से ईंट बजा दी जायेगी । गाँव मिटा दिये, खेती उजाड़ दी, ग्वालियर नगर को वीरान कर दिया फिर भी ग्वालियर के ऊँचे किले के न तो फाटक खुले और न राजा ने सिर झुकाया । अन्त में कुआं में जानवरों की सड़ी-गली लाशों को डाल कर

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.-16.
2. वृन्दावन लाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ.-6.

मानसिंह, उसके तोमर भाई बन्धुओं व अन्य लड़ने वालों को मन ही मन गालियां देता हुआ सिकन्दर कालपी की दिशा में दिल्ली की ओर चला गया, क्योंकि वहां पठान भाई बन्दों ने सिर उठा लिया था ।"[1] इस तरह के सही इतिहास के उदाहरण देकर वे इतिहास का मान रखने वाले अतीतदर्शी, राष्ट्रप्रेमी साहित्यिक मनीषी कहलाये । वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास रचना में वर्माजी की सफलता का रहस्य इसी निर्वहण संबंधी प्रतिभा में निहित है । उन्हीं के शब्दों में - "सच्ची बात के चौखटे में उस सच्ची बात के वातावरण को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करते हुये वर्माजी का उपन्यास "सोती आग" का एक उदाहरण देख सकते है - विकट दंगा सन् 1729 ई॰ में हुआ था ।"[2] "11 मार्च 1729 जुमा की नमाज़ जामा मसजिद में होती ही थी । पौ फटने के पहले ही से जूता फरोशों ने शहर में गश्त लगाना शुरू कर दिया । अपने दीन और रक्षा के प्रयत्न के लिये, जितने मुसलमान भिस्ती उन्हें, सजग बनाये रहने का सहानुभूति का संग्रह करके जुमा प्रयत्न किया ।"[3] उनके अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के ऐसे उदाहरण मिलते है जिन्हें वर्माजी ने कठिन परिश्रम के बाद प्राप्त किया था । इस सन्दर्भ में डॉ॰ सुब्बाराव ने लिखा है - "वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और उपन्यास तत्वों को समान गौरव मिला है । एकांगीपन के दोष से मुक्त आपके ऐतिहासिक उपन्यास ने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य को एक नयी दिशा और गति दी है ।"[4] इस तरह वर्माजी अपने उपन्यासों

1· वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ॰-1, परिचय
2· वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ॰- परिचय
3· वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ॰-93.
4· डॉ॰ सुब्बाराव चलसानि - हिन्दी और तेलगु के स्वातंत्र्यपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰-196.

में इतिहास सत्य को प्रगट करते है लेकिन कल्पना का दामन नहीं छोड़ते है ।

"गढ़ कुण्डार" में दिवाकर, तारा की कल्पना देवी के रूप में करता है - "एक सिंहासन पर कोई देवी बैठी हुई है । आंखों में मृदुल कोमल तेज से मुख की उज्ज्वल ..... देवी मुस्कराई । बोली तेरी तपस्या से सन्तुष्ट हुई । मांग क्या चाहता है ।"[1] यहाँ वर्माजी ने मानव को देवता का स्थान दे दिया । ऐसी कल्पना, कल्पना ही रहती है, सत्य नहीं । किन्तु ज्यादातर कल्पना सत्य हो जाती है । जैसे कि हमारे पूर्वज चाँद पर जाने की कल्पना मात्र करते थे लेकिन यही कल्पना यथार्थ में परिवर्तित हो गई । वर्मा जी ने अपनी बुद्धि से अनेक प्रकार की कल्पनाएं की । उनके ऐतिहासिक उपन्यास को पढ़ कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि - "वर्तमानकाल में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में केवल बाबू वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं । उन्होंने भारतीय इतिहास के मध्ययुग के आरम्भ में बुन्देलखण्ड की स्थिति को देखकर गढ़ कुण्डार और विराटा की पद्मिनी दो बड़े सुन्दर उपन्यास लिखे हैं । "विराटा की पद्मिनी" की तो कल्पना अत्यन्त रमणीय है ।"[2]

ऐतिहासिक उपन्यास में जिस कल्पना के अंश को ऐतिहासिक सत्य के साथ प्रस्तुत किया गया है उसको पढ़कर नहीं लगेगा कि वह वर्णन कल्पना का हिस्सा है । "महारानी दुर्गावती" के युद्ध का वर्णन सत्य घटना सा प्रतीत होता है । "उन्होंने अकबर की एक बड़ी सेना से लड़ाई लड़ी थी । मांडू के राजबहादुर को तो उन्होंने सभी लड़ाइयों में हराया था । सभी युद्धों का नायकत्व उन्होंने स्वयं किया था । अकबर की सेना के भी कई बार दांत खट्टे किये और अन्त में अत्यन्त वीरता के साथ लड़ते-

---

1· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ·-494.
2· आ· रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ·-515 ·

जड़ते प्राणों का त्याग किया । अपने स्वाभिमान और संस्कृति पर छींटा नहीं पड़ने दिया ।"[1] ऐसा ही एक उदाहरण है जिसमें दुर्गावती अपने देश, राज्य में बने मन्दिरों को देखकर कहती है - "अपने यह मन्दिर कितने विशाल और सुन्दर है । अन्यत्र कहीं न होंगे ऐसे । चन्देले धन्य है जिन्होंने ये बनाकर खड़े किये । ऐसा चतुर और सूक्ष्म शिल्प कहीं न होगा ।"[2] इन उदाहरणों को पढ़कर ऐसा लगता है कि वर्माजी को अपने देश की संस्कृति से कितना प्यार था । वे युद्ध का वर्णन तो ऐसे करते हैं, मानों स्वयं वहाँ पर उपस्थित रहते हों । परन्तु इतने सजीव वर्णन कुछेक जगह पर ही मिलते हैं । वर्माजी व यशपालजी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जातीय दंगों का वर्णन ऐतिहासिक सत्य के आधार पर करते हैं । यशपाल जी का "झूठासच" और वर्माजी का "सोती आग" ऐसा ही उपन्यास है जिनकी घटनायें ऐतिहासिक हैं लेकिन कुछ अंश कल्पना ने भी लिया है । भीष्म साहनी का "तमस" उपन्यास में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है जो एक छोटी सी घटना से आरम्भ होकर रक्तपात से समाप्त होता है ।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की प्रधानता रहती है । "झांसी की रानी" उपन्यास इसी कोटि का श्रेष्ठ उपन्यास है लेकिन इस उपन्यास में कल्पना का भी अपना स्थान है । कल्पना प्रधान उपन्यास "मृगनयनी" को ही लें तो उसमें मृगनयनी की सुन्दरता और उसका शिकार खेलना कल्पना पर आधारित है जैसा कि "वैशाली की नगर वधू" उपन्यास कल्पना को प्रधान बनाकर लिखा गया है । इतिहास का स्थान दूसरा है । लेकिन माधव जी सिंधिया ऐतिहासिक

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मा. दुर्गावती, पृ.-2.
2. वही, पृ.-74.

सत्य पर लिखा गया उपन्यास है । इस सन्दर्भ में चन्द्रकान्त गर्जे का विचार है कि - "ऐतिहासिक सत्य की ओर देखने की प्रवृत्ति में ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा इतिहासकार की दृष्टि एक समान नहीं है जैसाकि कहा गया है, जहाँ इतिहासकार बुद्धि तत्व को प्रश्रय देगा वहाँ उपन्यासकार भावना को स्थान देगा । अर्थात ऐतिहासिक उपन्यास न केवल इतिहास है और न ऐतिहासिक वातावरण की पार्श्वभूमि पर लिखी हुई कल्पित कहानी ।"[1] लेकिन माधव जी सिंधिया के बारे में कर्नल मैलसिन अपनी पुस्तक "भारत में फ्रांसीसियों का अन्तिम संघर्ष"में लिखते हैं - "माधव जी का विशाल स्वप्न भारत की सारी शक्तियों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकता में बाँधने का था । इस विषय में उन सरीखा अत्यन्त दूरदर्शी राजदर्शी भारत ने और कोई नहीं उत्पन्न किया । यह एक विराट कल्पना थी परन्तु इसे माधव जी केवल माधव जी ही सफल बना सकते थे । यदि उनका देहान्त न हो गया होता तो वे सफल हो जाते ।"[2] यह सत्य है कि माधव जी जैसे बुद्धिमान योद्धा कम ही हुये हैं जिन्होंने एकता पर बल दिया तथा एक राष्ट्र की कल्पना की । वर्मा जी ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा उन्हें और अधिक ऊँचा उठाने की कोशिश की उसमें उन्हें सफलता भी मिली ।

"झांसी की रानी" उपन्यास में 1857 की क्रान्ति का वर्णन है । वर्माजी ने इस उपन्यास में ऐतिहासिक सत्य के साथ कल्पना को भी स्थान दिया है । फिर भी उनके ज्यादातर विचार सत्य पर आधारित हैं ।

---

1. डा॰ चन्द्रकान्त गर्जे - हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-31.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - माधवजी सिंधिया, पृ॰-5.

3· वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना की सक्रियता

कल्पना इतिहास में सक्रिय रूप में रहती है । ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिकता तथा कल्पना की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए वर्माजी ने स्वयं एक स्थान पर कहा है - "जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता उनका कल्पना द्वारा सर्जन करके उपन्यास लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है । उनमें वही चमक-दमक आ जाती है जो इतिहास के जाने-माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है, पर है यह कि उन तथ्यों या परम्पराओं को ताश के पत्तों का महल या क्लबघर न बना दिया जाय ।"[1] इसी तरह का एक और उदाहरण देते हुए टी· रोपन लिखते हैं - "ऐतिहासिक कल्पना का प्रयोग ऐसे लोगों की चेतनाओं और भावनाओं में हमें प्रवेश दिला देता है जो कि एक विशेष दृष्टि से हमसे अत्यधिक पृथक होते है । यदि हम अतीत की यथावद् उपस्थापना की जगह उसकी अपने सन्दर्भ में महत्वपूर्ण उपस्थापना चाहते हैं तो यह अनिवार्य है ।"[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक कल्पना का प्रयोग ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए आवश्यक है क्योंकि लेखक उसके द्वारा ही अपने वर्तमान को अतीत से ज्यादा जोड़ता है ।

कल्पना उपन्यासकार की रचनात्मक प्रतिभा को आगे बढ़ाकर कार्य करने के लिए भूमि प्रस्तुत करती है । उपन्यासकार कल्पना के द्वारा ही ऐसे प्रसंगों तथा घटनाओं, स्थान आदि का सफलतापूर्ण वर्णन करता है और कल्पना का साधन के रूप में प्रयोग करता है । जैसे "विराटा की पदमिनी" में कुछ पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं लेकिन उस समय की

1· वृन्दावनलाल वर्मा - ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण,पृ·
2· H.P. Rickman - Meaning in History, P.43

घटनाओं पर लिखते समय लेखक ने कल्पना का सहारा लिया है । इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है - "जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुःखान्त घटना है लेकिन उसका सिर काटने का हुक्म रानी द्वारा दिया जाना और सिरकाट कर न लाए जाने तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करना ।"[1] ऐसे उदाहरणों में कल्पना की सक्रियता झलकती है । इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएं घटती है जो देखने में असम्भव एवं अविश्वसनीय-सी लगती है । परन्तु हमें उन पर विश्वास करना ही पड़ता है, किन्तु कल्पना को तो अपना साक्ष्य स्वयं देना पड़ता है । ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि कल्पित घटनाओं अथवा पात्रों को इस रूप में उपस्थित किया जाय जिसके चलते उस कृति को ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है क्योंकि उसमें लेखक की कल्पना स्पष्ट व सक्रिय होकर इतिहास के माध्यम से प्रकट होती है । जैसे "कचनार" अथवा "विराटा की पद्मिनी" की घटनाएं तो ऐतिहासिक है लेकिन पात्रों की रचना कल्पना के आधार पर की गई है । "गढ़ कुण्डार" तथा "टूटे कांटे" में वर्मा जी ने ऐतिहासिक सत्य को सामने रखते हुये कल्पना का प्रयोग किया है । वर्मा जी अपने उपन्यास में पहले ही से परिचय और प्रस्तावना तथा परिशिष्ट में प्रमाण प्रस्तुत कर देते है और हमें यह समझते देर नहीं लगती कि वर्मा जी ने कहाँ-कहाँ कल्पना का सहारा लिया और कहाँ पर इतिहास का । "रानी लक्ष्मीबाई", "माधव जी सिंधिया", मुसाहिब जू" और 'महारानी दुर्गावती' आदि उपन्यास वर्मा जी की विशिष्ट कृतियां है जिनमें कल्पना को ऐतिहासिक सत्य के माध्यम से दिखाने का प्रयत्न किया है । इसी कारण से उनके उपन्यासों में कल्पना होते हुये भी इतिहास विकृत नहीं हुआ ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ०-4.

"माधव जी सिंधिया" में वातावरण और देशकाल के ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पना का पर्याप्त प्रश्रय लिया गया है । पात्रों के नाम, घटनाएं, युद्ध आदि ऐतिहासिक है परन्तु प्रेम प्रसंग काल्पनिक है । क्योंकि वर्मा जी ने उसी कथा को ग्रहण किया जो अपने आदर्शों और उददेश्यों पर खरी उतरती हो जिसका सूत्र इतिहास में मिलता हो । लेकिन जहाँ इतिहास ने मौन साध लिया या उपन्यास में उददेश्य की पूर्ति न हो पाई वहाँ पर वर्माजी ने किंवदन्तियों का सहारा लिया और विभिन्न लोगों के मत प्रस्तुत किये ।

वर्माजी ने बुन्देल खण्ड के भौगोलिक परिवेश में इधर-उधर बिखरे हुये ऐतिहासिक भवनों, चिन्हों, मूर्तियों और भग्नावशेष जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री को कल्पना के आधार पर प्रस्तुत किया है । जैसाकि वर्माजी "कचनार" का परिचय प्रस्तुत करते हुये लिखते है - "परदेशियों के तोड़-मरोड़ कर लिखे हुए इतिहास पटके खाये हुए चमकते हुए टीन के कनस्टर के समान हैं जिसमें सुन्दर से सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है । परन्तु परम्परा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती है । इसलिए मुझको परम्परा इतिहास से भी अधिक आकर्षक जान पड़ती है ।"[1] डॉ॰ अजय कुमार पटनायक के अनुसार - "वर्माजी कोरी कल्पना के आधार पर निर्मित कथासाहित्य से चिढ़ते हैं फिर भी उपर्युक्त स्रोत्रों से एकत्रित सामग्री को सजाने संवारने और उसे श्रृंखलाबद्ध एवं सोददेश्य रूप प्रदान करने में कथाकार सुलभ कल्पना का प्रयोग वहीं तक करते हैं जहाँ तक ऐतिहासिक सत्य की हत्या न हो ।"[2]

1॰ वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ॰-6.
2॰ डॉ॰ अजय कुमार पटनायक - हिंदी-उड़िया उपन्यास साहित्य, पृ॰-30.

वर्माजी इतिहास से प्राप्त कथा को कल्पना द्वारा उपन्यास में महत्व, कौतुहल व गति प्रदान करते हुये उसको चरम सीमा पर पहुँचा कर ऐतिहासिक सत्यों का उदघाटन करते हैं । "झांसी की रानी" में लेखक ने रानी के विषय में इधर-उधर बिखरी सामग्री को एकत्रित करके अपनी कल्पना का अदभुत रंग डाल कर रानी के एक ऐसे आदर्श चरित्र का निर्माण किया है, जो हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं बल्कि भारतीय इतिहास के लिए भी एक नवीन देन है । आरम्भ से अन्त तक रानी का चरित्र असाधारण दिखाते हुए वे लिखते है कि - "बचपन से ही जिसका जीवन कुश्ती, मलखम्भ, अश्वारोहण एवं अस्त्र-शस्त्र में बीता, जिसकी कल्पना में एक देश व्यापी क्रान्ति का चित्र बनता-बिगड़ता रहता था ।"[1] जिसने सागर सिंह डाकू को स्वयं पकड़ लिया, अंग्रेजों से युद्ध में अंग्रेजी सेना को पछाड़ दिया और उत्सवों के समय रानी का हरदी कुम-कुम के समय स्त्रियों से उनके पतियों के नाम पूछना आदि वर्माजी की कल्पना है लेकिन इसमें ऐतिहासिक सत्य अधिक लगता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ०-परिचय

4. वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना एवं यथार्थ का मिश्रण

§1§ कल्पना की सजीवता

कल्पना मानवीय अनुभूतियों, मार्मिक प्रसंगों और घटनाओं को याद रखवाने में महान भूमिका अदा करती है । कल्पना उपन्यासकार की कृति को आगे बढ़ाने में मदद करती है । डॉ॰ त्रिभुवनसिंह के अनुसार "उपन्यासकार कल्पना के द्वारा ही ऐसे प्रसंगों तथा मार्मिक स्थलों एवं घटनाओं की सृष्टि करने में सफल होता है जो उसकी कृति को कलात्मक पूर्णता प्रदान करने के लिये आवश्यक होती है ।"[1] अर्थात कल्पना के द्वारा जिन घटनाओं की चर्चा होती है उसमें अधिकतर मनुष्यों के जीवन में घटी हुई होती है । अनेक विद्वानों का मत है कि कल्पना का साधन के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए न कि साध्य के रूप में । क्योंकि कल्पना - कल्पना के लिये नहीं बल्कि वास्तविकता को और भी सजीव बनाने के लिए ही की जानी चाहिये ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत के नाम पर कल्पना का प्रयोग होता था । यह कल्पनालोक वर्तमान से पलायन तथा मत प्रचार के लिए उपन्यासकारों द्वारा रचा जाता था । लेकिन इस क्षेत्र में वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास "गढ़-कुण्डार" तथा "विराटा की पद्मिनी" में वर्माजी ने ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए कल्पना द्वारा इन्हें सजीव बनाया है । इस तरह कल्पना की सजीवता बनाये रखने के लिए उपन्यासकार को यथार्थ के ठोस धरातल पर दृष्टिपात करना अनिवार्य

---

1. डा॰ त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, पृ॰-299.

हो जाता है । इस कथन को और स्पष्ट करते हुये डॉ॰ रामशोभित प्रसाद सिंह लिखते है कि - "कल्पना प्राय: घटनाओं का प्रभाव तथा परिस्थितियों एवं चित्रों की यथार्थता दिखाने के लिए ही प्रयुक्त की जाती है । कुछ उपन्यास ऐसे भी होते है जिनमे किसी ऐतिहासिककाल के पात्र को लेकर कल्पना का संसार निर्मित किया जाता है । कुछ उपन्यासों में पात्रों आदि के नाम तो यथार्थ होते हैं, परन्तु घटनाएं गढ़ी हुई होती हैं ।"[1] कहने का तात्पर्य है कि कल्पना किसी भी तरह की हो सकती है । लेखक कभी काल्पनिक पात्रों द्वारा वर्णन करते है तो कभी घटनाओं को ही कल्पना का रूप दे देते है जिससे कि रचना यथार्थ रूप में ही चित्रित होती हुई जान पड़े । रघुबीर चौधरी इतिहास-रस नामक लेख में लिखते हैं - "नॉट दी पास्टनेस ऑफ दी पास्ट बट प्रेजेन्स ऑफ इट्स पास्ट"।टी॰एस॰ इलियट ने व्यतीत में बसे वर्तमान तत्व की चिरन्तन रहस्य की महिमा गाई है । समय का विभाजन उन्हे मान्य नहीं था । जो बीता हुआ लगता है वह भी वास्तव में अखण्ड समय का अंश है,केवल आदि है । समय और जीवन के विषय में ऐतिहासिक उपन्यास एक विशेष अधिकार के साथ व्यापक संदर्भ में कुछ कह सकता है । सामाजिक उपन्यास का यथार्थ सीमाबद्ध है, ऐतिहासिक उपन्यास का यथार्थ कल्पना का सहयोग पाने के लिए अधिक स्वतंत्र है । तभी यशपाल कह पाए थे - यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना है ।"[2]

उपन्यासकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के सामने कुछ रखना चाहता है या किसी वस्तु की इच्छा रखता है तो वह कल्पना

1· रामशोभित प्रसाद सिंह - हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल,पृ॰258.
2· रघुवीर चौधरी - इतिहास-रस, पृ॰-4.

द्वारा ही पूरी होती है बिना कल्पना के तो कृति की रचना असम्भव है । एक स्थान पर फार्स्टर्स ने कहा है कि - "कल्पना की शक्ति सृष्टि के प्रत्येक कोने में प्रवेश करती है किन्तु इस पर नियन्त्रण रखने वाली शक्तियाँ वे नक्षत्र हैं जो स्वर्ग के मस्तिष्क हैं और अपरिवर्तनशील विधि की सेना है, अथने रह जाते है । इस प्रकार के उपन्यासों में एक तेज वायु होती है जो उनकी शक्ति और आकर्षण का रहस्य है ।"[1] अर्थात उन्होंने कल्पना का महत्व बताते हुए कहा कि कल्पना ही ऐसी शक्ति है जो कहीं भी प्रवेश करने में समर्थ हो जाती है परन्तु उस पर नियन्त्रण रखना भी आवश्यक है ।

इसी तरह कल्पना के बिना उपन्यास यथार्थ का चित्रण करने में असमर्थ रहता है । कल्पना ही ऐसी शक्ति है जो उपन्यासकार को नये-नये ढंग से सोचने का अवसर देती है और फिर उपन्यासकार अपने पात्रों घटनाओं के यथार्थ को अपनी कृति में चित्रित करने में सफल होता है । ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता का रहस्य यथार्थ की घटनाओं में कल्पना का सहज प्रयोग होता है । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ दोनों का सुन्दर मिश्रण करके उपन्यास को रोचकता प्रदान की । इस सन्दर्भ में "महारानी दुर्गावती" का एक उदाहरण देखा जा सकता है - "दूर के पहाड़ सोते हुये दिखलाऊ और अपना कालंग्जर जागता हुआ सा । दुर्गामाता का चित्र अ हा हा हा । अष्ट भुजा मूर्ति के नीचे महिषासुर कटा पड़ा है, अत्यन्त सुन्दर मुखवाली मूर्ति के होठों पर मुस्कान है और आंखें ध्यान मग्न और हमारी राजकुमारी दुर्गावती उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी है । उन्हीं से तो पाया है आपने अपना

---

1. The Novel of E.M. Foster by James Mccankey P.46

नाम । और शक्ति भरी सुन्दरता ।"[1] इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि दुर्गावती की तुलना देवी से करने की कल्पना करते हुये वर्माजी उसके यथार्थ जीवन की झलक दिखाने का प्रयत्न करते हैं । वैसे ही "विराटा की पदमिनी" उपन्यास में लोचन सिंह का व्यक्तित्व भी वास्तविकता लिये हुये जान पड़ता है । "विराटा की पदमिनी" में लेखक ने परिचय में लिखा है कि - "लोचनसिंह बहुत ही उदण्ड और लड़ाकू प्रकृति का था ।"[2] अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जो कल्पना होने के साथ यथार्थ का आभास दिला देते हैं । जैसे "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास में उनके जीवन के यथार्थ रूप का वर्णन कल्पना के मिश्रण से अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है । रानी स्वराज्य के लिए लड़ी, इसी वाक्य के आधार पर वर्माजी ने रानी के समस्त जीवन की उन घटनाओं, पात्रों को लेकर अपने उपन्यास में जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है । शक्तिमान नारी ने युद्ध का संचालन किस तरह से किया व अंग्रेजों से युद्ध करने का वर्णन तथा अंग्रेजों के प्रति रानी के मन में किस प्रकार की भावनाएं थीं और अंग्रेजों द्वारा झांसी के हड़प लिये जाने पर जन-सामान्य की प्रतिक्रिया आदि का बड़ा ही यथार्थ और स्वाभाविक वर्णन वर्माजी ने किया है । काल्पनिक यथार्थ का उदाहरण वर्माजी के अनुसार - "एलिस मालकम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं इन लोगों ने पूरनचन्द बंगाली बाबू को कलकत्ते भेजा है । वह बहुत अंग्रेजी पढ़ा है लाट से स्वयं मिलेगा और हमारी बात को समझायेगा क्या कम्पनी सरकार का लाट हमारे इतने बड़े सन्धि-पत्र को समूचा निगल जायगा ।"[3]

1· वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ·--17.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पदमिनी, पृ·--2.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·--139.

झांसी में ये घटनायें हुई थीं उसी को विस्तार देकर कल्पना के माध्यम से वर्माजी अपने उपन्यास में सफलता से प्रस्तुत किया है ।

"झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास की प्रेम कथाओं की रचना में वर्माजी ने कल्पना का सहारा लिया है । मोतीबाई और खुदाबख्श का प्रेम, जुही और तात्या टोपे का प्रेम, रघुनाथ और सुन्दर का प्रेम आदि वर्माजी ने इन सभी पात्रों के प्रेम का वर्णन अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा करके उनमें यथार्थ की सजीवता का समावेश करने में उनको सफलता मिली है । समाज में घटित होने वाली प्रेम कथा इस उपन्यास के पात्रों में देखी जाती है । आदर्श प्रेम का उदाहरण है नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन का त्यागमयी प्रेम । राजा व समाज को मान्य न होते हुये भी वर्माजी ने, उपन्यास में आदर्श को बनाये रखने के लिए दोनों के प्रेम का सही निर्वाह किया है । ऐसा ही वर्णन "मृगनयनी" उपन्यास में लाखी और अटल के प्रेम में देखा जा सकता है । यही वर्माजी की कल्पना शक्ति का चमत्कार है । क्योंकि उस समय अन्तर्जातीय विवाह करना सोच भी नहीं सकते थे । परन्तु वर्माजी ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करके उस समय की रूढ़ परम्पराओं का विरोध किया तथा अपने पात्रों की शादी कराने का साहस किया ।

"कचनार", "मृगनयनी", "विराटा की पदमिनी", "गढ़ कुण्डार" उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ का मिला-जुला चित्रण है । इन उपन्यासों में वर्माजी ने कहां तक कल्पना को जोड़ा है इस विषय में डॉ॰ चन्द्रकान्त गर्जे लिखते हैं कि - "वर्माजी के उपन्यासों में कल्पना का प्रयोग वहीं तक देखा जा सकता है जहाँ तक की ऐतिहासिक सत्य की हत्या न हो ।"[1]

---

1. चन्द्रकान्त गर्जे - हिन्दी-मराठी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-199.

उपन्यासों में कल्पना के माध्यम से चरित्रों का निर्माण करने की कला में वर्मा जी चतुर थे इसी से माधव जी कल्पना के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करते हुये कहते हैं - "बादशाह की गाँठ में रुपया न था, परन्तु शिहब के पास बाप का करोड़ों रुपया था । वह उसे पानी की तरह बहा रहा था । बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति पर न्योछावर नहीं था, और न सफदरजंग से भविष्य बनाना था । वह जानता था कि सफदरजंग को साफ कर देने के बाद फिर दिल्ली की पूरी शक्ति और शान को अधिकृत करने में कोई बाधा न रहेगी और कुल खर्च किया हुआ रुपया ब्याज त्याग के साथ जल्दी लौट आयेगा ।"[1] उक्त वर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है कि यह कल्पना न होकर ऐतिहासिक यथार्थ की झलक दिखाई देती है । लेखक ने माधव जी को कल्पनाशील बनाकर भी सत्य के समीप रखा है ।

रानी लक्ष्मीबाई जो स्वराज्य की कल्पना करती हैं इससे रानी को आत्म विश्वासी और भविष्य दृष्टा कहना ही उचित जान पड़ता है । रानी की यथार्थ रूप में कल्पना करना ही लेखक की सफलता है । रानी एक स्थान पर कहती हैं - "स्वराज्य की स्थापना में कितने खप गये, यह आवश्यक नहीं है स्वराज्य की स्थापना हम अपने जीवनकाल में ही देख लें । सीढ़ी के डण्डे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुँच पाते । एक ही त्याग, एक ही मरण से स्वराज्य नहीं मिलता है । हमको केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पर नहीं ।" इसी से रानी कहती है "यदि अकेले ही स्वराज्य की लड़ाई लड़नी पड़े तो लड़ा जायेगा एक युद्ध और । एक जन्म से ही कार्य पूरीतौर पर सम्पन्न नहीं होता

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - माधवजी सिंधिया, पृ.-49.

है ।"[1] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि रानी, माधव जी, दुर्गावती आदि ने जो कल्पना की थी वो अन्तत: साकार हुई । कल्पना के माध्यम से ही पात्रों व घटनाओं का चित्रण रोचक लगने लगता है । डा॰ शोभित प्रसाद के अनुसार - "उपन्यास में सर्जनात्मकता का तत्व उपन्यासकार की कल्पना शक्ति से समाविष्ठ होता है । इसी से उसकी रचना आकर्षक और मनोरंजक होती है । इसकी दृष्टि से वर्माजी सर्वश्रेष्ट कहे जा सकते है ।"[2] कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्मा जी ने अपने सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से इतिहास से कुछ पृथक पात्रों की सृष्टि भी प्रस्तुत की है जैसे - "गन्ना और उम्दा बेगम के सौहार्दभाव के निरूपण तथा गन्ना के गुनीसिंह बनकर माधवजी के साथ "खासकलम" के रूप में रहना आदि में ।"[3] इन पात्रों को वर्मा जी ने अपनी कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया है । यह वर्णन इतिहास में नहीं मिलता है । लेकिन इन पात्रों के बारे में पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे इनका वर्णन इतिहास में हो ।/ वर्माजी लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में स्वप्न देखते है कि - "मैं जब बोर्डिंग हाउस के जीवन में था, एक रात स्वप्न देखा कि हाकी ग्राउण्ड पर युद्ध हो रहा है और मैं रानी की तरफ से "स्वराज्य के लिये लड़ता हुआ घायल हो गया, तब जागने पर बड़ा अचम्भा हुआ । क्योंकि खेल में उस दिन हाकी का डण्डा भी नहीं खाया था ।"[4] इस स्वप्न के बाद वर्माजी ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई उपन्यास लिख कर अपनी कल्पना को साकार रूप दिया । और यही उपन्यास उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहलाया ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ॰-395.
2· डा॰ रामशोभित प्रसाद - हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, पृ॰-259.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ॰-4.
4· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ॰-139.

§2§ उपन्यासों में यथार्थ का स्वरूप

डॉ॰ त्रिभुवन सिंह यथार्थ को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं - र्थ से हमारा तात्पर्य केवल व्यक्त पदार्थों अथवा बाह्य पदार्थों है। व्यक्त सत्य के अतिरिक्त किसी अन्य पूर्ण एवं अनन्त सत्ता ल्पना यथार्थ नहीं है। आज की कल्पित वस्तु कल यथार्थ का रण कर सकती है।"[1] इस तरह की कल्पना माधव जी सिन्धिया, की रान, तात्या टोपे आदि लोगों ने की थीं कि "स्वराज्य" गों को मिलना चाहिये। अंग्रेजों को देश से निकालना हमारा उद्देश्य है और स्वराज्य की स्थापना करना मुख्य मुद्दा। इससे हो जाता है कि "स्वराज्य" की कल्पना उन लोगों ने की थी, ज यथार्थ रूप में परिणित हो गई। साहित्यकार की विभिन्न-न्न मनोदशाएं होती हैं जिनमें वह अपने साहित्य के लिए आस-पास ी हुई वस्तु जगत सम्बन्धी सामग्रियों में से चुनाव करता है। लेखक को यथार्थवादी दृष्टकोण को अपनाना अनिवार्य होता है। रांगेय राघव के अनुसार - "साहित्य का सत्य कल्पना को बिल्कुल नहीं छोड़ देता, वह यथार्थ के आधार पर जितना ही दृढ़ होता है उतना ही गहराइयों तक पहुँचता है।"[2] "सोती आग" उपन्यास में इसका सजीव चित्रण देखने को मिलता है। दिल्ली में हुऐ जातीय दंगों का यथार्थ चित्रण करते हुए वर्माजी लिखते हैं - "जब दिमाग फिर जाते हैं तब मुसलमानों को खुदा की जगह का और हिन्दुओं को भगवान के स्थल का कोई स्मरण नहीं रहता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और सन्तुलन

1• डॉ॰ त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ॰-70.
2• डॉ॰ रांगेय राघव - आलोचना, 1952.

नष्ट हो जाता है ।"[1] यहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी द्वन्द्व को वर्माजी ने इस तरह से चित्रित किया मानो लेखक स्वयं वहीं पर मौजूद हो । "गढ़-कुण्डार" उपन्यास में खंगारों एवं बुन्देलों का आपसी संघर्ष का चित्रण भी यथार्थ रूप से बन पड़ा है । इस प्रकार के यथार्थ के चित्रण के सम्बन्ध को लेकर साहित्यकारों पर एक लेख लिखा गया था - "साहित्य में वह सभी यथार्थ है जिसके पीछे साहित्यकार की अपनी अनुभूति है और जिसे वह दूसरों को अनुभूत करा सकता है । मानव अनुभूति के विषय असीम और असत्य हैं । इनकी सीमा निर्धारण का प्रयत्न कोरी विडम्बना ही होगी ।"[2] क्योंकि एक वस्तु किसी व्यक्ति के लिए कल्पना की वस्तु है, वही दूसरे व्यक्ति के लिए यथार्थ भी हो सकती है । हम समाज में यथार्थ इसलिए ढूंढते हैं कि हमारा विकास हो सके । गोर्की का विश्वास था कि - "निराशा और दासता के युगों को पार करते हुए, शोषक वर्ग द्वारा पैदा की गयी परिस्थितियों से लोहा लेते हुए यदि जनता लोक-साहित्य और कला की श्रेष्ठ परम्परा को आगे बढ़ा सकी और उसमें आश्चर्य जनक गहराई, कलात्मक रूप और ओज ला सकी तो इसका मुख्य कारण यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रौढ़ हुई शक्तियां । सत्य का अंश होने पर ही लोक साहित्य चिरकाल तक जीवन्त रहता है । परन्तु केवल यथार्थ ही साहित्य में रहेगा तो वह साहित्य-साहित्य न रहकर एक संग्रह-पेटिका बन कर रह जायेगा ।"

उपन्यासकार अपने उपन्यास की रचना करता है । वह अपने जीवन व भौतिक तत्वों के महत्व को बताते हुये समाज के लोगों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता हुआ अपने भावों का आदान-प्रदान करने में

1• वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ•-94.
2• कल्पना सम्पादकीय - अक्टूबर, 1951, पृ•-743.

सफल होता है । लेखक की रचना आस-पास के लोगों के लिए ही होती है, अत: वह सत्य, कल्पना, यथार्थ के मिले-जुले रूप को लेकर रचना करता है । लेखक का सम्बन्ध कुछ हद तक सत्य से होना चाहिये जिससे रचना में यथार्थ की झलक हो । वर्माजी माधव जी सिन्धिया में उस युग का यथार्थ बताते हुये लिखते हैं - "उस युग में जिसके लिये कहा जाता है कि मराठे और जाट हल की नोक, सिक्ख तलवार की धार से और दिल्ली के सरदार बोतल की छलक से इतिहास लिख रहे थे । और अंग्रेज उस समय क्या थे ? क्लाइव के विविध रूपों के समन्वय-व्यवसाय सिपाहीगीरी, भेड़ की खाल उधेड़ने वाली राजनीतिज्ञता, बेईमानी शूरता, धूर्तता ।"[1] उक्त कथन को पढ़कर जान सकते हैं कि उस युग की सामाजिक, राजनीतिक दशा कैसी थी तथा उस समय समाज में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं उसी का वर्णन लेखक ने बड़ी बारीकी से किया है । "झांसी की रानी" उपन्यास में तो वर्माजी ने पूर्ण रूप से यथार्थ का प्रयोग करने का प्रयत्न किया । जैसे अंग्रेजों ने किस प्रकार से भारतीयों पर अत्याचार किया और फिर सभी राज्यों को अपनी कूटनीति से अपने आधीन कर लिया ।

......

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिन्धिया, पृ०-6.

5. ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना व यथार्थ एक दूसरे के पूरक है

कल्पना यथार्थ की जमीन पर ही पैदा होती है, फलती-फूलती है । यथार्थ के बिना कल्पना मुर्दा के समान है और कल्पना के बिना ठोस यथार्थ सुरूचि सम्पन्न नहीं । मात्र यथार्थ इतिहास बन सकता है साहित्य नहीं । कल्पना व यथार्थ का सुन्दर समन्वय वर्माजी "महारानी दुर्गावती" के उपन्यास में करते है - "राजकुमारी ने उसकी ओर तुरन्त मुंह फेरा । गोरे चेहरे पर लाली थिरक गई थी । बड़ी-बड़ी आंखों की लम्बी बरौनियाँ भौहों को छू रही थी बोली यह लो । सीधी बात है पक्षी पंखों के सहारे उड़कर पहुँच जाते हैं और तुम्हें नीचे से ऊपर पांव-पांव जाना पड़ता है ।"[1] इस वर्णन में वर्माजी ने कल्पना के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट की है इसी तरह यथार्थ "माधव जी सिंधिया" में और अधिक सजीव बन पड़ा है । "दिल्ली में कत्ले आम व रक्तपात का आरम्भ हुआ, तिलक छापे से हिन्दू तुरन्त पहिचान लिये जाते थे और समाप्त कर दिये जाते थे जो स्त्रियां कुएं या नदी में आत्मघात द्वारा अपनी रक्षा न कर सकीं उनके साथ बलात्कार किये गये फिर या तो वे गुलाम बना ली गई या मार दी गई । इसके बाद मुसलमानों के साथ भी वैसे ही अत्याचार किये गये । दिल्ली लाशों व खून व आग की लपटों और चीत्कारों से भर गई ।"[2] वर्माजी ने इतिहास की घटनाओं को यथार्थ रूप से चित्रित किया, लेकिन माधव जी के युग की छोटी से छोटी घटना §युद्ध, प्रेम प्रसंग आदि की§ अपनी कल्पना के द्वारा पाठकों के हृदय में सत्य व यथार्थ का आभास दिला देने की क्षमता रखती है । इसी सन्दर्भ में

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ०--11.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ०--103.

डॉ॰ रामशोभित प्रसाद लिखते हैं कि - "उपन्यास यथार्थ के आधार पर कल्पना की सृष्टि है जहाँ उपन्यासकार इतिहास को स्वीकार कर कल्पना द्वारा नीरसता और शुष्कता को दूर करने का प्रयत्न करता है वहाँ वह इतिहास में उपन्यास का समावेश कर ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि करता है ।"[1] उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों के समानान्तर कल्पनायें करता है और कल्पना के माध्यम से यथार्थ को चित्रित करता है । कोई भी कल्पना ऐसी नहीं हो सकती जो यथार्थ पर न टिकी हो । यथार्थ व कल्पना के सम्बन्ध को दर्शाते हुये डॉ॰ मक्खनलाल शर्मा लिखते हैं कि - "साहित्य का अटूट संबंध कल्पना से है । ऐतिहासिक उपन्यास का काम बिना कल्पना के चल ही नहीं सकता । कल्पना को जीवित बनाने वाली शक्ति संवेदना है । मनुष्य का सहज ज्ञान कल्पना को उभारता है । जिसकी सहायता से यथार्थ अनुभवलोक के अनुद्घाटित क्षेत्रों पर प्रकाश पड़ता है ।"[2] इसका उदाहरण "झाँसी की रानी" उपन्यास में वर्माजी ने लक्ष्मीबाई के माध्यम से 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य युद्ध की उस पृष्टभूमि एवं संघर्ष-गाथा को प्रस्तुत कर दिया है जो ऐतिहासिक है और उसके युद्ध का वर्णन कल्पना के द्वारा लेखक ने किया है । लक्ष्मीबाई को युद्ध के मैदान में लड़ाई लड़ने की कल्पनाशक्ति द्वारा इस तरह से वर्णन किया है कि वह कल्पना न रह कर यथार्थ हो गया है । इसी तरह यशपाल ने "झूठा सच" उपन्यास में तारा के व्यक्तित्व का वर्णन व समस्त दंगा पीड़ितों व उसी की शिकार स्त्रियों का चित्रण तारा के माध्यम से किया है । वर्माजी ने उपन्यास "सोती आग" में जातीय दंगों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया है । "कचनार" उपन्यास में कल्पना को माध्यम बनाकर कचनार का तथा वहाँ के अखाड़े का वर्णन किया गया है । इसी तरह

---

1. डॉ॰ रामशोभित प्रसाद - हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल, पृ-25.
2. डॉ॰ मक्खनलाल शर्मा - ऐतिहासिक और हिंदी उपन्यास, पृ॰-33.

"अहिल्याबाई" व "रामगढ़ की रानी" उपन्यासों में वर्माजी ने कल्पना और यथार्थ दोनों का प्रयोग खुल कर किया है । "गढ़-कुण्डार" में हेमवती के सौन्दर्य का वर्णन कल्पना पर आधारित था परन्तु वहाँ आपसी युद्ध का वर्णन इतिहास सम्मत होने से यथार्थ प्रतीत होता था ।

अत: कह सकते है कि जहाँ कल्पना है वहां कुछ यथार्थ का स्वरूप रहता ही है, जहाँ यथार्थ है वहां पर कल्पना का होना अनिवार्य है उपन्यास दोनों के मिश्रण द्वारा ही बनता है अगर कल्पना ही कल्पना होगी तो केवल हवाई यात्रा हो जायेगी, जैसे "गढ़-कुण्डार" उपन्यास में दिवाकर कल्पना करता है - "तारा को पास बिठा कर कहूँगा कि तुमको मैं देखता रहूँगा आजन्म, जन्म-जन्मान्तर अनन्तकाल तक । फिर सोचता है ज्योतिर्मयी तारा और अन्धकाराच्छादित दिवाकर । परन्तु प्रकाश मण्डल और बढ़ा । अन्धकार कम हुआ, उसका अन्त हुआ । तारा की ज्योति में दिवाकर तारामय हो गया ।"[1] इस वर्णन में केवल कल्पना ही कल्पना होने से यथार्थ का कुछ भी अंश नहीं समा सका । अत: हम कह सकते है कि जब तक कल्पना के साथ यथार्थ को न लिया जाय तो रचना केवल आकाश में उड़ने के समान हो जायेगी । जिससे आस-पास के लोगों के जीवन की यथार्थता से बहुत दूर चली जायेगी अत: रचना इतनी सजीव न बन पड़ेगी जैसी कि होनी चाहिए । जैसे अंग्रेजों के लिए तात्या टोपे यथार्थका चित्रण करते हुये कहते है - "बाई साहब ये लोग अपने स्वार्थ पर अचल रूप से डटे रहते हैं । जब तक स्वार्थ को ठोकर लगने का अन्देशा नहीं रहता तब तक हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर का सा वर्ताव करते है परन्तु जहाँ देखते हैं स्वार्थ को धक्का लग जावेगा तुरन्त पैतरा बदल देते है ।"[2] इससे यह कहा जा सकता है कि मनुष्य

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ.-492.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-137.

के जीवन में स्वार्थ, त्याग, मोह आदि गुण होते है लेकिन उसको साकार रूप में उपन्यासकार ही ला सकता है ।

उपन्यासकार अपनी कल्पना द्वारा और समाज में घटने वाली घटनाओं को मिलाकर कृति की रचना करता है, वहीं रचना समाज के लोगों में उच्च कोटि की कहलाती है । हम यह कह सकते हैं कि कल्पना और यथार्थ एक दूसरे के पूरक है । अकेली कल्पना भी समाज को कुछ नहीं दे सकती है और न यथार्थ ही । हाँ अगर दोनों मिलकर कृति में प्रस्तुत हों तभी रचना महत्व की बन सकती है और पढ़ने में रुचि उत्पन्न कर सकती है । अगर कृति में यथार्थ ही यथार्थ हो तो वह इतिहास बनकर रह जाता है ।

- 0 -

चतुर्थ अध्याय

1· वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ

आधुनिक युग में उपन्यास ही वह विधा है जो समाज में होने वाले कार्यकलापों का वृहत्तर फलक प्रस्तुत करता है । सामाजिक उपन्यासों में समाज के गठन,समाज व्यवस्था, सामाजिक समस्याओं के पारस्परिक घात-प्रतिघातों एवं सामाजिक मूल्यों का चित्रण होता है । वर्माजी सामाजिक उपन्यासों के लिखने के प्रयोजन के बारे में कहते है - "यदि हमारे अधिकांश उपन्यास लेखक किसी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से कमर कसकर पुस्तकें लिखे तो हिन्दी पढ़ने वालों का बड़ा उपकार होगा।"[1] अर्थात् लेखक शिक्षित लोगों के विचारों में समाज सुधार अथवा समाजोत्थान की भावनाओं को प्रबल करने का काम सामाजिक उपन्यास में कर सकता है । सामाजिक उपन्यासों में कथा व्यक्ति मात्र की न होकर परिवार,समाज अथवा देश की होती है तथा चरित्र मात्र केवल एक व्यक्ति के रूप में अभिव्यक्त न होकर समाज के किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तथा उसमें सामाजिकता का स्वर प्रमुख रूप में मुखरित होता है । इस सन्दर्भ में डॉ· हेमराज कौशिक लिखते है - "सामाजिक उपन्यास व्यक्ति सत्य को समष्टि सत्य में समाकर जीवन-मूल्यों को समाज के माध्यम से प्रतिष्ठित करते है ।"[2] उपन्यासकार उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत जीवन-दशा के

1· प्रभा - जून 1913, पृ·-158, वृन्दावनलाल वर्मा.
2· डॉ· हेमराज कौशिक - हिन्दी स्थिति एवं गति, पृ·-12.

प्रति असन्तोष जाग्रत कर उसे सुधारने एवं संवारने के लिए आवेग उत्पन्न करता है । अपने उपन्यासों के माध्यम से वह मानव-जीवन का यथार्थ-चित्रण करने का प्रयास करता है ।

उपन्यासकार समाज में यथार्थ रूप में होने वाली छोटी से छोटी घटना को भी आत्मसात् करके उसको नये रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है । प्रेमचन्द का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही साहित्य के लिए श्रेयस्कर है । इसलिए प्रेमचन्द अपने उपन्यासों के अन्त में जो समस्याओं का सुखद समाधान उपस्थित करते हैं वह पीड़ित मानवता के प्रति उनके मन की पीड़ा तथा उसका समाधान खोजने की आकुलता का परिचायक हो सकता है, किंतु यथार्थ की दृष्टि से हलका लगता है । लेकिन वर्माजी ने भी लिखा है - "यथार्थ है घोड़ा और आदर्श उसका सवार । सवार इस प्रकार घोड़े को चलावे कि घोड़ा अड़े नहीं और न दुलत्ती झाड़े, अच्छे निर्दिष्ट स्थान पर घोड़े को ले जाय खाई-खड्डों से बचाता हुआ कीचड़ और गन्दगी में घोड़े को डूबने से बचाता हुआ ले जाए । अकेला घोड़ा कुछ नहीं, अकेला सवार बेकार ।"[1] सामाजिक उपन्यास में यथार्थ और आदर्श दोनों होने आवश्यक हैं उसमें भी कुछ कल्पना का सहारा होने से हर एक घटना यथार्थ का रूप लेने लगती है । स्वयं प्रेमचन्द जी ने स्वीकार किया है - "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[2] वर्माजी के उपन्यासों में भी यथार्थ का साकार रूप उभर कर हमारे सामने आता है । उनके सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक संबंधों तथा परिस्थितियों का सुन्दर वर्णन मिलता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अपनी कहानी, पृ-209.
2. प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ.-72.

1. सामाजिक उपन्यास लिखते समय प्रेरणास्रोत

साहित्यकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी साहित्यिक रचना में विद्यमान होता है जिसमें उसकी अनुभूति कल्पना लिए यथार्थ रूप में उसके सामने खड़ी रहती है । इसलिए किसी साहित्यकार की कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व उसके क्रियात्मक जीवन, उसके मानसिक संकल्प-विकल्प तथा स्वभाव आदि का अध्ययन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है । वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों की चर्चा करने से पहले उनके जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालना अनिवार्य है जो कि उनकी औपन्यासिक कृतियों के प्रेरणास्रोत रहे हैं । वर्माजी के समय में धर्म,अर्थ,राजनीति, समाज आदि क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन हुये । वीर पुरुष के प्रति श्रद्धा भावना, साहित्य के प्रति प्रेम एवं देश के प्रति अटूट भक्ति उन्हें अपनी वंश-परम्परा से प्राप्त हुई थी । सच्चा साहित्यकार अपने समाज के संस्कार और परम्परा से प्रेरणा प्राप्त करके समाज को यथार्थ के दर्शन करवाता है । वर्माजी के साहित्य में अनेक महान् विभूतियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है । गांधीजी के बलिदान के बाद देश में औद्योगिक विकास और आर्थिक स्वाधीनता के लिए पंचवर्षीय तथा सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रारूप तैयार किये गए । लेकिन चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों से इन योजनाओं को सफल होने में अनेक बाधायें आईं । इसी सन्दर्भ में मोहिनी सहाय का विचार द्रष्टव्य है - "आज यह देश एक अजीब आर्थिक घुटन, राजनीतिक विघटन, सामाजिक विश्रृंखलता और सांस्कृतिक अंधानुकरण से पीड़ित है ।"[1]

---

1. मोहिनी सहाय - वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य पृ.-68.

वर्माजी के प्रपितामह दीवान आनन्द राव मराठों के दीवान और फौजदार थे । वे सन् 1857 ई॰ में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के झंडे के नीचे अंग्रेजों से लड़े थे । उनको कविता का शौक था । वर्माजी के चाचा बिहारीलाल साहित्य प्रेमी थे । वर्माजी को साहित्य रचना की ∠उन्हीं से प्रेरणा∠ मिली है । बिहारीलाल के अधूरे नाटक "राम वनवास" को वर्मा जी ने सन् 1905 में पूरा किया था । वर्माजी की दादी व परदादी अनेक कहानियां सुनाती थीं, जिसमें लक्ष्मीबाई के शौर्य की बातें बताया करती थीं । वर्माजी के जीवन मे अनेक ऐसी घटनाएं हैं जिनका प्रभाव उनके मन-मस्तिष्क पर पड़ा । साथ ही जिनसे वे प्रेरणा लेते रहे हैं, उनमें से कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं : एक बार ललितपुर में उन्होंने अपनी चाची द्वारा चाचा को फटकारते सुना - "तनखाह कम है तो ऊपर से क्यों नहीं लेते ? जंट साहब के अहलमद होते हुए भूखों क्यों मरते हो ?" इसके उत्तर में उनके चाचा ने कहा - मैं रिश्वत नहीं ले सकता । रिश्वत लेने और चोरी करने में कोई भेद नहीं ।"[1] यह बात वर्माजी के मन-मस्तिष्क में सदा के लिए बैठ गई । दूसरी बात का प्रभाव तब हुआ जब वर्माजी 1905 में अपने एक पंजाबी मित्र के यहां विवाह में सम्मिलित हुए थे । उस पंजाबी मित्र के यहां आए मेहमानों के मुंह से बुन्देलखंड और वहां की दरिद्रता की निन्दा सुनकर वर्माजी के कलेजे में छुरियां-सी छिंद गई । अपनी जन्म-भूमि और उसके निवासियों के सम्बन्ध में उनकी भावना को उससे गहरी ठेस लगी । उनके मन में उस समय ऐसी आग लगी जो कभी नहीं बुझी । उस दिन से उनका मन बुन्देलखंड की एक-एक कंकड़ी, एक-एक बूंद, एक-एक पत्ती और कली में रमने लगा ।

1॰ अपनी कहानी - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰-13.

वर्माजी ने जो भी ऐतिहासिक व सामाजिक उपन्यास लिखे उसमें बुन्देलखण्ड को ही माध्यम बनाया । बुन्देलखण्ड में दरिद्रता व्याप्त थी फिर भी वहाँ के लोगों में उत्साह विद्यमान था । वर्माजी के उपन्यासों में उस उत्साह की झलक दिखाई देती है । वहाँ के लोग मस्ती में फाग़ और राघरे गाते हैं । झीलों, नदियों और नालों के किनारे नाचते हैं और नाचते-नाचते कल्पना की रंगीन दुनिया में आत्म-विस्मृत हो जाते हैं । उनके उपन्यास पढ़ते समय बुन्देलखण्ड से मोह उत्पन्न होने लगता है । वर्माजी को खेती-बाड़ी का भी शौक था । इसी कारण वे अपने उपन्यासों में इसकी चर्चा करने से नहीं चूकते थे । "अमरबेल" व "उदय-किरण" उपन्यास सहकारी समिति की उपयोगिता को लेकर लिखे गये हैं । ऐसी अनेक घटनायें उनके जीवन की प्रेरणा बन कर उपन्यासों के माध्यम से सामने आई हैं । डॉ॰ हेमराज कौशिक के मतानुसार - "साहित्यकार की निजीशक्ति साहित्यकार की अनुभूति, उस अनुभूति की यथार्थता और गहराई में होती है । साहित्य में अनुभूति जितनी यथार्थ और गहरी होगी जीवन की वास्तविकता को लेखक उतनी विविधता और समग्रता में प्रस्तुत करेगा, उसका साहित्य सृजन उतना ही उत्कृष्ट होगा । जब हम उपन्यासों के सन्दर्भ में अनुभव की यथार्थता की बात करते हैं तो उसका तात्पर्य होता है कि समाज के अनुभवों को विचारों के माध्यम से इस प्रकार सम्प्रेषित करे कि वह पाठक की अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर प्रामाणिक प्रतीत हो । वर्माजी समाज में होने वाली सभी घटनाओं को देखकर सुनकर एवं पढ़कर पूरी सच्चाई के साथ अपने उपन्यासों की रचना करने में सफल हुए हैं ।

---

1. डा॰ हेमराज कौशिक - हिन्दी उपन्यास स्थिति एवं गति, पृ॰-100.

वर्माजी के उपन्यासों में सामाजिक समस्या यथार्थ के धरातल को छूती है । अपने सभी सामाजिक उपन्यासों में समाज में घटने वाली घटनाओं को उजागर करके वे समाधान के स्तर तक पहुँचाने में कुछ हद तक सफल हुये हैं । लेकिन जो समस्या उस समय थी वह वर्तमान में भी देखी जाती है । जैसे अस्पृश्यों को घृणा की दृष्टि से देखना आदि । विभिन्न जातियों में आज भी भेदभाव वर्तमान है । अपवाद रूप में अन्तर्जातीय विवाह हो रहे हैं । लेकिन आज भी अन्तर्जातीय विवाह होना अपराध या अपमान समझा जाता है । वर्माजी ने "संगम" उपन्यास में ऐसी स्थिति का वर्णन विस्तार से किया है । दहेज-प्रथा से होने वाले दुष्परिणाम "लगन" उपन्यास में देखे जा सकते हैं । दहेज-प्रथा आज भी आग के समान चारों तरफ फैली हुई है । जिसका परिणाम है हजारों युवतियों का बलिदान । "लगन" उपन्यास में वर्माजी ने दिखाया है कि दहेज न देने के कारण शादी होने पर भी दुल्हन को विदा न करवाया । परन्तु रामा व देवीसिंह ने मिल कर अपने माता-पिता को झुका दिया । अगर सभी नवयुवक व युवतियां दहेज के विरूद्ध आगे आकर उसका सामना करें तो इस समस्या का समाप्त होना सम्भव हो सकेगा ।

जाति-परिवर्तन होने से समाज उस व्यक्ति को क्या-क्या दंड देता है तथा जात्याभिमान से ऊँच-नीच की भावना रखने वाले समाज के व्यक्तियों पर वर्माजी ने अपना उपन्यास "प्रत्यागत" लिखा है । "कुण्डली चक्र" में कुण्डलियों के मिलान में विश्वास करने वाले लोगों पर लेखक ने व्यंग्य किया है । माता-पिता कुण्डलियों के चक्कर में अपने बच्चों का भविष्य कभी-कभी अन्धकार में डाल देते हैं । कुण्डली चक्र में रतन ऐसी ही पात्रा है । पूना के साथ ऐसा होने वाला था लेकिन उसकी बहादुरी व साहस के आगे सभी को हारना पड़ा । वर्तमान में भी बहुत से लोग इसके शिकार होते हैं । पढ़ने-लिखने के बावजूद कुण्डलियों

में विश्वास करके अपने बच्चों का भविष्य खराब करने के जिम्मेवार माता-पिता ही होते हैं ।

"प्रेम की भेंट" उपन्यास में वृन्दावनलाल वर्मा ने यथार्थवादी प्रवृत्ति का परिचय देते हुए धीरज और सरस्वती के असफल प्रेम की परिणति विवाह में न दिखाकर उनका अन्त दुःखात्मक दिखाया है । प्रेम की असफलता का चित्रण वर्माजी ने इस ढंग से किया है कि उपन्यास पढ़ने वालों के मन में प्रेमीजनों के प्रति संवेदना की भावना स्वतः उमड़ने लगती है । विधवा-विवाह की समस्या को भी वर्माजी ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया है और विधवा विवाह पर बल देते हुये आदर्श की स्थापना करने का प्रयत्न किया है । "अमरबेल" स्वातन्त्र्योत्तर भूमि-सुधार के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है । वर्माजी ने ग्राम जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियों पर प्रकाश डालने का अत्यधिक प्रयत्न किया है । शहर की लड़की अंजना को धन-लोलुप एवं भ्रष्ट दिखाकर वर्माजी ने वर्तमान युग के बारे में यथार्थवादी दृष्टि अपनाई है । जिस तरह अंजना धनार्जन के मोह में पड़कर अवैधरूप से अफीम एकत्र करने और उसका व्यापार करने का भयानक कार्य करती है उसी प्रकार आज सारे देश में अनेक ऐसी स्त्रियां हैं जो ऐसे कार्य में अपने जीवन को बरबाद करने पर तुली है । आज यह धन्धा गांव शहर में न रह कर सारे विश्व तक फैल गया । इसका शिकार सारा युवावर्ग हो रहा है । वर्माजी इस दोष को मिटाने का पूरा प्रयत्न करते हुये आदर्श की स्थापना करने की पूर्ण कोशिश करते हैं । आज भी अनेक लेखक इसी कार्य में लगे हैं । लेकिन समस्या मिटने की बजाय और बढ़ती ही जा रही है ।

"उदय-किरण" उपन्यास में ग्रामोत्थान में होने वाली अड़चने व जमींदारी उन्मूलन से लोगों में क्या भावनायें जाग्रत हुई इसे दर्शाया

गया है । लोगों के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने में इस उपन्यास में कई योजनाएं बनाई गई हैं । इस सन्दर्भ में डॉ॰ विवेकीराय लिखते हैं - "जमींदारी उन्मूलन, पंचवर्षीय योजनायें, सामुदायिक विकास-योजनाएँ, कुटीर उद्योग, पंचायत चकबन्दी, भूदान, सहकारी खेती और कृषि-विकास आदि के विशाल प्रभावशाली आर्थिक कार्य-क्रम नव-निर्माण की वांछित दिशा में उसे अग्रसर करने के लिए कार्यान्वित हुए ।"[1] विवेकी राय जी का तात्पर्य है कि उस समय लोगों में व सरकार में आर्थिक उन्नति के प्रति जागरूकता आई । कुछेक लोग ऐसे थे जो इन योजनाओं को कार्यान्वित होने में बाधा डालते रहते थे । "आहत" उपन्यास में जमींदारी व्यवस्था के न रहने पर जमींदारों की स्थिति एवं सामान्य-जन की धारणाओं का यथार्थ रूप में वर्णन करने की पूरी कोशिश लेखक ने की । "अचल मेरा कोई" उपन्यास में लेखक ने पुरुषों के समान अधिकारों की मांग करने वाली नारियों को समाज के सामने अपने मन की इच्छा पूरी नहीं होने का मानसिक द्वन्द्व दिखाया है । लेखक ने गांव में रहने वाले लोगों की मानसिक स्थिति का सजीव वर्णन किया है । विधवा विवाह करवा कर वर्माजी ने आदर्श का परिचय दिया है । समाज को इस बात के लिए जाग्रत करने की पूरी-पूरी कोशिश की कि इस युग में रूढ़ियों को त्याग कर प्रगति की ओर अग्रसर होना ही जीवन की सच्ची सफलता है ।

"सोना" उपन्यास में अनमेल विवाह से उत्पन्न समस्या उठाई गई है, जिसके कारण युवक-युवतियों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है । सोना भी ऐसी ही युवती है जो अपनी उम्र से ज्यादा बड़े

---

1. विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन, पृ॰-178.

राजा के साथ शादी होने से मन की खुशी प्राप्त नहीं कर पाती है । यह उपन्यास लोक-कथा पर आधारित होते हुए भी समाज में फैली अनेक समस्याओं को उजागर करता है । श्रम की महत्ता पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।इसका कारण यह था कि उस समय गांधी जी का युग था । गांधी जी की विचारधारा चारों ओर फैली होने से उस समय के लेखक अपने उपन्यासों में कल्पना की बजाय यथार्थ को ज्यादा स्थान देते थे । वर्माजी के उपन्यासों में भी पात्रों का चरित्र यथार्थ के साथ आदर्शोन्मुखी ज्यादा है । वर्माजी के उपन्यासों को पढ़कर यह कहा जा सकता है कि उनके उपन्यासों में समाज की समस्याओं और उसमें होने वाले परिवर्तनों की यथार्थ परिकल्पना करके उन्हें समाज के सामने लाने का सफलता पूर्वक प्रयास किया गया है । जिससे समाज में धार्मिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ को साकार रूप में दिखाया जा सके यही उसकी सार्थकता भी है ।

(क) कल्पना की यथार्थता

वर्माजी ने यथार्थ के साथ कल्पना का भी सहारा अपने सामाजिक उपन्यासों में लिया है । कल्पना एक मानसिक प्रक्रिया है । जिसके द्वारा मनुष्य अपनी मानसिक स्थिति को एक भिन्न रूप में देखने की चेष्टा करता है । समाज में होने वाली घटनाओं को अपनी कल्पना शक्ति में उतार कर उस घटना का वर्णन समाज के सामने करता है । सामाजिक उपन्यास को लिखते समय वर्माजी ने कल्पना के साथ यथार्थ को महत्वपूर्ण स्थान दिया है । समाज में फैली विषमताओं का यथार्थ चित्रण वर्माजी ने अपने सामाजिक उपन्यासों में किया है । हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार यह सत्य है कि साहित्य व्यक्ति विशेष की प्रतिभा द्वारा रचित होता है किन्तु और भी अधिक सत्य यह है कि

प्रतिभा सामाजिक प्रगति की उपज है । भूत-प्रेत और ग्रह नक्षत्रों के अंधकार में भटकने वाले समुदायों में आइन्स्टाइन पैदा नहीं हो सकते ।"[1] द्विवेदी जी के अनुसार सामान्य मनुष्य समाज के बारे में या अपने मत को लोगों के सामने रखकर उसका हल निकालता है । ये सभी गुण वर्माजी के अन्दर थे । मानव जीवन की विविध समस्याओं और जीवन के स्थायी मूल्यों का चित्रांकन वर्माजी के उपन्यासों में हुआ है । इन सभी समस्याओं का यथार्थ रूप से चित्रण करते हुए आदर्श के प्रति मोह रखना भी वर्माजी का उद्देश्य रहा है । "लगन" और "संगम" उपन्यासों में दहेज प्रथा के दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है । उन्होंने 'कुण्डली चक्र,' 'प्रेम की भेंट,' 'प्रत्यागत,' 'अचल मेरा कोई,' उपन्यासों में समाज के खोखलेपन, मिथ्या आदर्शों और मानव की हृदयगत संकीर्णताओं पर मार्मिक व्यंग्य किया है ।

वर्माजी ने पहला सामाजिक उपन्यास "लगन" लिखा । इसमें कल्पना के माध्यम से यथार्थ को दर्शाने की कोशिश की गई है । विवाह के अवसर पर दहेज प्रथा का घिनौना दृश्य प्रस्तुत किया गया है । दहेज न मिलने पर दूल्हा-दुल्हन की स्थिति बड़ी शोचनीय हो जाती है । दुल्हन रामा इसी परिस्थिति में गोते खा रही थी कि उसको दूसरा विवाह करना है या नहीं करना है । रामा के मन की स्थिति के बारे में डॉ॰ ज्ञान अस्थाना कहते हैं - "रामा को लेखक ने भारतीय नारी के आदर्शरूप में चित्रित किया है जो जीवन में एक ही बार और केवल एक ही व्यक्ति का वरण करती है ।"[2] अर्थात् भारतीय नारी का एक बार विवाह करना आदर्श का प्रतीक माना जाता है ।

1· हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क, पृ॰-273.
2· डॉ॰ ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्यायें, पृ॰-146.

लेकिन रामा अपने विवाह सम्बन्ध को लेकर अपने घर पर कुछ नहीं कह पाती और न उसका पति देवी सिंह अपने पिता को कुछ कह पाता है। अतः रामा अपनी विवशता प्रगट करते हुये अपनी सहेली सुभद्रा से कहती है - "मेरे लिये चाहने न चाहने का सवाल ही नहीं। घर के लोग जो कुछ भी तय कर देंगे सिर के बल मानना पड़ेगा।"[1] कहने का तात्पर्य है कि रामा के इस कथन में समाज एवं घर-परिवार का परम्परावादी रूढ़िग्रस्त यथार्थ रूप सामने आया है। रामा का पति अपनी पत्नी को घर ले जाना चाहता है लेकिन पिता को दहेज न मिलने से पुत्र को दुःख उठाना पड़ रहा था। देवी सिंह अपनी पत्नी के सौन्दर्य के बारे में मन ही मन कल्पना करता है और अपने पिता व रामा के पिता को कोसता है। केवल लालच के कारण अपने बच्चों का जीवन नरक करने के लिए लेखक ने समाज के उन सभी लोगों को दोषी ठहराया है जो इसका विरोध न करके अपना मुंह बन्द रख कर उसका समर्थन करते हैं।

देवी सिंह बेतवा नदी पार करता हुआ सोचता है कि - "वह मुख, वह लावण्य, वह कोमलता, उसका क्या दोष? उसने क्या किया था जिसका दंड दिया जाने वाला है? क्या उसके जी में भी उसके हृदय के एक छोटे से कोने में भी मेरे लिए एक छोटा-सा स्थान होगा।"[2] इस तरह की कल्पना करता हुआ देवी सिंह बेतवा नदी को पार कर लेता है। इस कल्पना में सत्य का आभास मिलता है। इस तरह यथार्थ के धरातल पर कल्पना करता हुआ देवीसिंह सोचता है - "मेरी पत्नी है। मेरी विवाहिता है, मेरा उसके ऊपर अधिकार है। उसे कोई परित्यक्तता नहीं कह सकता। अब किसी और की नहीं हो

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - लगन, पृ०-32.
2. वही, पृ०-23.

सकती है ।"[1] देवीसिंह का यह सोचना सत्य है परन्तु वह मंडप में ही अपने विचारों को समाज के सामने रखता तो उसकी प्रसिद्धी अधिक होती । इसीलिए लेखक यह बताना चाह रहे हैं कि देवी सिंह के समान और लोग भी ऐसा सोचें तो नारी पर होने वाले अत्याचार कम हो जायेंगे । रामा और देवीसिंह के प्रयत्नों से दोनों परिवारों में प्रेम होता है इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखक इस तरह के लालच को मिटाने के लिए आज की पीढ़ी को आगे आने का संदेश देना चाहते हैं । क्योंकि आज के युग में भी दहेज संक्रामक रोग की तरह फैल रहा है और इस प्रथा की विभीषिकाओं का भयंकर प्रभाव नव-विवाहित युवतियों पर ही अधिक पड़ता है । आज के युग में नव-विवाहित युवतियों को दहेज न लाने के कारण जला दिया जाता है और तलाक एवं अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं । वर्माजी के समय भी इस प्रथा के विरोध में अनेक संस्थाएं सक्रिय रूप से कार्यरत थीं और आज भी अनेक सामाजिक संस्थाएं दहेज प्रथा को हटाने का कार्य कर रही हैं । वर्माजी ने इस उपन्यास में अनेक घटनाओं को कल्पना के माध्यम से दिखाया है । लेकिन रामा का पानी में कूदना और ससुराल चले जाना और देवीसिंह का रामा से मिलने के लिए बेतवा नदी को रोज पार कर बरौल जाना आदि घटनाएं तो यथार्थ है इसी में कल्पना का पुट देकर वर्माजी ने इस उपन्यास को रोचक बनाया है ।

"संगम" उपन्यास कल्पना प्रधान है, लेकिन इसमें भी जीवन का यथार्थ मुखरित है । अनेक घटनाओं का सजीव चित्रण इस उपन्यास में है लेकिन इसमें मुख्य समस्या विधवा विवाह एवं जाति-पांति के भेदभाव की है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - लगन, पृ.- 46.

इन समस्याओं पर अनेक लेखकों ने अपने-अपने उपन्यासों में समाधान भी दिये है जिनमें प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार आदि प्रमुख है । डा॰ मोहनलाल "रत्नाकर" के अनुसार "'संगम' उपन्यास में रूढ़िग्रस्त समाज को चुनौती देते हुए विधवा विवाह का सबल शब्दों में स्पष्ट रूप से समर्थन किया है और विधवा गंगा और आदर्शवादी रामचरण के विवाह के अवसर पर रूढ़िवादी समाज के प्रति उपेक्षा प्रकट कराई गई है ।"[1] यह वर्माजी की कल्पना की उपज है और यथार्थ रूप से समाज में ये घटनायें हुई थीं इसलिए कल्पना में भी यथार्थ की झलक मिलती है । लालमन डाकू की भांजी का धनीराम नाई के घर पालन-पोषण होता है, उसकी शादी ब्राह्मण के घर करना चाहते है लेकिन समाज के लोग उसको स्वीकृत नहीं करते क्योंकि यह नाई के घर में रहती है । बहुत प्रयत्न करने पर गरीब ब्राह्मण के यहाँ शादी होती है लेकिन शादी में ही दोनों पक्षों के बीच झगड़ा हो जाता है इसका परिणाम जानकी को अधिक भुगतना पड़ता है । विधवा गंगा को वर्माजी ने साहसी स्त्री होने का सौभाग्य दिया । जब लालमन डाकू व रामचरण लड़ रहे थे उस समय गंगा साहस करके रामचरण को बचाने के लिए उसके शरीर से चिपट जाती है । उस क्षण की याद करके रामचरण कल्पना करता है कि गंगा कैसी लगती थी इसी विचार में देखता है - "गंगा के दोनों हाथ पृथ्वी पर थे, छाती रामचरण के सिर पर थी और सिर एक ओर लटक कर डूबते हुए चन्द्रमा की ओर हो गया था । बालों की लट गालों पर फैल आई थी, आंखें मुंदी हुई थीं । बड़ी-बड़ी पलकों पर मन्द किरणें लिपट रही थीं । चेहरा मुरझा गया था । परन्तु इस समय उस अनाथ विधवा का सौन्दर्य चंन्द्रिका से होड़ लगा गया और चन्द्रमा क्षितिज के नीचे खिसक गया ।"[2]

---

1. मोहनलाल "रत्नाकर" - प्रेमचन्द-युग का हिंदी उपन्यास, पृ॰-208.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - संगम, पृ॰-275.

ऐसी कल्पना करके रामचरण को अत्यधिक प्रसन्नता हुई । रामचरण कायस्थ माता का पुत्र था व ब्राह्मण पिता का बेटा । ब्राह्मण वर्ण उस पर और सुखलाल पर व्यंग्यबाण छोड़ा करते थे । जातीयता के डर से सुखलाल अपने पुत्र को घर आने से मना करता है । लेकिन इस समाज की व्यवस्था से हताश होकर अन्त में सुखलाल राजा बेटी से कहते हैं - "मैं अब बिरादरी या किसी की रत्ती भर भी परवाह नहीं करता । दु:ख के समय यह बिरादरी किस कोने में छिप जाती है ... बिरादरी वाले हमें पहले से ही छोटे स्थान पर समझते हैं अब निकाल देंगे और क्या कर सकते हैं । तुम समझ लेना कि तुमने बिरादरी को खारिज किया ।"[1] सुखलाल ने यह बात विधवा गंगा और रामचरण के विवाह के समय कही थी । इस तरह की कल्पना करने पर समाज उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता । नन्दराम जैसे अक्खड़ लोगों का बुरा हाल हुआ क्योंकि समाज में रहकर छोटी-सी गलती के कारण किसी को जलील करना व बदले की भावना रखना ही उसके जीवन का अन्त होना होता है ।

वर्माजी ने सामाजिक यथार्थ की कल्पना बड़े सहज रूप में की है । "प्रेम की भेंट" उपन्यास में विधवा उजियारी का धीरज से प्रेम दिखाई देता है । लेखक ने इस उपन्यास में समाज से पुनर्विवाह की स्वीकृति दिलाने की चेष्टा की है । गंगा और उजियारी के प्रेम में भी फर्क है । गंगा प्रेम को पाने के लिए अपने को मिटा देना चाहती है लेकिन उजियारी सरस्वती को जहर देने में भी नहीं हिचकती है । "अंचल मेरा कोई" की विधवा निशा स्वतन्त्र प्रवृत्ति की होने के साथ समाज के कायदे कानून को समझती है फिर भी अचल से विवाह करने

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - संगम, पृ.-246.

के लिए मान जाती है । "प्रेम की भेंट" उपन्यास में दो सच्चे प्रेमियों की करूणाजनक प्रेम कहानी है । इसका अन्त अत्यन्त मर्मस्पर्शी हुआ है । वर्माजी ने आदर्श प्रेम की कल्पना की है । धीरज सरस्वती से प्रेम करता हुआ सोचता है - "प्राण देने को फिरता है और कोई उसे फूटी कौड़ी के मोल भी लेने को तैयार नहीं । एक ओर ऐसी उत्कृष्ट विह्वलता और दूसरी ओर महज उपेक्षा केवल अवहेलना । कौन ऐसा मूर्ख होगा जो अपनी लगन के उत्तर की इतने दिनों बाट जोहे ? और यदि उत्तर मिल भी गया तो चार युग खत्म होने के बाद । सो भी ऐसा कि उसको और भी पागल बना दे । और उत्तर देने वाला उससे भी बढ़कर पागल बन जाय । यह हुआ आदर्श प्रेम । विफल प्रेम एक हद तक संभव ।"[1] इस प्रकार की कल्पना करते हुये सरस्वती के अन्दर प्रेम खोजने की चेष्टा करता है । उस चेष्टा में सफल हो जाता है लेकिन देवदास के समान । विधवा उजियारी धीरज को पाना चाहती है परन्तु धीरज मन में सोचता है कि - "उजियारी क्यों मृगतृष्णा के पीछे पड़ी है ? मैं यहां काव्य रचना करने या सौंदर्य-पूजन के लिये नहीं आया हूँ । और यदि उसके लिये ही आया होता तो इस प्रतिमा की अर्चना तो कभी न करता ।"[2] धीरज के इस तरह के भाव मन में रखने पर और सरस्वती से प्रेम करने पर उजियारी दु:खी होती है । इसी कारण सरस्वती को अपने रास्ते से हटाने की कल्पना करती है । धीरज को पाने के लिए उजियारी विषपूर्ण खीर सरस्वती को खिलाना चाहती है लेकिन दुर्भाग्य से धीरज पहले ही खीर खाकर मृत्यु शय्या पर लेट जाता है । उजियारी यह देखकर घबरा जाती है और सोचती है कि मैंने तो धीरज को पाने के लिए सरस्वती को हटाने का

1· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रेम की भेंट, पृ·-26.
2· वही, पृ·-40.

प्रयत्न किया । हाय रे मेरा भाग्य अब धीरज नहीं मिल सकता । इसी सन्दर्भ में सियाराम शरण प्रसाद लिखते है - "प्रेम में संयमहीन मनुष्य अंधा होकर असावधानी कर बैठता है । हिंसक बन जाता है और जिसका दुष्परिणाम अंततोगत्वा सभी के लिए हानिकारक है ।"[1] उजियारी प्रेम की इस पवित्र स्थिति को नहीं अपना सकी । इसी से उसने इतना भयंकर पाप कर डाला ।

वर्माजी अपने उपन्यासों में प्रेम को आदर्श का रूप देने में सफल हुये है । डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में भी ऐसा ही त्यागमय, उज्ज्वल प्रेम का दिव्य रूप चित्रित है । शरत बाबू के प्रेम में भी विस्तार है लेकिन प्रेमचन्द और प्रसाद के प्रेम का रूप इस दृष्टि से विचारणीय है ।

"अचल मेरा कोई" उपन्यास में प्रेम के आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों में संघर्ष का वर्माजी ने स्वाभाविक रूप से वर्णन किया है । वर्माजी से सामाजिक दृष्टिकोण से नारी के परपुरूष के प्रति आकर्षण का परिणाम पत्नी की आत्म-हत्या के रूप में किया है क्योंकि कुन्ती ने अचल से प्रेम की कल्पना की जिसे वह यथार्थ रूप में परिणत नहीं कर सकती थी । अत: इसका परिणाम उसकी आत्महत्या के रूप में देखा गया । लेखक ने समाज में होने वाले अनमेल विवाह से क्या समस्याएं इस युग-जीवन में आती है उसका यथार्थ रूप से वर्णन किया है । इसी सन्दर्भ में डा॰ चन्द्रकांत बांदिवडेकर का मत है कि - "असल में सामाजिक रूप में अनमेल विवाह की समस्या का समाधान नारी की स्वतन्त्रता और आत्म निर्भरता है ।"[2] अर्थात् अगर नारी पढ़ी लिखी हो और नौकरी करती हो तो पुरूष के अधीन रहना कम पसन्द करेगी । पुरूष

1· सियाराम शरण प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा, पृ॰-39.

2· डा॰ चन्द्रकांत बांदिवडेकर - हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰-268.

के अत्याचारों का विरोध करती है । हालांकि वह समय राष्ट्रीय आन्दोलन का होने के साथ नारी जागरण का युग था । इसीलिए कुन्ती व निशा पढ़ी लिखी होने से उनके विचारों में नारी स्वतन्त्रता को लेकर स्वतन्त्र विचार थे । इसीलिए कुन्ती एक जगह कहती है अगर पति-पत्नी में न बने तो - "मैं तो यह समझती हूँ कि मनोमालिन्य असह्य हो जाय तब किसी भी दिन सवेरे उठकर एक व्यक्ति दूसरे से कह दे - बस बहुत हो चुका आगे हमारा-तुम्हारा मार्ग अलग-अलग रहेगा ।"[1] इस प्रकार कुन्ती की कल्पना अपनी जगह ठीक है परन्तु यह यथार्थ के समकक्ष नहीं है क्योंकि कल्पना करना सहज होता है किन्तु उसको व्यवहार में लाना कठिन । परिवार को अगर सुखी रखना है तो, वर्माजी ने लिखा है कि पति-पत्नी में यह गुण होने जरूरी है जैसे - "स्त्री और पुरुष में तब तक पारस्परिक प्रेम नहीं पनप सकता जब तक उनकी मनोवृत्तियों में सामंजस्य नहीं होगा, उनके विचारों में एकता नहीं होगी, उनमें एक-दूसरे के प्रति अपार विश्वास नहीं होगा ।"[2] वर्माजी की यह कल्पना सत्य है क्योंकि कुन्ती अचल से मिलने जाती है तो अपने पति सुधाकर से झूठ बोलती है इससे दुःखी होकर सुधाकर सोचता है - "मैं अपनी पत्नी पर ही शासन न कर पाया तो धिक्कार है, पर करूँगा सभ्य उपाय से ।"[3] इस कथन से यही स्पष्ट होता है कि वर्माजी नारी की स्वतन्त्रता तो चाहते हैं परन्तु मर्यादा में । लेखक बुआ के माध्यम से आधुनिक पढ़ी लिखी स्त्रियों की आलोचना करवाते है और उनके नाच-गान पर असन्तोष व्यक्त करते हैं । लेकिन वर्माजी यहां विधवा विवाह के समर्थन में अचल और निशा का विवाह करवा के आदर्श स्थापित करने में सफल रहे । सुधाकर से दहेज प्रथा का विरोध

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ.-63.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - उपन्यास और कला, पृ.-99.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ.-257.

करवा के बिना दहेज कुन्ती से शादी करके लेखक ने आज के नवयुवकों को संदेश देने का कार्य कुशलता से किया है ।

लेखक ने गांव के पंचम, गिरधारी, धोबन आदि का काल्पनिक वर्णन किया है लेकिन कुन्ती थानेदार के सम्मुख बंधे हुए ग्रामीण स्त्रियों और पुरुषों को खोल देती है और थानेदार के सम्मुख निर्भीक हो उन लोगों के बीच खड़ी हो जाती है । यह दृश्य यथार्थ बन पड़ा है । इसमें नारी की शक्ति का महत्व दिखाया गया है ।

"उदय-किरण" उपन्यास वर्माजी के द्वारा उन परिस्थितियों में लिखा गया था जब सरकार सहकारी समिति बनाने की योजना बना रही थी । लेकिन जागीरदार लोग उन समितियों में शामिल नहीं होना चाहते थे । अन्त में सभी गांवों के लोग जाग गये और सहकारी समिति के लाभों से अवगत हो गये तभी वर्माजी ने लिखा है - "देर आयद दुरूस्त आयद"- देर से आये, पर आ तो गये ठिकाने पर । और अब उजाला छा गया उनका आलस्य गया और स्फूर्ति आई । ... वह घड़ी जल्दी आने वाली है जब भ्रम और शंका के अन्धेरे को दूर करने वाली किरण का उदय अवश्य होगा ।"[1] अर्थात् वर्माजी कल्पना करते हैं कि हर गांव में सहकारी समितियां खोली जायें जो ऋण दे सकें उनकी कल्पना साकार हो जाने से आज ये समितियां तीस से ऊपर हैं । अपना काम सुचारु रूप से कर रही है । "उदय-किरण" उपन्यास में उदय ने इस योजना को लागू करवाने के लिए बहुत परिश्रम किया। एक जगह वह कहता है - "खेती की उपज बढ़ाने और गांव-गांव मुहल्ले के बढ़ते हुये झगड़े मिटाने के लिए सहकारी कामों के सिवाय और कोई उपाय नहीं दिखता, मैं अपना जीवन सहकारी कामों में लगा देना चाहता हूं ।"[2]

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - उदय किरण, पृ०- परिचय.
2. वही, पृ०-33.

लेखक अपने विचार उदय के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करते हैं - "ऐसा लगता है कि लेखक सरकार और सहकारिता के प्रचारक बन गये हों ।"[1] यह डा॰ सियाराम शरण प्रसाद का मत है । उनका मत कई दृष्टि से ठीक भी है क्योंकि वर्माजी ने इस उपन्यास में सहकारिता की योजना एवं प्रत्येक व्यक्ति में स्वावलम्बन की भावना भरने का सफलतापूर्वक प्रयत्न किया है । वर्माजी के अनुभव इसमें झलकते है । क्योंकि अपनी कल्पना की यथार्थता डूंगरसिंह द्वारा करवाते हुये कहते हैं - "मैं अपनी कमी-कमाई नई-पुरानी सब निजी खेती की भूमि समिति में लगाना चाहता हूँ और काम करने का प्रण करता हूँ । मेरे हाथ पैर किसी से कम बलिष्ठ नहीं हैं।"[2] इस तरह लेखक उपन्यास में एक आदर्श की स्थापना करने में सफल होते है । स्त्रियों को बन्दूक चलाना व शिक्षा ग्रहण करने की स्वतन्त्रता के पक्ष में जापान, अमेरिका के उदाहरण देकर गांव वालों के मन में अच्छा स्थान बनाने की पूरी कोशिश की गई है । परिश्रम और हिम्मत पर अधिक जोर दिया गया है । उन्होंने "सोना" उपन्यास में भी श्रम पर विशेष जोर दिया है ।

परिश्रम करने के लिए रूपा अपना घर द्वार तक छोड़ देती है । "सोना" उपन्यास लोक-कथा पर आधारित है इसमें वर्माजी कहते है कि - "सांझ हो गई थी । लोगों ने खाना-खाया और कुछ तो दिन भर के श्रम की थकावट के मारे जा सोये । कुछ अथाई पर आ बैठे । इधर तमाखू की चिलम सुलगी उधर सुरा-बेसुरा गाता हुआ गांव का कथक्कड़ आ पहुँचा । उसके आते ही लोगों में उल्लास छा गया । वह जब कभी सन्ध्या के उपरान्त अथाई पर आता था, लोगों को एकाध कहानी सुनाता था ।"[3] इन कहानियों - लोक-कथाओं में उपदेश रहता है ।

1· डॉ॰ सियारामशरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-58.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - उदय किरण, पृ॰-133
3· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ॰-1.

लेकिन नरेन्द्र कोहली ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है कि - "इस उद्दरण से प्रतीत होता है कि वे कथा को ही मुख्य मानते है तथा उनकी दृष्टि में उद्देश्य का महत्व नगण्य है ।"[1] नरेन्द्र कोहली की उक्ति से हम सहमत नहीं है क्योंकि वर्माजी के सभी उपन्यास के अन्दर कुछ न कुछ उपदेश, आदर्श, संदेश आदि रहता ही है । और "सोना" उपन्यास में श्रम की महत्ता को प्रधानता दी गई है ।

"सोना" उपन्यास की सोना हीरे, जवाहरात पहनने में विश्वास करती है इसी कारण बूढ़े राजा के साथ शादी करने के लिए तैयार हो जाती है और वह आंगन में झाडू लगाती हुई सोचती है - "अब तो मेरी शादी राजा से हो रही है वहाँ रानी बनकर रहूँगी । चारों ओर नौकर चाकरों की लाइन होगी । सोना-चाँदी से मैं ढ्क सी जाऊँगी ।"[2] इस तरह की कल्पना सोना करती रहती है अत: वह परिश्रम से पीछे हटना स्वीकार करती है । परन्तु उसकी छोटी बहन रूपा परिश्रम को महत्व देती है और फूलों की सेज का त्याग कर देती है क्योंकि वह सेज कांटों जैसी लगती है । परिश्रम करने से मन को शान्त मिलती है, रूपा का यही कहना था । रूपा के लिए मोहनी सहाय लिखती है कि - "रूपा को प्रारम्भ से ही अपने भुजबल पर भरोसा है और ससुराल पहुँचकर अनूप को काम करने के लिए प्रेरित करती रहती है ।"[3] जब यह उपन्यास लिखा गया उस समय गांधी युग चल रहा था । इसी कारण लेखक श्रम की महत्ता पर बल देते हैं और रूपा के द्वारा कहलाते है - "मुझे स्वप्न में लक्ष्मी जी आदेश देती है कि तसले की मज़दूरी करो जहाँ मन्दिर बन रहा है, वह फूलों की

1· हिन्दी उपन्यास - सृजन और सिद्वान्त, नरेन्द्र कोहली, पृ·-52.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ·-38.
3· डा· मोहिनी सहाय - वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य, पृ·-447.

सेज से अच्छी रहेगी, नहीं तो सांप डंसेगा और सब चौपट हो जायेगा, अर्थात् ... लक्ष्मी जी भी परिश्रम चाहती है । आलस्य शान-शौकत उसको सहन नहीं ।"[1] इस स्वप्न के बारे में डा॰ कृष्णा अवस्थी कहती है कि - "प्रचलित विश्वासों के अनुसार रात्रि के विभिन्न प्रहरों में देखे गए स्वप्न भिन्न-भिन्न प्रकार से भविष्य का संकेत देते है ।"[2] यह कल्पना रूपा के मन में सदैव बनी रहती है कि मैं श्रम करूँ, मज़दूरी करके पेट भरूँ । वर्माजी ने रूपा से श्रम साधना की कल्पना करवाई जो यथार्थ रूप से मिलती है । और सोना आभूषणों की लालसा में अपने मन में कई प्रकार की कल्पना बनाती रहती है । समाज में बहुत स्त्रियां ऐसी होती है जो वस्त्र आभूषणों को अपना सुख समझती है । इसी कारण वस्त्र या धनलोभ के कारण अपना सतीत्व तक लुटा देने में संकोच नहीं करती । और पुरुष अपनी कामुकता के कारण कई शादियां करता है छोटी उम्र की लड़कियों से जैसे राजा धुन्धकारी ने सोना से चौथी बार विवाह किया । अन्त में रूपा को पाने की कल्पना से उसकी कामवासना जाग उठती है । वर्माजी अपने उपन्यासों में खेतों पर काम करने वाले मज़दूरों का यथार्थ रूप से चित्रण करने में सफल हुये है ।

मज़दूरों की शोचनीय स्थिति का सूक्ष्मता से चित्रण "कभी न कभी"उपन्यास में दिखाई देता है । इसके सन्दर्भ में विवेकी राय लिखते हैं कि - "यह सत्य है कि गांव का आर्थिक पक्ष इतना दुर्बल है कि वह वर्तमान जन-संख्या को आजीविका प्रदान करने में अक्षम है और न ही निम्नवर्ग की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करना आज की अनिवार्य विवशता है ।"[3] ज्यादा काम करने पर भी पैसे कम मिलते हैं क्योंकि

1• वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ•-168.
2• कृष्णा अवस्थी - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ•-291.
3• विवेकीराय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन, पृ•-229.

अगर मजदूर बीमार हो जाय तो उसके पास एक दिन के लिए भी पैसे नहीं होते जिससे कि उसका पेट भर सके । मज़दूरों के आपसी प्रेम का वर्माजी ने इस उपन्यास में अच्छी तरह वर्णन किया है । लछमन की बीमारी में देवजू बहुत पैसा खर्च करता है जब लछमन इसके बारे में बात करता है तो देवजू प्रेम से कहता है - "तुम्हारे पैसे उल्टे मेरे ऊपर निकलेंगे न मालुम किस प्रेरणा से मैं इतना काम कर लेता हूँ । उस प्रेरणा का क्या कोई मोल नहीं ? यदि वह न हो न मालूम कब कहाँ चला जाऊँ और फिर किसी को पता भी न लगे कि वह छोटा-सा बुल-बुला कहाँ बिला गया ।"[1] इस कथन से यह समझा जा सकता है कि देवजू की यह कल्पना साकार होकर सामने आई । लेकिन समस्याएं अधिक होने पर भी कुण्डली मिलान को लेकर दोनों के मन में दूरियां आने लगीं । इस अंध-विश्वास को आज भी प्रमुखता मिली हुई है । "कुण्डली चक्र" में भी इस समस्या को देखा गया है ।

"कभी-न-कभी" उपन्यास में लीला की कुण्डली देवजू से अच्छी तरह न मिलने के कारण ∠लीला के पिता देवजू से∠ शादी नहीं करना चाहते । पुरुष की कामुकता की ओर ध्यान दिलाते हुए लेखक मेट का वर्णन करता है जो कि गरीब लड़कियों को फंसाता है । अत: इस कथन से मेट की यथार्थता का पता चलता है । मेट लीला से कहता है - "देखो मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम यहाँ से आँखों की ओट न होओ । तुमको देख लेता हूँ तो मन दौड़ लगाने लगता है, न देख पाने से बेचैन हो जाता है ।"[2] अर्थात् ऐसे लोग समाज में अधिक मिलते है जो स्त्री को एक वस्तु समझते हैं । लेकिन लछमन की कल्पना अलग है । वह लीला के बारे में सोचता है - "यदि मेरे बड़े के साथ इसका विवाह न हो तो इस लड़की का क्या होगा ? इसकी

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कभी न कभी, पृ.-22.
2. वही, पृ.-45.

कितनी बातें हैं । कितनी हंस-मुख और सरल है ।"[1] इस तरह की कल्पना वर्माजी ने मजदूरों के दिल में भी विद्यमान होने का संकेत दिया है । देवजू के मन में विद्रोह विद्यमान है तभी तो मेट के अत्याचारों से दु:खी होकर एक जगह कहता है - "मज़दूरों का भी भगवान है । जिसने पेट दिया है उसके पालन का साधन पहिले ही जुटा दिया होगा । और फिर जो मरने के लिये तैयार हो उसको न तुम्हारी परवाह है और न भगवान की । कभी न कभी मजदूरों के भी दिन आयेंगे ।"[2] लेखक ने उस समय के मजदूरों की स्थिति यथार्थरूप से चित्रित की है । मजदूरों का अधिक शोषण होने पर भी मुंह तक नहीं खोल सकते थे । वह केवल कल्पना करता था कि कभी तो हम मजदूरों के दिन अच्छे आयेंगे । इसमें मजदूरों के जीवन में होने वाली घटनाओं एवं उनके अथाह परिश्रम के बाद भी उनके हृदय में विवाह के विषय में जो प्रेम भावना है उसका वर्णन कल्पना द्वारा होने पर भी यथार्थ प्रतीत होता है । इस उपन्यास में दोनों दोस्तों की सच्ची दोस्ती की भावना को चित्रित किया है जिसमें वे आपस में पगड़ी बदल के भाई-भाई बन जाते हैं । यह वर्माजी की कल्पना की उपज है जो कहीं-कहीं पर यथार्थरूप में दिखाई देती है ।

"आहत" उपन्यास में वर्माजी ने बड़ी खूबी से दीपू के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का वर्णन किया है । बालक के मन में कैसी-कैसी भावनायें आती हैं । अपने माता-पिता से डर कर बच्चे क्या-क्या करने की सोचते हैं जैसे दीपू का कुर्ता खो जाता है उस नुकसान को पूरा करने के लिए वह क्या-क्या कल्पनाएं करता है ? इसका साकार रूप यहां देखा जा सकता है । दीपू कहता है - "मैं अकेले ही तीन-चार रुपये तो उड़ा ही लाऊंगा और तुम्हें दे दूंगा । घर कह देना कि कहीं

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कभी न कभी, पृ.--73.
2. वही, पृ.--110.

पड़े मिले । फिर कुर्ते के खो जाने पर माँ-बाप कुछ नहीं कहेंगे ।"[1] इस तरह की कल्पना बहुत से बच्चों में होती है और वे इसका प्रयोग यथार्थरूप में करते भी हैं । माता-पिता का बच्चों के प्रति किया गया वर्ताव किस हद तक बच्चों के हृदय पर असर करता है ? यह कल्पना "आहत" और "प्रत्यागत" उपन्यासों में मिलती है । बच्चों को किसी कार्य से मना करने पर उनके मन में तरह-तरह की कल्पना होती रहती है जैसे दीपू हर समय कल्पना करता है - "किसी भी क्षेत्र में हो, अपने से छोटे लड़कों का सरदार बनू उनका नायकत्व करूँ । दीपू के भीतर यह चेतना उभरी, हीनभावना की प्रतीति इस प्रकार की क्षतिपूर्ति में रूपान्तरित हुई ।"[2] ऐसी ही कल्पना मन्नू भंडारी के "आपका बंटी" उपन्यास में देखी जा सकती है । बंटी की भावनाओं को ध्यान में न रखने पर उसका मन विद्रोहात्मक बन जाता है । दीपू तो घर को ही छोड़ कर चला जाता है । दीपू के पिता स्त्रियों के लिए पुरानी चली आ रही मान्यताओं को ही मानता है । लेकिन दीपू के विचारों में परिवर्तन आता है, पढ़े-लिखे लोगों में नये विचार आते हैं जो पुरानी रूढ़ियों, प्रथाओं को समाप्त करने में सहायता करते हैं । दहेज मांगने वाले छाया के पति और ससुर को छाया और उसकी सहेलियों ने जूतों से पीट-पीट कर घर से निकाल दिया । इण्डियन हैरिटेज में लिखा है - "मध्यवर्ग की विकसित नई पीढ़ी में पुराने रीति-रिवाजों के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई । विद्रोही प्रवृत्ति का जन्म हुआ ।"[3] इसमें मध्यवर्ग के विचारों को लेखक ने प्रगतिवादी होने की ओर अग्रसर करने का साहस किया है । वर्माजी की प्रगतिवादी भावना खुलकर सामने आती है । गांधीवादी भावना से ओत-प्रोत होने से उपन्यास में उन्होंने

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - आहत, पृ.-26.
2. वही, पृ.-36.
3. इण्डियन हैरिटेज - हुमायूं कबीर, पृ.-117.

आदर्श की स्थापना की, जैसे दीपू की शादी छाया से करवा देना, मंजरी व अंगद आदि के मन में परिवर्तन करवा कर आदर्श रूप में सामने लाना आदि । किसानों को जमीन का मालिक बनाने की सुन्दर यथार्थ की कल्पना की है । डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद इस सम्बन्ध में लिखते हैं - "उन्होंने अपनी सामाजिक दृष्टि के अनुरूप सहकारिता का समर्थन करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था का खुले शब्दों में विरोध किया है ।"[1]

गांधीवादी विचारों के होने से वर्माजी की कल्पना होती है कि हर एक घर में चरखा कातने का काम होना चाहिए । मंजरी द्वारा रोज चरखा कतवा कर पैसे कमाने से घर की दशा सुधरती है । इस तरह से समाज में उन्नति होने एवं बेरोजगारी न पनपने की कल्पना करते हैं जो यथार्थ के रूप में परिणतिहोती नज़र आती है । "कुंडली चक्र" में अजीत समाज सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता है इसी से प्रेरित होकर बेहोश बोद्धा को अपनी पीठ पर उठाकर ले जाता है और निःस्वार्थ सेवा करता है जिससे उसको आनन्द की अनुभूति होती है । अजीत प्रकृति के बारे में कल्पना करता है - "प्रकृति के संदेश में वाद्य नहीं है संगीत है मारना नहीं है मर जाना है । वध पर संगीत की विजय होगी । सूर्य की किरणें आकाश से यही संवाद ला रही हैं ।"[2] अजीत सभी के साथ सहृदयता रखता है तभी तो पूना का खत मिलते ही सोचता है कि भुजबल पहले किसानों पर अत्याचार करता रहा होगा और अब दीन स्त्रियों पर उसकी दृष्टि पड़ी होगी। पूना से दूसरा विवाह रचाने की कल्पना करना बहु-विवाह का प्रतीक है । भुजबल का पहले रतन से विवाह होने को बेमेल विवाह कह सकते हैं इस सन्दर्भ में डा॰ मंजुलता सिंह का मत है कि - "इस उपन्यास में रतन कुमारी के बेमेल विवाह की दुर्घटना

---

1. डा॰ सियारामशरण प्रसाद - हिन्दी उपन्यास का विकास और उसके चार प्रतिनिधि, पृ॰-62.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ॰-38.

कुंडली की बेदी पर बलि हो जाने वाले युवक-युवती की करूण कथा है ।"[1] वर्तमान युग में भी बच्चों के माता-पिता उनकी इच्छा के विरूद्ध शादी करते हैं परन्तु उपन्यासकार ने पूना को इस कुप्रथा के विरूद्ध संघर्ष करती हुई बताया । जिसमें उसको आत्महत्या कर लेना तो अंगीकार है किन्तु भुजबल की दूसरी पत्नी बनना सहन नहीं ।

वर्माजीनेअपनी कल्पना को यथार्थ बनाने के लिये अजीत जैसे सक्रिय एवं प्रगतिशील युवक को पूना के साथ विवाह करने की प्रेरणा दी है । कुंडली मिलान का विरोध इस वैज्ञानिक युग में होना आवश्यक है । इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिये अनेक पूना और अजीत बनाने पड़ेंगे । जमींदार शिवलाल के अत्याचार किसानों पर अधिक हुये इसी से बुद्दा व पैलू का चित्रण यथार्थ रूप में सामने आता है । एक गाँव क्या भारत के सभी गावों के किसानों की इसी प्रकार दरिद्रता पूर्ण हालत है इससे शाह और खंबाट लिखते हैं - "हिन्दुस्तानियों की औसत आमदनी इतनी होती है कि तीन आदमियों की आमदनी से दो का ही पेट भरे ।"[2] भुजबल उपर्युक्त कथन को जैसे साकार करता है । बोद्दा और पैलू से लगान देने के लिए कहता है लेकिन पैलू के कथन में शोषित वर्ग की सारी विवशता प्रगट होती है । वो कहता है - "हम तो मरने के लिए आये हैं । घर में एक दाना खाने को नहीं है । बाल-बच्चों समेत हमको मार डालो । बड़ा पुण्य होगा ।"[3] अर्थात् किसानों के पास पेट भरने तक को अन्न नहीं, लगान कैसे दे सकते हैं ? इसी कारण उनको बंधुआ बनाकर रखते थे । इसी सन्दर्भ में डा॰ कमला गुप्त लिखती है - "यह ग्रामीण कृषकों पर होने वाले जमींदारों के अत्याचारों का युग था इसमें लेखक ने बड़ी खूबी से यथार्थ दृष्टि से काम लिया है ।"[4] लेकिन बाद में स्थिति

1· डॉ॰ मंजुलता सिंह - हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग, पृ॰-125.
2· शाह और खंबाट - भारत की सम्पत्ति और उसकी करोपयोगी क्षमता, पृ॰-153.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ॰-85.
4· कमला गुप्ता - हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद, पृ॰-266.

बदलती है । निराला के उपन्यास अलका में किसान अब जमींदारों से नहीं डरते "किसानों का सबसे बड़ा कसूर यह है कि वे पहले की तरह नहीं डरते लगान के अलावा अब कुछ नहीं देते ।"[1] इसी तरह "कुण्डली चक्र" में पैलू बोद्धा द्वारा लेखक ने उनके मुंह से कई बार भुजबल के सिर फोड़ने की बातें कहलाई है । वर्माजी ने अपनी कल्पना से किसानों के जीवन का सुधार करने की इच्छा व जमींदारी प्रथा के खिलाफ आवाज उठाई । अनमेल विवाह, बहु-विवाह, जन्म कुण्डली मिलान धर्म के प्रति अन्ध विश्वास आदि का विरोध करने में उनकी प्रगतिवादी चेतना दिखाई देती है उन्होंने समाज में फैले शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई और प्रेम विवाह का समर्थन करके समाज को नई दिशा दिखाने की चेष्टा की ।

"अमर बेल" उपन्यास में वर्माजी समाज में फैली बुराइयों को सामने लाये व उसको सही तरीके से दूर करने की चेष्टा की । सहकारी समितियां बनाने के पक्ष में लेखक स्वयं प्रयास करते हैं । इसमें आने वाली कठिनाईयों का चित्रण वर्माजी ने अपनी लेखनी से निजी अनुभवों द्वारा किया है । गांवों में आर्थिक रूप से गरीब किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय होने पर भी जमींदारों के अत्याचारों में कमी नहीं आई । देशराज धनोपार्जन करने के लिए अनीति के नये-नये तरीके ढूंढता है । अफीम का अवैध धन्धा करते हुए अंजना से कहता है - "यह अमर बेल जिस पर छा जाती है बिचारा तड़पता ही रह जाता है पर पाता कुछ नहीं और एक ओर जिसके लिये यह उपनाम बिलकुल सार्थक है - मेरी सदा लहलहाने लहराने वाली बेल है न ?"[2] इस तरह की कल्पना जमींदार होकर भी मन में करता है । क्योंकि बिना मेहनत किये रातों-रात

1• सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - अलका, पृ•-131.
2• वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ•-29.

लखपति बन जाने के स्वप्न देखता है । इसी कल्पना से अंजना भी ग्रसित है । ऐसे लोग ही समाज को पथ भ्रष्ट करते हैं । अंजना व देशराज जैसे अनेक लोग आज भी समाज में हैं जो इस तरह की कल्पना करके अनीति के रास्ते पर चलने में ही अपनी भलाई समझते हैं ।

लेखक ने सहकारी समितियों के माध्यम से किसानों को कम ब्याज पर रूपया देने की व्यवस्था तथा गांवों में वैज्ञानिक तकनीक से बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने की कल्पना को यथार्थ रूप में देखा और यह भी चाहा कि मशीनों के आ जाने पर भी किसानों का नुकसान नहीं होना चाहिए । "अमर-बेल" के डॉ॰ स्नेही ने एक जगह अपने विचार व्यक्त करते हुये गांधी का समर्थन किया और कहा कि - "गांधी जी ने भी इन यन्त्रों के प्रयोग का कभी निषेध नहीं किया, उनके विचार से यन्त्रों का प्रयोग करने में विवेक व सावधानी होनी चाहिए । जिससे मजदूरों और पशुओं की संख्या कम से कम घटे ।"[1] कहने का तात्पर्य है कि मशीनों का प्रयोग तो हो लेकिन उतना ही जितना आवश्यक हो । सामूहिक श्रम पर जोर देते हुये टहल कहता है कि दूसरे देशों में "जहाँ निकम्मों को कोड़े लगाकर कार्यारूढ़ किया जाता है ... आलसियों का बहिष्कार किया जाता है । भोजन दुर्लभ कर दिया जाता है ।"[2] अगर इसी तरह से व्यवहार किया जायेगा तो ये लोग सुधर पायेंगे, इस तरह की कल्पना करता हुआ टहल को महसूस होता है कि अगर गांवों की उन्नति करनी है तो सभी गांव वालों को साथ लेकर व ईमानदारी से परिश्रम करने की प्रेरणा देना जरूरी है । उपन्यास में इन सबका महत्व बताते हुए लेखक ने उद्योग, विधवा विवाह और त्यागमय जीवन द्वारा अनेक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया है ।

1· किशोरीलाल मशूर वाला - गांधी विचार दोहन, पृ॰-81-90.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - अमर बेल, पृ॰-179.

"प्रत्यागत" में लेखक ने जातिगत भेदभाव का वर्णन बड़ा ही यथार्थ रूप में किया है । "खान-पान में छुआ-छूत का विचार भारतीय हिन्दू समाज में प्राचीनकाल से चला आ रहा है । गांधी जी ने इस समस्या को मिटाने का जीवनभर प्रयास किया । "प्रत्यागत" उपन्यास में नवल बिहारी ऐसे ही हिन्दू कट्टरवादी इंसान है । जो समाज के लोगों को परेशान करता रहता है । मंगल को जबरन मुसलमान बनाने के बाद सारी समस्या उत्पन्न होती है । मंगल को जाति में पुन: लेने के लिये नवल बिहारी कहते है - "धर्म-भ्रष्ट को जाति में मिलाना जैसे नकटे लूले और लंगड़े के अंग चले जाने पर पुन: वापस ठीक नहीं होते वैसे ही छोड़ी हुई जाति फिर कैसे मिल सकती है ।"[1] इस तरह की कल्पना से सभी जाति वालों के मन में यही भाव उठता है कि अगर मंगल जैसे लोगों को जाति में न लिया जायेगा तो एक दिन हिन्दू जाति का नामोनिशान ही उठ जायेगा । वर्माजी की कल्पना तो सर्वधर्म को मानने की है उनमें धर्मों का कोई भेद-भाव नहीं । सभी को एक समान समझे तभी तो आदर्श की स्थापना होगी और कल्पना यथार्थ रूप में परिवर्तित होती नज़र आयेगी ।

(ख) यथार्थ की परिकल्पना

आधुनिक युग विज्ञान का युग है । वैज्ञानिक चेतना के कारण समाज में फैली हुई अनेक रूढ़ि परम्पराओं के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित हुआ । इसका परिणाम यह हुआ कि समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करने के लिए साहित्यकारों द्वारा नये दृष्टिकोण का सहारा लेना आवश्यक हो गया । वर्माजी जीवन के किसी न किसी पक्ष की वास्तविकता को लेकर चलते है और यथार्थ की अन्तिम परिणति आदर्श

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ०-145.

में ही करते हैं । लेखक अपने अनुभवों एवं कल्पनाशक्ति से राक्षस में देवता, नरक में स्वर्ग, पीड़ा में सुख और निराशा में आशा के दर्शन करवाते हैं यही तो उनकी सफलता है । इसी सन्दर्भ में रवीन्द्रकुमार जैन लिखते है - "यथार्थ का बोध कराने मात्र से तो समाज अथवा भोक्ता की पीड़ा और भी बढ़ सकती है अतः उसका समाधान भी प्रस्तुत करना साहित्यकार के दायित्व का विशिष्ट अंग है ।"[1] वर्माजी ने सामाजिक समस्याओं को लेकर समाज के अनेक पहलुओं पर दृष्टि डाली है । "लगन", "संगम" एवं "प्रेम की भेंट" उपन्यास में वर्माजी ने समाज में फैली अनेक बुराईयों का यथार्थ चित्रण किया है जैसे कि दहेज की प्रथा जो नारी जीवन का अभिशाप है । प्रेमचन्द जी ने इसको दुधारी तलवार की तरह देखा है । वर्माजी ने इस प्रथा को समाज में फैले घृणित व्यापार की तरह समझा है । "निर्मला" में दहेज न देने के कारण निर्मला की शादी अधेड़ आयु वाले तोताराम से करनी पड़ी । इसी तरह रामा के पिता ने दहेज का वचन देकर दहेज नहीं दिया । उसी का दण्ड देवीसिंह व रामा को भुगतना पड़ा । गांव के लोग मौन साधे देखते रहते हैं परन्तु उन लोगों का विरोध नहीं करते । समाज में ऐसे लोगों को दंड मिलना अति आवश्यक है । इन लालची भेड़ियों को समाज से बहिष्कृत करना जरूरी है । वरना पूरे समाज को इस मानसिकता का शिकार बनाने में सफल हो जायेंगे । "आहत" उपन्यास में छाया ने हिम्मत का काम किया । क्योंकि उसने उस लड़के से शादी ही नहीं की वरन उसको जूते मार-मार कर घर से बाहर निकाल दिया । लेकिन "सोना" उपन्यास में दहेज न देने की वजह से रूपा गरीब घर में ब्याही और सोना अधेड़ उम्र के राजा से । वर्माजी नारी की करूण दशा को व्यक्त तो करते हैं परन्तु उसमें उनको कायर न रख कर वीरता, साहस का पाठ

---

1. रवीन्द्र कुमार जैन - उपन्यास सिद्धान्त और संरचना, पृ.-47.

पढ़ा कर समाज के सामने प्रस्तुत करते है । उनका दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति उच्च था । उन्होंने समाज में फैली विषमताओं को यथार्थ रूप में सामने रख कर उसका समाधान खोजने का प्रयास सफलता पूर्वक किया ।

वर्माजी की परिकल्पना ने विधवा स्त्रियों की दशा का जो समाधान किया वो उस समय कोई भी लेखक सोच नहीं सकता था । परन्तु वर्माजी राजाराम मोहन राय के विचारों से सहमत थे । उस समय से ही विधवाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदला । राजा राममोहन राय ने इस कुरीतियों को समाप्त करने के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की । वर्माजी ने समाज के सामने यह उदाहरण रखा एवं लोगों को सचेत किया कि विधवा स्त्रियों से विवाह करना कोई गुनाह नहीं है बल्कि एक अच्छा काम है । उन्होंने उन स्त्रियों के मन की भावनाओं को समझने की कोशिश की । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में उजियारी, गंगा, निशा के हृदय को टटोल कर लोगों के सामने यथार्थ रूप में रखा । जैसे बाल विधवा उजियारी धीरज को पाने के लिए सरस्वती को हटाना चाहती है । इससे हमें लगता है कि विधवा होना कोई पाप तो नहीं है उसमें उन स्त्रियों का क्या कसूर है क्योंकि वो भी जवान स्त्री है उसको भी प्यार चाहिए, फिर यह समाज उनके प्रति ऐसीभावना क्यों रखता है । गंगा विधवा होते हुऐ भी उसमें त्याग की भावना प्रबल थी इसी कारण वह रामचरण से प्यार तो करती है परन्तु बदले में कुछ नहीं चाहती है । यही कारण है जब लालमन डाकू रामचरण को मारता है तो गंगा अपनी परवाह न कर रामचरण को बचाती है । वर्माजी अपने उपन्यासों में विधवाओं तथा असहायों के प्रति सहानुभूति रखते हुये उन्हे समाज में समान उन्नति की ओर अग्रसित करने की परिकल्पना करते है ।

जमींदारी प्रथा का विरोध करते हुये वर्माजी ने "आहत" , "कुण्डली चक्र", "अमर बेल","उदय किरण" जैसी कृतियों की रचना की । उनके समय में जमींदारी उन्मूलन बड़े जोर से चल रहा था अत: उन्होंने

अपने उपन्यासों में जमींदारों की मन:स्थिति व द्वन्द्व का स्पष्ट रूप से वर्णन किया । "अमरबेल" का देशराज "आहत" का अंगद, "कुण्डली चक्र" आदि के जमींदारों की जमींदारी समाप्त होने पर भी कल्पना यही थी कि हम आज भी किसानों पर राज करें, उन पर अत्याचार करें । इसी सन्दर्भ में डा· मोहनलाल "रत्नाकर" के अनुसार - "लेखक पूंजीवादी प्रवृत्ति का विरोधी है और उसकी सहानुभूति श्रमिकों एवं कृषकों के साथ है । उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील तथा यथार्थवादी है ।"[1] लेखक ने जमींदारों के अत्याचारों के विरूद्ध विद्रोहात्मक नीति अपनाई है । "कुण्डली चक्र" का शिवलाल एक विलासी कामुक और अकर्मण्य जमींदार है जो ऋण के लिए अपनी जमीन रेहन रख कर भी विलासी प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाता है । इस सन्दर्भ में कमला गुप्ता का कहना है - "जमींदारों का अहं उनकी दौलत है इसके आवेश में वे दीन-हीनों पर अत्याचार करते हैं, शोषित व्यक्ति उनके अहं का शिकार होकर प्राणों की आहुति चढ़ा देते हैं ।"[2] इस यथार्थ को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन जमींदारों, साहूकारों आदि का मनमाना अत्याचार होता रहा है । वर्माजी इनके घोर विरोधी थे तथा उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने का कठिन परिश्रम किया ।

अनमेल विवाह, बहु-विवाह होने पर क्या-क्या समस्याएं पैदा होती हैं, इसका वर्णन वर्माजी ने अपने उपन्यास में किया है । ललितसेन अपनी बहन का अनमेल विवाह कर देने के बाद बहुत दु:खी होता है और सोचता है कि - "भुजबल से रतन का विवाह करने की गलती मैंने की है इससे अजीत क्या बुरा था ? बहुत सुन्दर न था, परन्तु कुरूप भी न था । दोनों एक दूसरे को थोड़ा-बहुत चाहते थे ।"[3] इस

1· डॉ· मोहनलाल "रत्नाकर" - प्रेमचन्द युग का हिंदी उपन्यास, पृ·-99.
2· डॉ· कमला गुप्त - हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद, पृ·-82.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ·-176.

प्रकार समाज में ऐसे अनेक व्यक्ति है जिनको अपने बच्चों की इच्छा के विरूद्ध शादी कर के अन्त में पश्चाताप की अग्नि में जलने के सिवाय कोई रास्ता नज़र नहीं आता है । "अचल मेरा कोई" के सुधाकर व कुन्ती को ही देखे तो कुन्ती दुःखी होकर आत्महत्या कर लेती है । मध्यवर्ग की यह समस्या बहुत जटिल से जटिलतर होती जा रही है । सुधाकर स्वतंत्रता का पक्षधर होते हुये भी कुन्ती पर शक करता है उसे मुंह से अपशब्द कहने में भी शर्म नहीं लगती, इसी से कुन्ती कहती है - "तुम झूठ कहते हो । कुन्ती गरजी, तुमने यह गाली मुझको दी है कुछ समय से तुम मेरी अवहेलना पर अवहेलना कर रहे हो । तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल मैं नाची इसलिये तुमने आज मुझको वह गाली दी । जिसको सुनकर कोई भी स्त्री चाहे जितनी निर्लज्ज हो मार डालने और मरने पर तुल जाती है ।"[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि विवाह होने में विचारों का मिलना जरूरी है । "सोना" उपन्यास में भी चम्पत जैसे युवक के साथ सोना का विवाह न करके अधेड़ उम्र के राजा के साथ होता है । इसका परिणाम है सोना कभी सुखी नहीं रहती, केवल गहनों से ही मन बहलाती है । चम्पत की याद मन में करती हुई सोना कल्पना करती है - "खेत में चम्पत ने एक फाग को भी गाया था जिसमें सुकुमार सुन्दर गोरी बाहों के सिवाय और भी कई अड्डों का बखान था ।"[2] इस सन्दर्भ में डॉ॰ आशा बागड़ी ने लिखा है - "युवा-हृदय की प्यास भला इस सोने और हीरे जवाहरातों से बुझ सकती थी । राजा धुरन्धरसिंह का वृद्ध हृदय ही जब इस वैभव से न बहल सका तो रानी सोना तो युवती थी, हृदय में शत-शत उमंगें छिपाए हुए ।"[3] इसका अर्थ यही है कि दोष उनके माता-पिताओं का है जो अपने पुत्र-पुत्रियों के

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ॰-206.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ॰- 73.
3· डॉ॰ आशा बागड़ी - प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन, पृ॰-101.

विवाह में न्याय नहीं करते । लेखक यह बताना चाह रहे हैं कि विवाह हम उम्र से ही करना चाहिए । "कभी न कभी" उपन्यास में लीला की शादी उसकी इच्छा से होती है । इधर "उदय-किरण" में किरण की मां अपनी पुत्री की इच्छा जानकर उसका विवाह उदय से करती है । वर्माजी ने इस तरह के विवाह को अधिक महत्व दिया है । वर्माजी ने आदर्श को महत्व देते हुये देवजू का त्याग सामने रखा । देवजू ने अपनी शादी न करके लछमन की शादी लीला से करवा के आदर्श की स्थापना की ।

वर्माजी स्वयं अधिक मेहनती व परिश्रमी थे तथा दूसरों को श्रम करने की सलाह देते थे । इसी कारण उन्होंने श्रम की परिकल्पना की । "उदय-किरण", "सोना","अमर-बेल" के उपन्यासों में लेखक ने अपने अनुभव के निचोड़ को सामने रखा । वे "सोना" उपन्यास में मेहनत न करने वालों को सन्देश देने के लिए लिखते हैं - "सांप, और जीवन का चिन्ह है ··· फूलों की सेज से अच्छी मज़दूरी करनी ।"[1] लेखक ने अमर-बेल और उदय-किरण उपन्यासों में सहकारी समिति पर जोर देकर सामूहिक खेती करने की ओर लोगों को प्रेरित किया । इसी सन्दर्भ में वर्माजी कहते हैं - "आपस में मिल-जुलकर काम करो, सरकार मदद करेगी और हम लोग अपना कर्तव्य पालन करेंगे । सहकारी लेन-देन, समितियों, सहकारी साधन समितियों, पंचायतों और सहकारी खेती समितियों को मन लगाकर चलाओ । शिक्षा का प्रसार हो रहा है और होता जायेगा । अपने को ऊँचा उठाओ । देश को ऊँचा उठाओ ।"[2] इस तरह से लेखक लोगों के अन्दर परिश्रम की भावना भरते हुये देशवालों को ऊँचा उठाने की परिकल्पना करते हैं । अमर-बेल में लेखक टहल के मुंह

1· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ·-118.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - उदय-किरण, पृ— 99.

से यह कहलाने की कोशिश करते हैं कि - "मेरे लिए जीवन में जो कुछ भी बहुत सुन्दर है वह श्रम है । अपनी समिति में श्रम को हम लोग अधिक महत्व देंगे ।"[1] उपरोक्त कथन को देखते हुए हम कह सकते हैं कि लेखक ने गांधी के विचारों को अपने उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त करने की पूरी कोशिश की है । डॉ॰ सुमित्रा त्यागी के विचार से - "सम्पूर्ण मानव के कल्याण की यह पवित्र विचारधारा जो स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास-साहित्य का केन्द्र बनी, अपने विस्तृत यथार्थ एवं आधुनिक युगीन उपन्यासकारों के विशाल हृदय का परिचय देती है ।"[2] अर्थात् लेखक कोई भी हो सभी श्रम करने में ही जीवन सफल होने की प्रेरणा देते हैं ।

अन्त में लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह की समस्याओं को सामने रखा । इसके द्वारा लेखक ने समाज के उन लोगों को सचेत किया है जो अन्तर्जातीय विवाह के विरोधी हैं । "संगम" उपन्यास में सुखलाल का पुत्र रामचरण कायस्थ मां का बेटा और ब्राहमण पिता का पुत्र होने से हिन्दू समाज ने उसको किसी जाति में स्थान न देने की पूरी कोशिश की । उसके पिता समाज के डर से अपने पुत्र को घर आने को मना कर देते हैं परन्तु गांव में प्लेग होने पर रामचरण ने जी-जान से बीमारों की सेवा करके समाज को दिखा दिया की जाति-पांति से कोई ऊँच या नीच नहीं बनता क्योंकि सभी मनुष्य समान है चाहे हिन्दू हो, कायस्थ या मुसलमान । "प्रत्यागत" उपन्यास में मंगल के प्रति समाज का जो दृष्टिकोण सामने आया है वह विचारणीय है क्योंकि मंगल को उसकी इच्छा के विरूद्ध मुसलमानों ने पानी पिलाया तो क्या वह धर्म भ्रष्ट हो गया ? इसी तरह "झूठा सच" उपन्यास में तारा को मुसलमानों ने

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमर-बेल, पृ॰-78.
2· डा॰ सुमित्रा त्यागी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, पृ॰-147.

पकड़ कर अपने घर रख लिया तो उसको समाजवालों ने ग्रहण करने से इन्कार कर दिया । अगर हिन्दू के मन में इसी तरह की विचारधारा बनी रही तो एक दिन हिन्दू जाति का अन्त हो जायेगा । "प्रत्यागत" में लेखक ने नवयुवकों से जातियों के भेदभाव पर घोर विरोध करवाया । अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए लेखक हर समय प्रयत्नशील रहता है । लेखक वास्तविक रूप से यथार्थ की परिकल्पना अपने उपन्यासों में करता है ।

- 0 -

2• उपन्यासों में चित्रित यथार्थ के विभिन्न आयाम

(क) सामाजिक यथार्थ

"सामाजिक यथार्थ" शब्द का भ्रान्त अर्थ लेने वाले भी कम नहीं है । वे समाज की ऊपरी सतह पर दिखाई पड़ने वाली निर्जीव और पतनोन्मुख विकृतियों को ही सामाजिक यथार्थ मान बैठते है । मार्क्सवादी दृष्टि इस प्रकार की सतही यथार्थजन्य भ्रान्तियों में न फंसकर बुनियादी सत्य को देखती है । प्रत्येक युग का जीवन और साहित्य अपने युग के सामाजिक सम्बन्धों और जनविश्वासों को व्यक्त करता है।इस सन्दर्भ में डा• शशिभूषण सिंहल लिखते है : मानव जीवन की समवेत अभिव्यक्ति उसके सामाजिक गठन द्वारा होती है । सामाजिक उपन्यास समाज के गठन के अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण करता है ।"[1] लेखक समाज में होने वाली सामाजिक,धार्मिक और राजनैतिक समस्याओं का वर्णन अपने उपन्यासों में यथार्थ रूप से करता है और सामाजिक संदर्भों को सामाजिक परिवर्तनशीलता के क्रम में प्रस्तुत करता है । डा• श्याम सुन्दरदास का मत है - "इन उपन्यासों का कथानक समाज के नर-नारियों के क्रिया कलाप और पारस्परिक व्यवहार के ही अधिक काम आता है । ••• परिस्थितियों की रमणीय योजना जिससे उपन्यास के पात्र स्वाभाविकता का निर्वाह करते हुए अधिक से अधिक सामाजिक अंशों को स्पर्श कर सके यही इस कोटि के उपन्यासों की मुख्य कला होती है ।"[2] इस प्रकार जीवन के सामाजिक स्तर को व्यक्त करना ही इस कोटि के उपन्यासों का लक्ष्य है ।

1• डा• शशिभूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां, पृ•-5.
2• डा• श्याम सुन्दरदास - साहित्यालोचन, पृ•-182.

सामाजिक उपन्यासों के परिवेश में एक परिवार, एक धर्म, एक प्रदेश, एक राष्ट्र से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तक के सामाजिक सन्दर्भ अनुस्यूत रहते है तथा सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक,सांस्कृतिक आदि सभी स्थितियों का यथासंभव उल्लेख किया जाता है । इसी कथन को देखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है - "सामाजिक उपन्यासों में देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलनों का भी आभास बहुत कुछ रहता है ।"[1] इन सभी के साथ लेखक अपनी कल्पना का सहारा लेकर सामाजिक यथार्थ को चित्रित करता है ।

सामाजिक यथार्थवादी लेखक पूर्वाग्रह-रहित दृष्टिकोण से समाज का चित्रण करने का प्रयत्न करते है । यह यथार्थ चित्रण प्राय: फोटोग्राफिक चित्रण ही होता है - "जब वैज्ञानिक सत्य और औपन्यासिक सत्य के बीच के महत्वपूर्ण अन्तर को उपेक्षित कर अत्यन्त तटस्थ रहकर यथार्थ का चित्रण किया जाता है तब सामाजिक यथार्थ का आविर्भाव होता है । फ्लोबेर ने वैज्ञानिक की भाँति तटस्थ रहकर मनुष्य की आत्मा का अध्ययन करने का सन्देश कलाकारों को दिया है ।"[2] लेखक की प्रतिभा और बुद्धि, उसके पूर्व संस्कार आदि गुण उपन्यास की रचना में सहायक सिद्ध होते है ।

उक्त सभी वर्णनों के बाद हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यासों में यथार्थ के कितने रूप मिलते है ? कि वर्माजी ने जातिप्रथा, अंधविश्वास, पर्दाप्रथा, छुआछूत, दहेज आदि रीतियों को अलग-अलग पहलुओं पर गहराई से प्रकाश डालने का

---

1. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰-512.
2. See, The Rhetoric of fiction - Wayne C. Booth P.68

भरसक प्रयत्न किया और सफल भी हुए । उनके सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है अब हम इसे देखने का प्रयत्न करेंगे ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने प्रथम सामाजिक उपन्यास "लगन" में जातीय भेद और वैमनस्य आदि का चित्रण स्पष्ट रूप से किया है व दहेज की समस्या को प्रधानता दी, यह लेखक के प्रगतिशील विचारों की ओर संकेत है । "लगन" में रामा व देवीसिंह के साहस और निर्भयता से दोनों घरों में पुन: प्रेम हो जाता है । देवीसिंह को रामा के दरवाजे पर जाने से ऐसा लगता है कि विवाह गुड्डे-गुड्डियों का खेल नहीं है । समाज में फैली दहेज प्रथा के कारण दोनों विवाहितों को मिलने नहीं देती । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ कमला गुप्ता लिखती हैं - "कोई भी कुप्रथा अपने में ही पूर्ण नहीं होती वह अपने साथ अनेक कुप्रथाओं की एक श्रृंखला लेकर चलती है । अनमेल विवाह, बहु-विवाह आदि कुप्रथाएं बहुत सीमा तक दहेज प्रथा से ही जुड़ी हुई हैं ।"[1] यह समाज के सामने सत्य है कि वे ही लोग जिम्मेवार होते हैं जो नियम बनाते हैं उसी के अनुसार चलकर अपने ही हाथ से अपने पांव पर दहेज रूपी घातक कुल्हाड़ी मारते हैं । जैसे देवीसिंह के पिता कहते हैं - "मुझे तो उस नकटे बादलवा की ठसक मिटानी थी । बड़ी नाक वाला बना फिरता है ।"[2] इस तरह सम्बन्धी होकर भी ऐसी भावना रखते हैं जिससे समाज के लोगों पर
∠ हैं उन क्या असर होता है ? फिर जो विवाह करने वाले लड़का-लड़की∠पर क्या गुजरती होगी ? उपन्यास में रामचरण के माध्यम से लेखक दहेज का विरोध करवाते हुए कहलाते हैं - "मांगकर जेवर चढ़ाने की प्रथा बड़ी

1· डॉ॰ कमला गुप्ता - हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद, पृ॰-318.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - लगन, पृ॰-17.

निन्दनीय है । सीधे-साधे ढंग से काम से काम करना हम लोग जानते ही नहीं । झूठे ढोंग बनाकर संसार को धोखा देने की रीति बहुत ही बुरी है ।"[1] इसी दहेज के कारण पूना की शादी नहीं हो पाती है और उसकी माँ उसका विवाह विवाहित भुजबल के साथ करने को तैयार हो जाती है । "सोना" उपन्यास में अनमेल विवाह पर लेखक ने समाज के लोगों का ध्यान आकर्षित किया है कि मनुष्य स्वार्थ व लाचारी के कारण अपनी लड़कियों की शादी बूढ़े लोगों के साथ करने में भी नहीं हिचकते है । कुण्डली मिलाने के बाद शादी होने पर भी वैवाहिक जीवन में दुष्परिणाम देखने को मिलते है लेकिन अब समय के अनुसार परिवर्तन आने लगे है । "आहत" उपन्यास में इसका सजीव चित्रण देखने को मिलता है । "उदय किरण" में किरण की इच्छा यही होती है कि दहेज न लेने वालों के साथ मेरी शादी होनी चाहिये और हुआ भी ।"अचल मेरा कोई" में निशा एवं कुन्ती इस प्रथा को मिटाने में संघर्ष करने की इच्छा रखती है ।

जाति-प्रथा इस देश की सबसे बड़ी विडम्बना है जो समाज में अधिक फैली हुई है । इसका उदाहरण हमें "प्रत्यागत" ,"संगम" आदि उपन्यासों में देखने को मिलता है । जाति से बहिष्कृत मंगल को क्या-क्या न भुगतना पड़ा । उसकी गलती यही थी कि मुसलमानों ने जबरन उसको पानी पिला दिया । इस कारण मंगल को प्रायश्चित करने के लिए उन धर्मभीरूओं के सामने जाकर उनके कथनानुसार कार्य करना पड़ा । ब्राहमण जाति के लोग स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझते है इसी से नवल बिहारी कहता है - "आज मुसलमान हुए ब्राहमण को फिर ब्राहमणों में मिला लिया, कल जन्म-जात मुसलमान को ब्राहमण बनाइए

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - संगम, पृ.- 63.

और परसों हिन्दू नाम ही का संपूर्ण लोप कर दीजिए ।"[1] समाज ऐसे लोगों को उच्चासन पर आसीन करके ही गलती करता है । ऐसे विचारों के कारण समाज में हिंसा पैदा होती है फिर हिंसा दंगों का रूप लेने में सफल होने लगती है । रूढ़ियों को ढोने से न समाज की उन्नति सम्भव है और न देश की प्रगति । इन विचारों का विरोध करते मंगल और हेतसिंह कहते हैं - "पंडित जी आप एक बात से इंकार नहीं कर सकते । प्राचीन की रक्षा के लिये और वर्तमान समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए इन साधनों की बड़ी भारी जरूरत है अन्यथा हम लोगों का जीवन समाप्त है ।"[2] लेखक ने मंगल और हेतसिंह के माध्यम से प्राचीन रीति-रिवाजों में होने वाले परिवर्तन पर जोर दिया ।

यह उपन्यास गांधी युग के समय लिखा गया है । उस समय आर्य समाज के लोग जाति-धर्म की संकीर्णता का खुल कर विरोध कर रहे थे । समाज में फैले जातीय अभिमान को मिटाने पर जोर देते थे । इसी कारण "संगम" उपन्यास में रामचरण जातीयता की विषमताओं के खिलाफ आवाज उठाता है तथा मानवता की भावना रखने का उपदेश देता है । उसने यह बात अपने जीवन में भी लागू की । जब गांव में प्लेग फैला तब वह जाति की परवाह न करके सभी जाति के लोगों की सेवा करता है ।

नन्दराम अपनी झूठी मान-मर्यादा के मोह में स्वयं को नष्ट कर देता है । लेखक ने इस समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास किया है । भिखारीलाल ब्राहमण होते हुए भी नाई द्वारा पोषित ब्राहमण

1· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ·-103.
2· वही, पृ·-172.

कन्या की शादी अपने पुत्र से करते हैं । इतना ही नहीं नाई के घर की कच्ची रसोई तक खाने को तैयार हो जाते हैं । समाज के लोगों में ऐसी भावना आने पर ही ऊँच-नीच की भावनाओं पर विजय मिल सकती है । "कुण्डली चक्र" में पूना की माँ कहती है मास्टर जी हमारी जाति से नीची जाति वाला है इसलिए पूना की शादी नहीं करूँगी । इसी तरह "प्रेम की भेंट" उपन्यास में धीरज के सजातीय होने पर भी कम्मोद अपनी बहन की शादी उसके साथ नहीं करना चाहता, क्योंकि वह उसका आश्रित है । "अमर-बेल","कुण्डली चक्र","आहत";उदय-किरण" उपन्यासों में निम्नवर्ग की अत्यन्त दयनीय स्थिति की झलक मिलती है ।"अमर-बेल" में चमारों की दशा करूणा जनक होने पर भी जमींदार देशराज के लोगों द्वारा उन पर अत्याचार करवाये जाते हैं । "कुण्डली चक्र" में बोद्दा पैलू की दशा को लेकर अजीत उनकी दशा सुधारने की कोशिश करता है । "अमर-बेल" में टहल जाति भेद को मिटाने के लिए आवाज उठाता है पैलू जमींदार के खिलाफ बोलता है इसी सन्दर्भ में डॉ॰ भागीरथ बडोले लिखते हैं - "कुण्डली-चक्र" में पैलू नवीन किसान चेतना का प्रतीक है जो शोषण के विरूद्ध संघर्षरत होकर सामूहिक चेतना के नये आयाम प्रस्तुत करता है ।"[1] लेखक समाज के लोगों को यथार्थ घटनाओं से अवगत करवाते हुए प्रगतिवादी चेतना जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं ।

जातीय उच्चता और पवित्रता की भावना का विचार मुख्यत: भोजन और विवाह सम्बन्धों को प्रभावित करता रहा । "मानो स्वर्ण जातियों का धर्म चौके में आ सिमटा हो ।"[2] जातिवाद का एक और उदाहरण - नाइयों की पंचायत चमार बसेरों को अपने से नीचा मानकर

1· डॉ॰ भागीरथ बडोले - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मूल्य और उपलब्धियाँ, पृ॰-248.

2· वृन्दावनलाल वर्मा - प्रत्यागत, पृ॰-59.

हजामत बनाने पर प्रतिबन्ध लगा देती है तो वे भी बाजे बजाना और रमतूला फूंकना बन्द कर देते हैं ।"[1] इस उदाहरण में जातीय वैमनस्य का यथार्थ चित्रण हुआ है जो समाज में फैला हुआ है । छुआछूत को लेकर गांधी जी बहुत परेशान रहते थे । इस भावना को हटाने के लिए उनका पूरा जीवन ही लग गया । समाज की उन्नति के लिए ऐसी प्रथाओं को मिटाना ही श्रेयष्कर है । डॉ॰ भटनागर ने तो यहाँ तक लिखा है कि - "अछूत समस्या का समाधान यही है कि शासकों और कुलीन कहलाने वालों को चाहिए कि दलितों को सीधे-सीधे अधिकार प्रदान करें अन्यथा अब समय आ गया है कि वे मौन बैठने वाले नहीं है और कभी भी विद्रोह की आग भड़का सकते हैं ।"[2] इस कथन से जमींदारों, सूदखोरों को संदेश देकर चेताया है कि समाज में सभी छोटे बड़े व्यक्ति समान हैं उनको अधिकार पहले ही दे देने चाहिए । वर्माजी के उपन्यासों में आदर्शों की झलक साफ दिखाई देती है । समाज में फैली बुराईयों को समाप्त करने के लिए उन्होंने कुछ तो स्वयं समाधान किया, कुछ लोगों के ऊपर छोड़ दिया । अत: लेखक के अनुसार जन-चेतना से ही समाज का उद्धार हो सकता है ।

गांवों और शहरों में फैले अंधविश्वास लोगों के दिलों में घर किये हुये हैं । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में इन अंधविश्वासों व पुराने विचारों को दूर करने तथा उसको मिथ्या बताने की कोशिश की । अन्ध-विश्वासों के मूल में ग्रामीणों की अशिक्षा ही है । इसीलिए पुराना विश्वास नये अविश्वास के साथ मिलकर और उलझ जाता है जैसे कि भूत-प्रेतों में विश्वास रखना, देवी को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के उपाय

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमर बेल, पृ॰-233.
2· डा॰ महेन्द्र भटनागर - समस्या मूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ॰-147.

करना । इसी सन्दर्भ में कमला गुप्ता लिखती है - "मानव जीवन लोक विश्वासों से भरा हुआ है । मनुष्य के पैदा होने से मृत्यु पर्यन्त ये विश्वास उसे जकड़े हुए है । प्रत्येक अंचल विशिष्ट का अपना स्थानीय देवता है, जिसके प्रति गांव वालों के मन में अपार श्रद्धा है एवं उससे सम्बन्धित अनेक रूढ़ियां प्रचलित है । उनकी बीमारियों के भौतिक नहीं अपितु दैवी कारण होते है और दैवी चिकित्सा के द्वारा ही वे रोग-मुक्त हो जाते है ।"[1] इन सभी अन्ध विश्वासों का वर्माजी ने विरोध किया । मिथ्या आडम्बरों से युक्त ये विश्वास लोगों को गुमराह करने में सफल रहते हैं । धन प्राप्ति के लिए "सोना" उपन्यास में - "सोना चीलों को मंगोडे खिलाती है जिससे भवानीमाता प्रसन्न होकर धन दे । रूपा गड़े धन की प्राप्ति के लिए लक्ष्मी जी की पूजा करती है । दिवाली को रात दिये जलाती है ।"[2] इसी तरह "लगन" उपन्यास में "रामा मनोवांछित फल पाने के लिए गांव के बाहर पीपल की खोख में एक पिन्डी आन के लिए रखती है । देवीसिंह भी एक पिन्डी उठाकर उसी खोख में दूसरी पिन्डी के बराबर रखता है ।"[3] ऐसे ही पूना अच्छा वर प्राप्त करने के लिए नित्य तुलसी की पूजा किया करती है सन्ध्या समय पीपल के नीचे दिया धर आया करती है ।"[4] ऐसे कई उदाहरण है जो पुरातनकाल से चले आ रहे है लोगों के दिलों में भय उत्पन्न कर देने में सफल रहते है । पुराने चले आ रहे अंधविश्वासों को अगर नहीं दूर किया तो समाज के लोगों की प्रगति न होकर पतन होने लगेगा । वर्माजी समाज में अंधविश्वासों तथा जातियता को मिटाने के लिए जीवन भर प्रयत्न करते रहे ।

---

1. डा॰ कमला गुप्ता - हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद, पृ॰-445.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ॰-70.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - लगन, पृ॰-51.
4. वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ॰-64.

(ख) राजनीतिक यथार्थ

वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक यथार्थ का चित्रण भी मिलता है । राजनीति पर ब्रजभूषण सिंह आदर्श के अनुसार "साहित्य समाज का द्रष्टा है, जीवन का व्याख्याता है, वह सामाजिक जीवन से अपने को विलग नहीं कर सकता । साहित्य और राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों एक दूसरे से तरंगित और प्रभावित होते हैं ।"[1] अरस्तू ने लिखा है कि - "मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है । राजनीति की जड़ें मनुष्य की भावना से जुड़ी हुई हैं । यही कारण है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति व्याप्त है । ग्रामीण समाज की राजनीति पारस्परिक दलबन्दी पंचायती चुनावों की अखाड़ेबाजी, किसान सभा, मजदूर सभा आदि विभिन्न रूपों में देखी जाती है।"[2] राजनीतिक चेतना गांवों में आई तो गरीब किसान मजदूर शोषण के विरुद्ध सचेत हुए और इससे वर्ग संघर्ष का जन्म हुआ । जनमानस में लोकतांत्रिक जीवनमूल्यों के प्रति आस्था का जन्म हुआ । समाजवाद युग की आवश्यकता के रूप में ग्रहण कर लिया गया । गांधीवाद जैसी विचारधाराओं के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति भी लोगों द्वारा हो रही थी । वर्माजी का उपन्यास"अचल मेरा कोई" में राजनीति के प्रति लोगों की भावनाओं को समझा गया । वे गांधीवाद का पूर्ण प्रतिनिधित्व अचल द्वारा करवाते हैं । सत्याग्रह आन्दोलन में जेल जाना आम बात हो गई थी । अचल कहता है मुझे सत्याग्रह आन्दोलन पर पूरा विश्वास है, यह"ब्रिटिश साम्राज्य या किसी भी अत्याचार को खतम करने का एक मात्र उपाय सत्याग्रह ही है ।"[3]

---

1. ब्रजभूषण सिंह आदर्श - हिन्दी के राजनीति उपन्यासों का अनुशीलन, पृ०-38.
2. डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ०-19.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ०-7.

वर्माजी स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे।स्त्रियों को राजनीति में भाग लेने की स्वतन्त्रता नारी जागरण होने में सहायक हुआ ।"अचल मेरा कोई" में कुन्ती बंधी हुई स्त्रियों को खोल देती है और पुलिस देखती रह जाती है।वह सरकारी नौकरी की आलोचना करती है तथा दारोगा को पशु समझती है ।"[1] ये चेतना शिक्षा के कारण आई जिसमें स्त्रियों में स्वयं को कमजोर न समझ कर पुरूषों के बराबर समझने का विचार आया । अत: यह उपन्यास सभी सामाजिक उपन्यासों से हट कर है।राजनीति में स्त्रियों को लाने की कल्पना करना उस समय में मुश्किल था लेकिन वर्माजी की कल्पना आज के समय में सत्य बन कर सामने आई है ।

जमींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद भी राजा, सामन्तों, जमींदारों ने अपने को राजनीति से अलग नहीं किया, बल्कि विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्ध बना लिये । ग्राम पंचायतों में ग्राम सभाओं में तथा सहकारी संस्थानों में अपना आधिपत्य बनाये रखना ही स्वयं का स्वाभिमान समझते थे । इसी सन्दर्भ में मनोहरश्याम जोशी कहते हैं - "सामन्ती व्यवस्था और तानाशाही में ही नहीं लोकतंत्र में भी सत्ता बहुत बड़ी चीज है ।"[2] अत: यह सामन्त लोग चुनाव में विजयी होने पर अपने को जमींदार से कम नहीं समझते थे । "अमर बेल" में देशराज का जमींदारी उन्मूलन कानून बनने के बाद सहकारी समिति का अध्यक्ष चुन लिये जाने पर उसके मन में अहं भाव तो रहता ही है । उसी का परिणाम है डाकू के द्वारा जनता पर अत्याचार करवाना । इससे यही साबित होता है कि गांवों की राजनीति स्वच्छ नहीं है । कारण गांवों में अत्याचार,अन्याय,शोषण,लूटपाट,मुकदमेंबाजी आदि फैली

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ·-219.
2· सम्पादकोय साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 30 जून, 1974.

हुई है । वर्माजी इन सभी बुराइयों को हटाने के लिए ईमानदार लोगों को सामने लाये जैसे डा॰ सनेही, टहलराम, जनक, "उदय-किरण" में मगन, उदय व किरण "कुण्डली-चक्र" में अजीत, "आहत" में दीप आदि लोगों ने समाज को सही राह दिखाने का प्रयत्न किया । परन्तु समाज में इन थोड़े से लोगों से उन्नति सम्भव नहीं है अत: समाज के लोगों द्वारा मिलकर कार्य करवाना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है । इसी कारण सरकार की आलोचना करते हुए मगन कहता है - "एक तरफ कुंवरपुरा के पाजियों के गुट है जो हमें सताने से कभी नहीं चूकते और दूसरी तरफ इन डाकूओं का गिरोह ... पुलिस सदा रखवाली कर नहीं सकती, आ ही कभी-कभी पाती है ।"[1] चुनावों में आपाधापी में अनेक भ्रष्टाचार होने से गांव का यह विचार हो गया है कि - "यह चुनाव क्या इन सबों को राक्षस बनाने के लिये कलियुग ले आया है ? क्या इसी को क्रांति कहते है । पागलपन का कुछ ऐसा दौर आया कि जैसा अमरपुर में कभी नहीं देखा गया था ।"[2] चुनाव में जीतने के लिए लोगों को पैसों से खरीदा जाता है । यह स्थिति शहरों में भी पाई जाती है । जातीयता के आधार पर चुनाव लड़े जाते है । जो समस्या वर्माजी ने अपने उपन्यासों में दिखाई है वह आज भी इस देश में समाज में पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है । ऐसा लगता है कि राजनीति जन सेवा करने का कार्य न रहकर एक शोषण करने वाला अत्याचारी गुट बन गया जो अपने स्वार्थों की सिद्दी के लिए घृणित से घृणित कार्य करने से भी नहीं डरते । इस तरह समाज में फैली रातनीतिक शासन प्रणाली को वर्माजी ने अपने उपन्यासों में सफलता से वर्णित किया ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - उदय किरण, पृ॰-12.
2· वन्दावनलाल वर्मा - आहत, पृ॰-42.

{ग} आर्थिक यथार्थ

भारत आर्थिक रूप से कभी उन्नत नहीं हुआ । भारतीय जनता किस कठिनाई से अपना जीवन व्यतीत करती है इसके उपरान्त भी कभी उच्चवर्ग ने इस ओर ध्यान नहीं दिया । जमींदारी व्यवस्था के फलस्वरूप सबसे अधिक शोषण किसानों का ही होता था । एक ओर जमींदार तथा उसके मातहत कर्मचारी तथा दूसरी तरफ छोटे-छोटे सरकारी आफिसर जैसे दारोगा, पटवारी आदि उनका शोषण करते थे । ऐसे में इन गरीबों की सुनने वाला कोई नहीं था । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ मुकुन्द द्विवेदी लिखते है - "लगान न चुकाने पर बेकारी, बेदखली, कुर्की के डर से किसानों को महाजन की शरण लेनी पड़ती थी, और एक बार जो महाजन के चंगुल में फंसता है, सारी जिन्दगी ब्याज चुकाते मर जाता । मूल की नौबत ही नहीं आती थी ।"[1] इस तरह चौतरफा आर्थिक शोषण से किसानों की जिन्दगी अत्यन्त नारकीय हो गई थी । कुण्डली चक्र के बौद्दा पैलू की स्थिति ऐसी ही थी । उनके पेट भरने के लिए अनाज नहीं है उन्हीं पर लगान चुका देने के लिए अत्याचार किया जाता है । भुजबल उनसे कहता है - "तुम लोग ऐसे थोड़े मानोगे । जब सिर पर जूते बरसेंगे तब होश ठिकाने आवेगा ... अगर दो दिन के भीतर लगान न दिया तो खाल उड़ा दूँगा ।"[2] इस तरह शोषण करने पर दिन प्रतिदिन किसान इन लोगों के अत्याचार सहन करता रहता था । "अमर-बेल" में देशराज का कारिन्दा किसानों को तोलने में डांडी मारकर कम देता है । और अनेक तरह से कर वसूल करता है । इसी सन्दर्भ में डा॰ पट्टाभि किसानों की दशा का वर्णन करते हुए लिखते है कि -

---

1. डॉ॰ मुकुन्द द्विवेदी - हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना, पृ॰-51.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - कुण्डली चक्र, पृ॰-50.

"युक्त प्रान्त में किसानों की अधिकांशत: ताल्लुकेदार व जमींदारों के अधीनस्थ किसानों की ··· आर्थिक दशा बहुत खराब हो रही थी ··· अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानों पर आतंक का राज्य छा गया और उसके साथ क्रूरता पर क्रूरता होने लगी ।"[1] अर्थात इन सभी परिस्थितियों का लेखक ने तथा उनके युग के लेखकों ने बड़ी खूबी से चित्रण किया । "प्रेम की भेंट" उपन्यास में लेखक ने धीरज के माध्यम से अकाल से पीड़ित किसानों का व उनकी कठिनाइयों का चित्रण किया है कैसे उन्हें आश्रित होकर जीना पड़ता है ? वर्माजी ने इसका विरोध किया और पंचवर्षीय योजना एवं सहकारी समितियों के ऊपर बल दिया । समाज के दुर्बल लोगों, छोटे किसानों और भूमिहीन मजदूरों को योजना से लाभ पहुँचाना ग्रामीण अंचलों में अधिकाधिक रोजगार की स्थिति लाना आदि "अमर बेल","उदय-किरण" जैसे उपन्यास में देखने को मिलता है । विवेकी राय के अनुसार - "कुछ तीव्र बदलाव और विकास वर्तमान परिवर्तित कृषि-नीति के कारण गांवों में आता दीख रहा ··· सहकारी समितियों से बीज, खाद इत्यादि बांटते थे जो खेती करते हैं । इतना होने पर भी इन समितियों का विरोध बहुत से बड़े लोग करते और करवाते थे । जिससे उनका नुकसान न हो ।" वर्माजी ने अपने उपन्यासों में सहकारिता का इतना अधिक महत्व बताया है कि उपन्यास सहकारी समिति पर ही केन्द्रित हो गया है ।

गांव में मजदूरों की हालत इतनी शोचनीय थी जितनी किसानों की । मजदूर गांव छोड़कर शहर की ओर भागत नज़र आते थे लेकिन शहर में भी आर्थिक शोषण इतना ही अधिक था ।"कभी न कभी" उपन्यास में

---

1. डॉ॰ पट्टाभि - कांग्रेस का इतिहास, पृ॰-४०५

लछमन व देवजू के माध्यम से सारे मज़दूर वर्ग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है । "आहत", "सोना" उपन्यास में सामान्य व्यक्ति की आर्थिक स्थिति की दशा इतनी खराब है कि रूपा की शादी पर उसके ससुराल से खराब आर्थिक दशा में लोग क्या-क्या नहीं करते, इसकी झलक "संगम" में मिलती है ।"अभाव में संपतलाल को स्त्री का रूप धरकर 500 रूपये में अपने को बेचना पड़ा ।"[1] इस प्रकार कर्ज से डूबे व्यक्ति को चाहे वह किसान हो, मज़दूर हो या निम्न वर्ग का, उनको अनेक ऐसे काम करने पड़ते हैं जो वो नहीं चाहते हैं । वर्माजी ने इस समस्या के हल के लिए शिक्षा व नारी शिक्षा पर जोर दिया और कहा कि जबतक स्त्रियों को शिक्षा नहीं दी जायेगी तबतक वे आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नहीं हो सकेंगी । इसलिए वर्माजी ने अपने सभी उपन्यासों में नारी को सदा उच्च स्थान दिया । समाज के लोगों को यह सन्देश दिया कि स्त्रियों को साथ लेकर चलने से ही समाज, देश व लोगों की भलाई है तभी देश को आर्थिक समस्या का सामना करने में मदद मिलेगी । इस तरह लेखक ने अपने प्रगतिशील विचार लोगों तक फैलाये ।

(घ) सांस्कृतिक यथार्थ

"मानव इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ उस इतिहास का, जिसका सम्बन्ध मनुष्य के बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास से है - पुकार-पुकार कर कह रहा है कि त्याग-भावना, सेवा-भावना ही जीवन की अडिग आधार-शिलाएं हैं और हो सकती हैं ।"[2] यह बात सही है कि संस्कृति के अन्तर्गत सभी बाते आ जाती हैं जिनका किसी व्यक्ति के

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - संगम, पृ.--231.
2. राजेन्द्र प्रसाद - साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, पृ.--119.

व्यक्तित्व के विकास में हाथ होता है । व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके बल शरीर मात्र का सूचक नहीं होता वरन् उसका निर्माण उसके शरीर के साथ-साथ उसकी आत्मा, बुद्धि, वाणी, मन इस सभी से मिलकर होता है । वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की झलक दिखाई देती है । उनके उपन्यासों में सामाजिक जीवन की प्रथाओं, परम्पराओं, संस्कारों एवं विश्वासों के यथार्थ जीवन की झलक मिलती है । उनके उपन्यासों - 'कुण्डली चक्र', 'कभी न कभी', 'सोना', 'भुवन विक्रम', 'अमर-बेल' में लोग संस्कृति की झांकी दिखाई देती है ।

सभी कलाओं का केन्द्र मानव जीवन है । साहित्य के लिए भी यह मान्यता पूर्णतः सत्य है । साहित्य मानव संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है । बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा की साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है । हमारी भारतीय संस्कृति में ये गुण हैं, इसीलिए उसकी महानता बताते हुए दिनकर जी लिखते हैं - "सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान समझी जानी चाहिए जिसे विश्व के अधिक से अधिक देशों, अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज़्ब करके उन्हें पचा करके बड़े से बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है । भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में सबसे महान् है, क्योंकि यहाँ की सामाजिक संस्कृति में अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियां पची हुई है ।"[1] दिनकर जी के विचारों से हमें लगता है कि हमारी संस्कृति हम सबकी राष्ट्रीय धरोहर है उसकी रक्षा करना अनिवार्य है उसी से राष्ट्र की सामाजिक एकता, सामाजिक समृद्धि सम्भव है ।

---

1. रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ.-651.

वर्माजी ने भारतीय संस्कृति के पुजारी होने के साथ-साथ नैतिक मर्यादाओं को भी ध्यान में रखा । वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध, विद्रोह तथा पीड़ित व्यक्तियों की दशा में सुधार लाने का अधिक प्रयास किया । वर्माजी ने सांस्कृतिक यथार्थ को बखूबी समाज के सामने रखा । समाज में क्या हो रहा है क्या होना चाहिए इस पर अपने उपन्यासों में बताने की कोशिश की है । वर्माजी का उपन्यास "कभी न कभी" में मजदूरों की अभावग्रस्त जीवन में भी प्रेम व त्याग की भावना दर्शा कर ग्राम-संस्कृति के आदर्श की ओर संकेत किया है । देवजू ने अपने विवाह का विचार त्याग कर लछमन के साथ लीला का विवाह करवा के त्याग व सौहार्दय की भावना का परिचय दिया है । इसी सन्दर्भ में डॉ॰ सच्चिदानन्द राय लिखते है - "संस्कृति हमारे अर्जित संस्कारों, अन्त:शक्तियों, मूल-निरूपण की क्रियाओं, चेतना के सूक्ष्म विधायक तत्वों, रहन-सहन की पद्धतियों और जीवन के प्रच्छन्न बोधों तथा प्रतिचेष्टाओं पर पर्याप्त प्रकाश डालती है और इन तत्वों का उपन्यास से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है ।"[1] अत: यह बात सत्य है कि संस्कृति एक सामाजिक प्रतिक्रिया है इसलिए इसमें मानवीय सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग, आशा-निराशा का वर्णन यथार्थ रूप से होता है ।

"अचल मेरा कोई" में वर्माजी ने कुन्ती व निशा के माध्यम से संगीत कला को महत्व दिया है । वे नृत्य कला को भी जीवन में उत्साह व ताजगी के लिए जरूरी मानते है । तिजुआ के नाच में ग्रामीणों को स्वर्गीय आनन्द मिलता है । "अमर-बेल" उपन्यास में शहरी लड़की अंजना सारंगी के साथ गाती हुई ऐसी लगती है जैसे "सारंगी अंजना के

1· डॉ॰ सच्चिदानन्द राय - हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना, पृ॰-आमुख ।

गान का साथ रो-रोकर दे रही थी । मृदंग अलग था । मजीरे वाला अपनी धुन में मस्त । परन्तु अंजना को इनमें से किसी की परवाह न थी । वह अपनी कला में ध्यान-मग्न थी और अपना प्रदर्शन कौशल के साथ कर रही थी ।"[1] इस संगीत में नगर व गांव कीसंस्कृति की यथार्थ झलक मिलती है । "अचल मेरा कोई" उपन्यास में गांव का नाचने वाला तिजुआ जब घूँघट डाल कर विविध प्रकार से मटकता है उसको देखकर गांव वाले खुश होते है परन्तु शहर के लोग क्या सोच रहे है - "अचल ग्लानि से डूबने लगा । कुन्ती कभी क्षीण मुस्कराहट द्वारा मानो वह कह रही थी - बिलकुल भद्दा है, परन्तु तुम लोगों का मन रखने के लिए सहन कर रही हूँ । निशा को लग रहा था मानो उसके छहों भाई और पिताजी दरवाजे पर खड़े-खड़े देख रहे हों कि वह किस प्रकार के कलाकारों के बीच में बैठी है । पसीने में डूबी जा रही थी ।"[2] उपरोक्त कथन से वर्माजी ने ग्रामीण व नगरीय अभिजात वर्ग के बीच की गहरी खाई दिखाई है । क्योंकि ग्रामीण समाज की कला खुले आकाश तले फूलती-फलती है परन्तु शहरों की कला बन्द कमरे में होती है । लोक-नृत्य व जन-उत्सवों में धरती की सुगंध और जीवन के उल्लास का सच्चा रूप वर्माजी ने प्रगट किया है । दशहरा, दिवाली, होली आदि त्योहारों पर होते लोकनृत्य व रासलीला का वर्णन वर्माजी ने अपने उपन्यासों में यथार्थ रूप से किया है ।

"सोना" उपन्यास में वर्माजी ने अन्धविश्वासों का वर्णन किया कि धन प्राप्त करने के लिए जनता किस तरह पूजा करती - "राजा धुरन्धर सोना को कहता है - चीलों को मंगोडे खिलाने के समय भवानी माता से धन मांगना मेरी और अपनी कुशलक्षेम चाहना । सब प्रकार का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ०--106.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ०--116

सुख और पुत्र मांगना ।"[1] इसी तरह राजा उल्लुओं की पूजा करता है और रूपा लक्ष्मी जी की । वर्माजी समाज में फैले इस अन्ध-विश्वास को हटाना चाहते है और परिश्रम को महत्व देना चाहते है । क्योंकि संस्कृति कभी अन्ध-विश्वास को महत्व नहीं देती है ।

वर्माजी ने नारी को शक्ति के रूप मे दिखाया है । समाज में पतिव्रता नारी का महत्व अधिक है क्योंकि भारतीय संस्कृति का इतिहास यह बताता है । इसी कारण वर्माजी ने रामा, जानकी, रतन, मंजरी आदि स्त्रियों की प्रशंसा की । भारतीय संस्कृति के मूल-सिद्धान्तों ने इस देश के साहित्य को वैदिक युग से आधुनिककाल तक बराबर प्रभावित किया है । युगीन परिस्थितियों एवं बाहरी प्रभावों से प्रभावित होकर हमारे समाज में बहुत कुछ परिवर्तन आया है लेकिन अभी भी हमारी संस्कृति में अनेक गुण हैं । मनुष्य के संस्कार, रीति-रिवाजों का बन्धन अभी भी वैसा ही है । वर्माजी का जीवन के प्रति आशावादिता का दृष्टिकोण है । उनमें जन-कल्याण की भावना बड़ी सजग है और जीवन के यथार्थ मे आदर्श का गहरा मेल करना उनकी रुचि है । इसलिए उनके उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का आधार प्रेम, स्नेह, सहजता, नि:स्वार्थता आदि के गुण मिलते हैं । बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक यथार्थ वर्माजी ने अपने पात्रों में दिखाने की चेष्टा की है । त्योहारों का वर्णन वर्माजी ने यथार्थ रूप से किया है "अमर-बेल" उपन्यास में लिखते हैं - "गोवर्द्धन की पूजा के उपरान्त मौनिये मौनव्रतधारी ढोल और मंजीरे बजाने वालों के साथ गश्त लगाने के लिये निकले । मौनिये 12 वर्ष तक हर दिवाली की पड़वा को दिनभर मौन साधते है ।"[2]

1· वृन्दावनलाल वर्मा - सोना, पृ·-69.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·-121.

इस तरह वर्माजी अपने उपन्यासों में सत्यं-शिवं-सुन्दरं को दृष्टि में रखकर अपनी रचना का विकास करते हैं । सांस्कृतिक यथार्थ को प्रस्तुत करने में उनके गांधीवादी विचार उपन्यासों के पात्रों में देखे जा सकते हैं ।

वर्तमान युग में भारतीय मनुष्य पाश्चात्य सभ्यता का शिकार होता जा रहा है । आज का सबसे बड़ा संकट यही है कि हमारी आस्था और हमारे अच्छे संस्कारों में अलगाव सा आने लगा जिसके कारण हमारे आदर्शों पर बुरा असर होने लगा है । इसी अलगाव को दूर करने का काम वर्माजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है । भारतीय संस्कृति के साथ बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक चेतना का यथार्थरूप से वर्णन कर लोगों के हृदय में अपने देश की संस्कृति के प्रति गौरव की भावना भरने का काम किया है ।

.....

पंचम अध्याय

ऐतिहासिक पात्र और उपन्यास के चरित्र

1. ऐतिहासिक पात्रों के अध्ययन से इतिहास की प्रस्तुति

वृन्दावनलाल वर्मा को ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में विशेष रूप से सफलता मिली है । ऐतिहासिक उपन्यास ही उनकी प्रसिद्धी का कारण भी है । वर्माजी ने ऐसे व्यक्तियों को पात्र बनाया है जो इतिहास में विलुप्त हो चुके है । उन्होंने अतीत की संस्कृति की जो झांकी दिखाने का प्रयास किया है उससे प्रत्येक जिज्ञासु को इतिहास को समझने और अतीत की महानता को जानने का अवसर मिलता है । वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय प्राय: बुन्देलखण्ड के प्राचीन गौरवमय ऐतिहासिक चरित्र हैं । ऐतिहासिक घटनाओं एवं पात्रों को कल्पना के संयोग से प्रभावशाली बनाने में माहिर होने की वज़ह से ही वर्माजी को सफलता मिली है । वर्माजी के उपन्यासों में इतिहास के साथ-साथ कल्पना का समावेश भी है । उन्होंने देशकाल अथवा दृश्य-विधान का ध्यान रखते हुये सुन्दर व यथार्थ वातावरण का निर्माण किया है और बुन्देलखण्ड को अमर बना दिया है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के सत्य की रक्षा का प्रयत्न किया गया है । इसी से ऐतिहासिक सामग्रियों की खोज इतिहास की पुस्तकों, परवानों, रोजनामचों, पट्टों इत्यादि के माध्यम से की गई है । जहाँ ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी, वहाँ जनश्रुतियों एवं परम्पराओं का उन्होंने सहारा लिया है ।

ऐतिहासिक पात्र अथवा घटना से सम्बद्ध स्थान पर स्वयं जाकर वहां कुछ दिन रहकर उस स्थान का उन्होंने अध्ययन किया है । उनकी पूरी जानकारी के बदौलत ही ऐतिहासिक कृति लिखते थे । इसीलिए ऐतिहासिक सत्य की रक्षा ईमानदार से हो सकी है । उनकी लम्बी-लम्बी भूमिकाएं, इतिहास प्रसिद्ध पात्रों व घटनाओं का ऐतिहासिक होने का प्रमाण देती हैं । "गढ़ कुण्डार","झांसी की रानी","माधव जी सिंधिया", "मृगनयनी" आदि में ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन ज्यादा है । "गढ़ कुण्डार" उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों एवं देश-काल के चित्रण में यथार्थवादी पद्धति का उपयोग करके वर्माजी ने काल विशेष को साकार सा कर दिया है । "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" नामक ऐतिहासिक उपन्यास वर्माजी की सम्पूर्ण कृतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है । हिन्दी साहित्य संसार ने इस कृति का पर्याप्त स्वागत भी किया है । यहाँ हम वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के चरित्रों का सामान्य परिचय देने का प्रयास करेंगे ।

§1§ पात्रों का वर्गीकरण

क. पुरूष पात्र

वर्माजी के उपन्यासों में पुरूष पात्रों का चरित्र अलग-अलग रूपों में देखा जा सकता है । राजाओं में कुछ तो योग्य व कुशल शासक होने से उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैलती है । परन्तु बहुत से राजा व बादशाह ऐसे भी हैं, जो अत्यन्त विलासी व अत्याचारी होने से जन-साधारण को दु:खी करते हैं । मंत्री लोग अपने स्वामी को कठपुतली बनाकर रखते है तथा शासन व्यवस्था का काम स्वयं चलाने की चेष्टा करते हैं ।

पुरूषों में अनेक प्रेम करने वाले तथा सहृदय भी हैं जो स्त्रियों को देवी के रूप में मानते है । इनमें सरदार, सूबेदार, पटेल हैं जिनके अन्दर देश-प्रेम, त्याग, तथा वीरता के गुण देखे जा सकते है । उपन्यास में कुछ ऐसे पात्र भी है जो देशद्रोही तथा विश्वासघाती है । निम्नवर्ग के पात्र अपने कार्य से स्वामी भक्त तथा ईमानदार होने का प्रमाण देते हैं । अत: ऐतिहासिक उपन्यासों के अलग-अलग पुरूषों के चरित्रों का विश्लेषण करने पर उनके अन्दर की अच्छाई व बुराई देखी जा सकती है ।

§अ§ उच्च्य वर्ग के पात्र

वर्माजी ने अपने सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण अपनी अनुभवशील दृष्टि से किया है । वर्माजी जब राजपुत्रों के राज्याभिषेक के बाद का वर्णन करते हुए यह दिखलाते है कि - सभी राजा या बादशाह अपने पिता के अवगुण ग्रहण कर इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे यह सब बचपन से ही उनको सिखाया गया है । दो-चार राजाओं को छोड़ बाकी सभी राजा, महाराजा तथा बादशाह विलासिता में डूबे रहते है । जनकल्याण की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देते । वर्माजी ने इन पात्रों का वर्णन बड़ा ही मनोवैज्ञानिक रूप से किया है । अधिकतर राजा व बादशाह अपनी विलासिता के कारण झक्की और विवेक शून्य रहते हैं, जैसे उनका आत्मबल मानों जर्जर हो गया हो । ये पात्र अपनी प्रजा को शान्ति के बदले असंतोष ही देते हैं ।

हुरमतसिंह शराबी, क्रोधी व हठी है । अपने पुत्र नागदेव का विवाह सोहनपाल की पुत्री से करवाना चाहता है । हुरमतसिंह कहते हैं अगर सोहनपाल विवाह के लिए न माने तो उसको पत्र लिख देना - "कि कोई सहायता न दी जायगी ।"[1] इस कथन से उसके हठी होने तथा

1· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ·-342.

अहंकारी होने का प्रमाण मिलता है । इसी तरह नायकसिंह यौन प्यास से पागल रहता है । वह अपने सेनापति लोचनसिंह को कहता है - "उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह । हम उसकी रक्षा करेंगे ।"[1] नायकसिंह का रक्षा से अभिप्राय वासनावृत्ति से ही है । कुमुद की सुन्दरता के पीछे पागलपन और अधिक बढ़ जाता है । वृद्धा अवस्था में होने के साथ वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ भी कुमुद से शादी करने का विचार रखता है । इस प्रकार वह विलासी कामुक और पतनशील प्रवृत्ति का राजा है । अपनी वासना रूपी भूख मिटाने के लिए वह कुछ भी कर सकता है ।

गंगाधरराव श्रृंगार के पुजारी तथा विलासिता युक्त होते हैं । परन्तु साथ-साथ ललित कलाओं व साहित्य में रुचि रखते हैं । उन्होंने अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ, वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, काव्य इत्यादि पुस्तकें दूर-दूर से मंगवा कर अपने पुस्तकालय में इकटठी की । परन्तु गंगाधरराव अत्यन्त उग्र स्वभाव के होने से अपराधियों को कठोर दण्ड देते हैं, उनके क्रोध का एक उदाहरण है - "चौबदार को हुक्म दिया कि जनेऊ के आकार का तार गर्म करके यह जनेऊ पहनाओ एवं बिच्छू से कटवाना ।"[2] यह उनके क्रोधी स्वभाव का परिचायक है । गंगाधरराव असंतोष और जागरण काल में भी नाटक मंडलियों, वेश्याओं व श्रृंगारिक कविताओं में अधिक आनन्द लेने से साधारण जनता पर अधिक ध्यान न दे पाते थे । लक्ष्मीबाई से विवाह होने के बाद उनके स्वभाव में कुछ परिवर्तन आया । उनके हृदय में देश-प्रेम की भावना होने से, देश की परतन्त्रता पर उनका मन दुःखी रहता था । इसी से कप्तान गार्डन को लक्ष्य करते हुए वे

1· वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ·-30.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·-93.

कहते हैं - "साहब मैं तो एक छोटा-सा संस्थापक हूँ । तो भी चाहूँ तो बहुत कुछ कर सकता हूँ । लेकिन सभी राजाओं ने चूड़ियां पहन रक्खी है । क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि अपने ही देश में हम सब कैद है ।"[1] वे नारी की स्वतंत्रता के पूर्ण पक्षपाती न होने पर भी रानी की महानता और वीरता को हृदय से समझते थे ।

लगभग सभी राजा, बादशाह अत्याचारी होने के साथ-साथ वीर योद्धा होने से युद्ध भूमि में शत्रुओं के छक्के छुड़ा देने के लिए तैयार रहते हैं । गंगाधरराव अपने किसी मंत्री के नियंत्रण में नहीं रहे, परन्तु बहुत राजा अपने चालाक मंत्रियों के हाथ की कठपुतली बने हुये थे । मुहम्मदशाह का चरित्र विलासी व शराबी का था । इससे वे अपने राज्य की शासन व्यवस्था पर ध्यान नहीं दे पाते थे । इनके चरित्र के बारे में सियारामशरण प्रसाद लिखते है कि - "मुहम्मदशाह की विलासप्रियता, शासन में अनुशासनहीनता, भारतवर्ष में फैली तदयुगीन अराजकता, लूट-पाट, मराठों, जाट, निजाम आदि के परस्पर द्वेषपूर्ण व्यवहार के सभी पक्षों का चित्रण है ।"[2] "सोती आग" उपन्यास के पात्रों में मुहम्मदशाह दिल्ली का विलासी बादशाह है, उसने अपनी सारी शक्ति कोकीजू के हाथ में दे रखी थी । एक बार बादशाह अपने वजीर को कहता है - "अगर तुमने गाना-बजाना सीखा होता तो अक्ल जल्दी काम करती, और जो मेरी मोहर है वो कोकीजू के पास है वो लगा देगी ।"[3] उनके हृदय में मानवीय भावना का अभाव दिखाई देता है । दिल्ली में झगड़े व खून खराबा होने पर अपने वजीर से कहता है - "उतने बेहूदे कम हो जायेंगे । दुनिया का बोझ कुछ हल्का हो जायगा ।"[4] उनका चरित्र एक गिरे हुये व्यक्ति की

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·-140.
2· सियारामशरण प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा, पृ·-159.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ·-81.
4· वही, पृ·-87.

तरह है जो नीचे गिरता ही चला जाता है, फिर कभी नहीं उठता ।

शिहाब, नजीब, अब्दाली विदेशी लुटेरे है । ये लोग समय-समय पर आक्रमण करके तथा लूटमार करके भारतीयों पर अत्याचार करते है । शिहाबुद्दीन एक लम्पट क्रूर एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति है इस उदाहरण से उसका चरित्र स्पष्ट हो जाता है - "शिहाब में अधिकारों की भूख, प्यास, लोभ और शारीरिक निर्बलता के साथ युद्ध का साहस भी था । वह अदूरदर्शी, विवेक भ्रष्ट, घमंडी परन्तु अपने हठ से न हटने वाला व्यक्ति था ।"[1] अब्दाली इतना अत्याचारी था कि इब्राहीम खां गार्दी के टुकड़े-टुकड़े करवा देता है । क्योंकि गार्दी उससे कहता है - "वह मुसलमान भी उसकी दृष्टि में मुसलमान कहलाने लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ कोशिश करने के लिए बरगलावे ।"[2] अब्दाली ऐसा नीच व्यक्ति है जो अपने स्वार्थ के लिए अपनी जाति के व्यक्ति को मरवा डालता है । नजीब के अन्दर कपट भरा हुआ होने से सफदरजंग के पूछे जाने पर कि तुम कौन से तबेले से निकले हो तो उसने अपने मन में कहा - "उस तबेले से निकला हूं जिसमें आग के घोड़े बंधे रहते है ।"[3] नजीब इतना महत्वाकांक्षी है कि जो भी उसके रास्ते का कांटा बनता है उन सभी का कत्ल करवा देता है । वह दिल्ली का बादशाह स्वयं बन बैठता है । इन पात्रों के विषय में डॉ॰ रामनारायण सिंह लिखते है - "शिहाब, नजीब, अब्दाली आदि ऐसे पात्र है जिनके प्रति पाठक के हृदय में तीव्र घृणा पैदा होती है और यही अपनी लेखनी के लिए लेखक साधुवाद ग्रहण करने का अधिकारी हो जाता है ।"[4]

1· वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ॰-49.
2· वही, पृ॰-27.
3· वही, पृ॰-256.
4· डॉ॰ रामनारायण सिंह "मधुर" - हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-81.

दलीपसिंह का चरित्र इसमें सबसे अधिक जटिल और गुत्थियों से उलझा हुआ है । इनके चरित्र-चित्रण में लेखक ने - "अपने संपूर्ण अनुभवों, प्राणीशास्त्र का ज्ञान तथा सुदृढ़ डाक्टरों का सफल सहारा लिया है ।"[1] क्योंकि दलीपसिंह का पहलेवाला चरित्र अत्यधिक क्रोधी दिखाया है । क्रोध के वशीभूत होकर डरू के भाई की हत्या बिना कारण जाने ही कर देता है । जिस जगह चोट पहले लगी थी उसी जगह चोट लगने से उनकी पूर्व स्मृतियाँ तो लौटती हैं साथ-साथ वर्तमान स्मृतियाँ भी रहती हैं । दूसरा चरित्र गुसाइयों के सत्संग की छाप से उनके हृदय में उदारता की भावना आ जाती है । लेकिन दलीपसिंह का भाई मानसिंह लालची व कामुक है । दलीपसिंह की पत्नी कलावती को अपनी पत्नी बनाता है । क्योंकि ये दोनों मिलकर दलीपसिंह को जहर देकर मारते हैं । कलावती के बाद ललिता को अपनी हवस का शिकार बनाता है । कचनार को अपनाने के पहले ही वह भाग कर गुसाईयों की शरण में जाती है ।

मानसिंह {मृगनयनी} को संगीत व भवन निर्माण का शौक था । इसी कारण वे अपने महल में संगीत गोष्ठियों का आयोजन करते रहते थे । राजा मानसिंह कहते हैं - "राज्य है काहे के लिए ; प्रजा-पालन, कला की रक्षा और बढ़ोत्तरी के ही लिए न ? प्रजा और कला दोनों के लिए हमें अपने प्राण दे देने के लिए तैयार रहना चाहिए ।"[2] वे जाति की संकीर्णता को न मानते हुये लाखी और अटल का विवाह करवाते हैं । मानसिंह {मृगनयनी} अपनी प्रजा की भलाई तथा उनके साथ उदारता का व्यवहार करते थे । रात को स्वयं वेश-बदलकर घूमते तथा जनता के कष्टों को देखने का प्रयत्न करते । उस समय के आदर्श राजा के रूप में हमारे सामने आते हैं ।

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, परिचय.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.-159.

माधव जी सिंधिया, मुसाहिब जू व भुवन-विक्रम अपनी अलग पहचान लेकर हमारे सामने आये हैं । तात्यां टोपे, खुदाबख्स, जवाहरसिंह, कुंजरसिंह, लोचनसिंह व देवीसिंह के चरित्र अलग-अलग उभर कर सामने आये । माधव जी सिंधिया विनम्र, साहसी, दूरदर्शी और विचारवान राजनीतिज्ञ हैं । माधवजी का स्वप्न है स्वराज्य की स्थापना करना । उनके चरित्र की स्थापना डॉ॰ कृष्णा अवस्थी के अनुसार - "माधव जी सिंधिया युग की क्षुद्र स्वार्थों में घुटती राजनीति से ऊपर उठकर एक सच्चे राजदर्शी की भाँति भारत की अनेकता में बिखरी विविध शक्तियों की सशक्त इकाई बनाने का प्रयास करने वालों में से एक, बल्कि उस युग में तो एक मात्र व्यक्ति थे ।"[1] उनके अन्दर अभिमान की भावना नहीं थी और न ही राज्यलिप्सा की चाह थी । इसी कारण माधव जी ने कभी भी स्वयं को राजा के रूप में नहीं समझा, बल्कि अपने आप को पटेल ही कहते थे । माधव जी सभी धर्मों का सम्मान करते हैं । उन्होंने अपनी सेना में रानेखां को सेनानायक बनाया, यह उनकी उदारवृत्ति का ही परिचायक है । राष्ट्रीयता के मूल्यों को महत्व देते हुए माधव जी कहते हैं - "अंग्रेज सरीखे परदेशियों से जो आगे चलकर हमें दाब सकते हैं, इस देश को बचाना चाहता हूं ।"[2] वे रणकौशल व व्यवहार पटुता में निपुण थे, इसीलिए वे भाऊ से कहते हैं - "शत्रु चाहे पराजित हो चाहे विजेता उसे एक क्षण भी चैन नहीं लेने देना चाहिये ।"[3] माधव जी देश, राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के रक्षक थे । अत: उनका चरित्र उच्चकोटि का था ।

1• डॉ॰ कृष्णा अवस्थी - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰-337.

2• वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ॰-438.

3• वही, पृ॰-220.

मुसाहिब जू अपने युग का ऐसा सामन्त है जिसके हृदय में ऊँच-नीच की भावना नहीं थी । वह देशभक्त होने के साथ स्वामीभक्त भी है । सेवा की भावना रखने से घर आये मेहमानों को पहले खाना खिलाते है, उसके बाद स्वयं खाते है । यह गुण उनके चरित्र को उज्ज्वल बनाने में सहायक होता है । नीची जाति के लोगों को भरपूर प्यार करते हैं, तथा वे लोग भी मुसाहिब जू के लिए अपने प्राण देने को तैयार रहते हैं । मुसाहिब जू का चरित्र उस समय ऊँचा उठता दिखाई देता है, जब उसे केशर का शरबत मिलता है और सैनिकों को पानी, उसी समय वे कहते हैं - "यह बहुत बुरा हुआ । जो कुछ हो, सबके लिए एक-सा होना चाहिए । मेरा जीवन मेरे सैनिकों से ही सार्थक है ।"[1] उनकी आदर्शवादी व्यवस्था से ही सभी लोग उनकी इज्जत करते थे ।

रोमक और उनका पुत्र भुवन-विक्रम, आचार्य मेघ तथा धौम्य ऋषि वैदिक युग के पात्र है । रोमक उदार हृदय होते हुये भी जनता की भूमि छीनने की आज्ञा देते हैं, वे कहते है - "ये भूमिया मैंने या मेरे पुरखों ने ही तो दी थीं तुम्हें । उन्होंने दस्युओं और भागे हुए दासों से डाके डलवाना शुरू कर दिया ।"[2] इतना ही नहीं रोमक ने शूद्र कपिंजल की हत्या करने तक तैयार हो जाते हैं । उनके बेटे द्वारा व धौम्य ऋषि के उपदेशों से रोमक के जीवन में परिवर्तन हो जाता है । उनके प्रगतिशील विचारों की झलक भी मिलती है जैसे रोमक कहते हैं - "मैं दास प्रथा को अच्छा नहीं समझता हूँ । हमारे यहाँ कहा है कि ऊपर उड़ना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है ।"[3] लेकिन रोमक का पुत्र भुवन विक्रम ऋषि के आश्रम में रहकर लोक भावना को

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मुसाहिब जू, पृ.- 12
2. वही, भुवन विक्रम, पृ.-100.
3. वही, पृ.- 27.

समझा । हृदय में दया, सहिष्णुता व उदारता की भावना रखने से उसके अन्दर ऊँच-नीच की भावना नहीं थी । दर्द से पीड़ित कपिंजल को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए कहता है - "मैं तुम्हें घोड़े पर रखकर लिए चलता हूँ वैद्य से उपचार कराऊँगा ।"[1] उसके चरित्र में आदर्श की भावना होने से वह गुरू, पिता का आदर करता है । गुरू की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा समझ कर पालन करता है ।

आचार्य मेघ और धौम्य ऋषि के विचारों में अन्तर दिखाई देता है । धौम्य ऋषि पुराने रीति-रिवाजों व परम्पराओं से अलग प्रगतिवादी विचारों वाले थे । उन्होंने अपने आश्रम में छोटे-बड़े व ऊँच-नीच की भावनाओं को खत्म कर समानता की भावना को अपनाया । अतः उनके आश्रम में भुवन-विक्रम शिक्षा ग्रहण करता है तो शूद्र कपिंजल को भी शिक्षा दी जाती है । लेकिन आचार्य मेघ धौम्य ऋषि के विपरीत विचार रखते हैं । वे शूद्रों के साथ उदारता स्वीकार नहीं करते । भुवन कपिंजल पर दया करता है तो मेघ कहते हैं - "इस शूद्र से तेरा क्या नाता है ।"[2] जब भुवन उत्तर देता है - "केवल धर्म का ।"[3] इस उत्तर को सुन आचार्य मेघ को क्रोध आता है वे शाप देने लगते हैं । मेघ के ही षडयंत्रों से भुवन के पिता को राजगद्दी से हटा दिया जाता है । उनका चरित्र अत्यन्त क्रोधी, क्रूर तथा कठोर हृदय लिए हमारे सामने आता है ।

नागदेव, अग्निदेव, कुंजरसिंह तथा लोचनसिंह आदि वीर तथा योग्य व्यक्ति थे । लेकिन नागदेव का प्रेम में अंधा होने पर तथा अग्निदत्त का अपमान करना उसके व्यक्तित्व की दुर्बलता ही कह सकते हैं । वचन का पालन न करने से उसके स्वार्थी होने का अंदेशा होने लगता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.-17.
2. वही, पृ.-12.
3. वही, पृ.-14.

अग्निदत्त नाग से अपमानित होकर राज्य त्याग देता है, परन्तु उसके हृदय में खंगारों के नाश करने की आग सुलगती रहती है । अन्त में अग्निदत्त का प्रण पूरा होता है । लोचनसिंह वीर होने के साथ सनकी स्वभाव के लिए विख्यात था । वचन का पक्का था और लड़ाई में जी-जान से जूझता था । वह राजा से कहता है - "मैं अपनी तलवार की नोंक से कोस भर पहुँच ... नदी तो क्या वेतवा को भी खोद सकता हूँ ।"[1] राजाज्ञा पालन करना उसका पहला कर्तव्य था । वह बुराई सुनने का आदि नहीं था न चापलूसी करना उसको आता । राजा के कुछ कहने पर वह कहता है - "ऐसे कृतघ्न राजा के राज्य में जो रहे, उसे धिक्कार है । यह पड़ी है पत्थरों पर तुम्हारी चामुण्डाराई ।"[2] यह उसके अभिमान का प्रतीक है । वह वीर योद्धा होते हुये भी उसके अन्दर गहरी सोच समझ नहीं है । कोई भी काम जल्दी अपनी वीरता से तोलता है, यही नासमझी उसका अवगुण है ।

देवीसिंह गरीब बुन्देला ठाकुर है । उसकी वीरता पर नायक सिंह प्रसन्न होता है, क्योंकि वह दूल्हा बना होने पर भी राजा नायक सिंह की रक्षा करता है । वह लड़ता हुआ कहता है - "काकाजू एक हाथ मोरोई देखने में आवे ।"[3] नायकसिंह के बाद देवीसिंह अनुचित तरीके से राज्य प्राप्त करता है । उसके अन्दर सामन्ती प्रवृत्ति ज्यादा बढ़ जाती है । जिससे विवाह होने वाला था उसी गोमती को भूल जाता है तथा उसको अपनाने से इन्कार करता है । परन्तु वह अपने राज्य और सैनिकों के प्रति अधिक ईमानदार रहता है । छोटी

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ.-123.
2. वही, पृ.-337.
3. वही, पृ.- 38.

रानी के विद्रोह करने पर भी रानी का आदर करता हुआ जनार्दन से कहता है - "मैं चाहता हूँ रानी का अब किसी तरह अपमान न किया जाय ... वह राजमाता है । आदर की पात्री है ।"[1] लेकिन देवीसिंह के हृदय में मुसलमानों के प्रति प्रेम नहीं था । वह कहता है - "मैं जीते-जी नवाबों और सूबेदारों के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा ।"[2] डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद लिखते है - "उसका चरित्र गतिशील और प्राणवान है जिसमें स्वाभाविकता और शौर्य का सौन्दर्य समाहित है ।"[3] देवीसिंह में शासन व्यवस्था के गुण होने को नकारा नहीं जा सकता ।

तात्या टोपे, खुदाबख्स, गुलमोहम्मद, रघुनाथशाह तथा गौस खां आदि भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों की बलि देते हैं । ये सभी असाधारण सैनिक होते है । तात्या टोपे में विशेषता होती है कि वे कठिन से कठिन व्यूह से बच निकलने की रण विद्या में पारंगत है । तथा अंग्रेजों की नीति अच्छी तरह जानते हुऐ लक्ष्मीबाई से कहते है - "बाई साहब ये लोग अपने स्वार्थ पर अचल रूप से डटे रहते हैं जब तक स्वार्थ को ठोकर लगने का अन्देशा नहीं रहता तब तक हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर का सा बर्ताव करते है, परन्तु जहाँ देखते हैं कि स्वार्थ को धक्का लग जावेगा तुरन्त पैतरा बदल देते हैं ।"[4] तात्या टोपे में लोगों को समझने की योग्यता है । वे जूही से प्रेम करते है लेकिन वह प्रेम आदर्श और त्यागपूर्ण होता है । राष्ट्र प्रेम की भावना अधिक होने के कारण अनेक राज्यों के राजाओं से मिलते हैं और उनको एक होकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने की सलाह देते हैं ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ॰-39.
2· वही, पृ॰-188.
3· डॉ॰ सियारामशरण प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा, पृ॰-125.
4· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ॰-439.

रानी के असीम भक्त होने पर भी उनके चरित्र की दुर्बलता कुछ जगह दिखाई देती है जैसे अपने राजा पेशवा के आदेश को ईश्वर का आदेश समझ कर पालन करते हैं तथा जूही से कहते हैं - "मैं राव साहब की आज्ञा को देवता की आज्ञा के समान समझता हूँ । उन्हीं के कहने से आपके पास आने का साहस किया ।"[1] अतः इतने योग्य होते हुए भी अपने राजा को अच्छा-बुरा न समझाकर केवल आज्ञा पालन करना ही वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं । यही कारण था कि उनके सैनिक अनुशासन में होकर गाँजा, शराब व लूटपाट मचाते हैं । अपने ही लोगों द्वारा हार का सामना करना पड़ा तथा वे ही लोग अंग्रेजों से मिलकर तात्या टोपे को पकड़वाने में सहायता देते हैं । अगर तात्या टोपे रानी के कहे अनुसार चलते तो शायद भारत का इतिहास कुछ और होता ।

खुदाबख्स रानी की सेना में कर्नल होने के साथ स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत रहते है । वे कहते हैं - "रानी साहब की सेवा में तो अपना सिर चढ़ा दूँगा ।"[2] गुलमोहम्मद रानी की अन्तिम घड़ी तक साथ निभाता है । रानी की मृत्यु पर कहता है - "वो मरा नहीं वो कभी नहीं मरेगा । वो मुर्दों को जान बख्शता रहेगा ।"[3] रानी के प्रति निष्ठा रखने वाले तथा उनको देवी शक्ति रूप में मानते हुए रघुनाथसिंह व जवाहर सिंह कहते हैं - "हम लोगों को सरकार के हाथों अपनी तलवार पर गंगाजल छिड़कवाना है ।"[4] इससे सिद्ध होता है कि ये सभी लोग स्वामी भक्त तथा देशभक्त, राष्ट्रीय कर्त्तव्य से ओत-प्रोत दिखाई देते है । रानी सागर सिंह की मृत्यु पर कहती है - "जिस देश में सागर सिंह सरीखे लोग जन्म लेते है, वह स्वराज्य से बहुत दिनों तक

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-439.
2. वही, पृ.-211.
3. वही, पृ.-497.
4. वही, पृ.-189.

वंचित नहीं रह सकता ।"[1] सागर सिंह पहले डाकू था लेकिन रानी के सम्पर्क में आकर देशभक्त बनता है और अन्त में लड़ते हुए प्राणों की बलि देता है । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में कुछ ऐसे पुरूष-पात्रों को भी चित्रित किया है जिन्होंने अपने देश, राष्ट व स्वामी से गददारी की है । इनमें पीर अली, अली बहादुर, दूल्हाजू, मल्हार, गिरधरदास और सुघरसिंह रेती प्रमुख हैं । लक्ष्मीबाई की हार का कारण पीर अली को अधिक मान सकते है । इन विश्वासघाती लोगों के प्रति डॉ॰ सियाराम शरण प्रसाद लिखते हैं कि - "इन्होंने भारत के आशारूपी सूर्य पर पराजय का तिलक लगा दिया, मात्र लोभ और वैयक्तिक स्वार्थ के निमित्त ।"[2] अतः ये लोग कुछ चाँदी के रूपये व जागीर के लालच में रानी की गुप्त खबरें अंग्रेजों को देते थे और ऊपर-ऊपर से रानी के विश्वासपात्र बने रहते हैं । डॉ॰ मनमोहन सहगल के अनुसार - "पीर अली इकहरा व्यक्ति होते हुए भी दुहरे-तिहरे व्यक्तित्व को वहन करता है । अंग्रेजों का जासूस होने के साथ तथा अली बहादुर के संकेतों का अनुसरण करने पर भी वह अपनी कपट-नीति के कारण रानी के सन्देह का पात्र नहीं हो पता और अपने लक्ष्य सिद्धि में सफल होता है ।"[3] दूल्हाजू देश-भक्त है लेकिन सुन्दर से प्रेम न पाने व रानी द्वारा अपमानित होने पर वह दानव का रूप धारण करता है । युद्ध के समय रानी के साथ विश्वासघात करके ओरछा का फाटक खोलकर अंग्रेजों के जीत का रास्ता प्रशस्त करता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ॰-378.
2. डॉ॰ सियारामशरण प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा, पृ॰-174.
3. डॉ॰ मनमोहन सहगल - हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह, पृ॰-118.

मल्हार, माधवजी को विष देकर मृत्यु का कारण बनता है। उस समय माधव जी रियासतों को एक करने का प्रयास कर रहे थे। गिरधरदास शंकरशाह का मुनीम है। वह देश-प्रेम के गीत गाता है तथा शंकरशाह की सेवा में लगा रहता है। वह पैसों के लोभ में अंग्रेजों से मिलकर गुप्त भेद बतला देता है। उसी के विश्वासघात से शंकरशाह, रघुनाथशाह को तोपों से उड़ा देते हैं और सुधरसिंह रेती अकबर के सैनिकों को महारानी दुर्गावती के किले की सुरंग बताकर भेद खोलता है। दुर्गावती को पराजित होकर मृत्यु की गोद में समाजाना पड़ा। यही नहीं सुधरसिंह ने दुर्गावती के पिता कीर्तिसिंह को भी धोखा दिया। शत्रुओं से मिलकर किले में घुस आने में उनकी मदद करता है। राजसिंह अपना किला प्राप्त करने के लिये विदेशी शत्रुओं को आक्रमण का निमंत्रण देता है। इस तरह देखा जाता है कि भारतवर्ष में अलग-अलग तरह के पुरूष हुए जिनमें वीर, कायर, देशद्रोही तथा उच्च विचारों को देखा जा सकता है। लेकिन राजा के जो मंत्री हुये वे अलग-ही विचारों के कहे जा सकते हैं।

राज्य को चलाने व कूटनीति की चालों में पारगत ये मंत्री राजा को अपने हाथों की कठपुतली समझते थे। गढ़-कुण्डार में धीर प्रधान का चरित्र अलग देखा जा सकता है। धीर प्रधान दूरदर्शी तथा चतुर राज-नीतिज्ञ है। स्वामिभक्ति उसके अन्दर कूट-कूट कर भरी है। स्वदेश प्रेम के लिए तो वह हेमवती को उस व्यक्ति से विवाह करने को कहता है - "जो हमारे लिये सबसे अधिक बलिदान करेगा वही हमारे सम्बन्ध का पात्र होगा।"[1] धीर प्रधान अग्निदत्त को अपने पास रखकर दूरदर्शिता

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ.-125.

का काम करता है । स्वामिभक्ति का प्रमाण तो उसने अपने बेटे दिवाकर को सोहनपाल के सामने खड़ा करके दिया और कहा कि - "यह स्वामिद्रोही है इसको प्राण दण्ड मिलना चाहिए ।"[1] खंगारो को पराजित करने के लिए अनेक चालें चलता है । अन्त में विजय बुन्देलों की होती है । धोखे से विजय प्राप्त होने पर मरते समय धीर प्रधान सोहनपाल से कहता है - "बुन्देलों का गौरव कभी कम न हो और आज की सी घटना की आवश्यकता कभी न पड़े ।"[2] गोपीचन्द स्वार्थी होता है । वह अपने बेटे राजधर का विवाह हुरमतसिंह की पुत्री मानवती से करना चाहता है । जिससे उसकी शक्ति और अधिक मजबूत हो जाय । नायक सिंह का मंत्री अत्यधिक चालाक व धूर्त्त है । वह अपनी प्रभुता के लोभ से देवीसिंह को राजा बनाता है, जिससे उसके इशारों पर देवीसिंह राज्य करता रहे । क्योंकि उसने नायकसिंह के दासीपुत्र को राज्य न दिला कर बहुत से लोगों के दिल में जहर घोल दिया था । छोटी रानी उससे अत्यधिक घृणा करती है । उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि मुझे जनार्दन का सिर चाहिए उसके बाद अन्न, जल ग्रहण करूँगी । लेकिन यह सत्य है कि जनार्दन का अन्त अत्यन्त करूणामय हुआ ।

दुर्गावती को परामर्श देने वाला मोहनदास दलपति का मित्र था । अपने पति की मृत्यु के बाद दुर्गावती ने चौरागढ़ मोहनदास को दिया वह आसफ खां से युद्ध करते-करते वीर गति को प्राप्त हुआ । मोहनदास राज्य में होने वाली घटनाओं तथा जन-हित के कार्य समय-समय पर बताता रहता है । दलीपसिंह के चाचा (मंत्री) सोनेशाह अपनी प्रजा से कर लेने में ज्यादती करता है । अतः उच्च वर्गों के पुरूषों का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ०-450.
2. वही, पृ०-478.

विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि पुरूषों की भूमिका एक-सी न होकर अलग-अलग है । उनके कार्य अच्छे हैं तो बुरे भी हमारे सामने आये । वर्माजी ने इन पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक तथा अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से किया है । एक-दो पात्रों को छोड़ सभी के साथ न्याय किया है ।

§ब§ निम्न वर्ग के पात्र

भारतीय समाज में ऊँच-नीच का भेद है । यहाँ उच्च वर्ग शासन करता है तो निम्न वर्ग शोषित होता है । वर्माजी ने अपने उपन्यासों में ऐसे पात्रों को स्थान दिया है जो दास हैं, निम्न जाति के हैं, तथा साधारण जनता जिनका जीवन दिन-रात मेहनत करने में, अपने मालिकों की जी-हुजूरी करने में बीतता है । इनमें अनेक पात्र ऐसे भी हैं जो ईमानदार तथा वफादार हैं । जैसे अर्जुन कुम्हार जो हरिसिंह चन्देला के किले का पहरेदार है । वह गंवार, अक्खड़ है परन्तु उसके अन्दर स्वामिभक्ति अधिक है । नाग हेमवती के लिए अर्जुन को पत्र देता है तो अर्जुन अपने स्वामी हरिचन्देला को जाकर देता है । अर्जुन अपने व्यक्तित्व में लोक का प्रतिनिधि है । वर्माजी ने उसका वर्णन सजीवता से किया है । झलकारी का पति पूरन रानी की सेवा में रहता है । रामू और पूरन, लल्ली निम्न वर्ग के है लेकिन मुसाहिब जू उन लोगों को जी-जान से चाहते है । ये सभी स्वामिभक्त, कृतज्ञ तथा साहसी है, अपने स्वामी के लिए प्राण देने को हमेशा तैयार रहते है । रामू, पूरन, लल्ली अपनी स्वामिनी को जेवर के लिए उदास देखकर डाका डालते है और अपनी स्वामिनी को जेवर लाकर देते है । यह डाका स्वभाव-जन्य नहीं, परिस्थिति-जन्य था । पकड़े जाने पर वे स्पष्ट कहते हैं - "जायदाद तो हम लोगों की हमारे मालिक है, सो

उसका कोई डर नहीं । देश निकाला हम ओढ़ नहीं सकते क्योंकि दतिया के बाहर हमारा कोई सहारा नहीं । इसलिए पहले दण्ड {सूली} के लिए हम सब तैयार हो जावें ।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि ये लोग मुसाहिब जू को किस हद तक चाहते हैं । हालाँकि उन्होंने डकैती की परन्तु यह डकैती उन लोगों ने स्वयं के लिए नहीं की । यह तो श्रद्धा की भावना अपनी मालकिन के प्रति होने से ऐसा कार्य किया । वर्माजी ने इन चरित्रों को ऊँचा उठाने की पूरी कोशिश की है । उस समय गांधीवादी भावना की लहर चल रही थी । गांधी जी निम्न वर्ग के साथ बैठते तथा उनके हाथ का पानी तथा खाना खा लेते थे । मुसाहिब जू ने अपने समाज में फैलीजाति प्रथा का विरोध किया तथा लल्ली, पूरन, रामू जैसे लोगों को अपनाकर प्रेम दिया । उन्हीं के साथ खाते-पीते तथा शिकार करने जाते थे ।

कपिंजल शुद्र जाति का होने से वह नीलमणी के यहाँ दास का कार्य करता है । नील के अत्याचारों से दुःखी होकर धौम्य ऋषि के आश्रम में शरण लेता है । कपिंजल तपस्या करता है उससे राजा रोमक नाखुश होने पर उसकी हत्या करने की सोचता है । कपिंजल की तपस्या पूर्ण होने पर वह अपना जीवन जनसेवा और कर्मयोग में लगाना चाहता है । कपिंजल को समझाते हुए धौम्य ऋषि कहते हैं - "विद्या आती है नम्रता से, प्रश्न पर प्रश्न खोज पर खोज और दूसरों की सेवा करने से ।"[2] कपिंजल निम्न जाति का होते हुये भी उसका हृदय निर्मल तथा पवित्र है । वह भुवन को बचाने में बहुत सहायता करता है । नील के यहाँ जितने भी नौकर काम करते थे वे सभी बहुत दुःखी थे । हिमानी का नौकरों के साथ व्यवहार अत्यधिक कठोर था । इसी कारण जब स्वयं का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मुसाहिब जू, पृ.-70.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.-52.

कार्य होता है और एक विश्वास पात्र नौकर की तबीयत खराब होती है और हिमानी को अपना कार्य करवाना है, वह नौकर के बारे में सोचती है - "टांडे को जहां जाना है, वहां तक पहुँचने के समय के लिये चंगा हो जावे, क्योंकि जानकार नौकर है, फिर मर जावे, तब तक दूसरा चतुर नौकर खोज लूँगी ।"[1] उस समय शूद्रों तथा नौकरों की हालत सोचनीय थी । लेखक ने वैदिक युग के समाज को मानो साकार कर दिया है ।

गन्नू महावत रानी का भक्त है क्योंकि रानी नदी में कूद कर उसकी जान बचाती है । उसी समय वह रानी का विश्वासपात्र बन जाता है । गन्नू रानी के साथ युद्ध भूमि में अन्त समय तक रहता है । गन्नू रानी को कहता है - "मैं मरते-मरते भी माताजी आपके चरण नहीं छोड़ूँगा ।"[2] अतः हुआ भी वो ही, गन्नू रानी के साथ ही मरा । निम्न वर्ग के पात्रों का चरित्र चित्रण वर्माजी ने बड़ी खूबी से किया है । उस वर्ग को कर्त्तव्यनिष्ठ बताया है जिससे जनता के मन में उनके प्रति अच्छी भावना उत्पन्न हो ।

साधारण जनता उस समय काम के बोझ से दबी रहती थी । कुछ व्यक्ति चालाक होते तो कुछ सरल । रामदयाल जैसा नौकर चालाक होने से छोटी रानी की गुप्त मंत्रणा में भाग लेता है । वह इधर की बात उधर,उधर की इधर करने में माहिर था । गोमती को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है । कठिन कार्यों को सरलता से सम्पन्न करने की वह क्षमता रखता है । नरपति कुमुद के पिता है । वह अत्यन्त लोभी पुरुष है । वह अपनी बेटी कुमुद को देवी का अवतार

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.-139.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ.-168.

मानकर उसी को मूर्ख बनाने की कोशिश करता है । पैसे कमाने का यह सरल साधन होने से कुमुद का विवाह करने की सोचता नहीं है । अपनी बेटी की भावनाओं को नज़र अन्दाज कर स्वयं के स्वार्थ की पूर्ति करता है । अतः उसे अंधविश्वास में जकड़ा व ढोंगी कहा जा सकता है ।

"टूटे-कांटे" उपन्यास में मोहनलाल उदार प्रवृत्ति का था । उसकी पत्नी रोनी का स्वभाव कठोर तथा क्रोधी होने से एक दिन घर से चला जाता है । उसकी चरित्र की विशेषता है कि सभी की भलाई करनी । वह सेना के सिपाही शुबराती की रक्षा करता है । नर्तकी नूरबाई के प्राणों की रक्षा करता है । अतः इसका चरित्र साधारण होते हुये भी अपने आप में अलग ही दिखाई देता है ।

§ख§ 2. नारी पात्र

§अ§ उच्च वर्ग की नारियाँ

नारी पात्रों के चरित्रों का विवेचन करने पर ही हमें वर्माजी के उपन्यासों में जो नारी पात्र है उसके बारे में जानकारी मिलेगी । नारी पात्रों में कोई दुर्बल नारियाँ है तो कोई स्वतन्त्रता की आवाज उठाने वाली और वीरता लिए हुए है । वीर नारियों में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई,महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई, अहिल्या बाई, मृगनयनी आदि । इन सभी स्त्रियों में आत्मविश्वास, साहस और वीरता अत्यधिक होने से ये शत्रुओं का मुकाबला करने में आगे रहती है । रानी लक्ष्मीबाई के हृदय में कर्त्तव्यपरायणता, न्यायप्रियता, उदारता और देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी । रानी अपनी दासियों को मित्र मानती है इसलिए वह कहती है - "तुम मेरी दासी कभी न हो सकोगी मेरी सहेली होकर रहोगी ।"[1] इसी तरह

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-63,64.

महारानी दुर्गावती रामचेरी को अपनी बहन के समान मानती है । मृगनयनी लाखी को अपनी प्रिय सहेली मानती है । लक्ष्मीबाई को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि देश के कार्यों में दासियों की जरूरत नहीं बल्कि कंधा से कंधा मिलाकर चलने वाली सहेलियों की जरूरत है । वह स्वयं वीर है और सभी औरतों को युद्ध विद्या में शिक्षा दिलाने की इच्छा रखती है । रानी कहती है - "पुरूषों को पुरूषार्थ दिखाने के लिये स्त्रियों को मलखंभ, कुश्ती, इत्यादि सीखना ही चाहिए ।"[1] लक्ष्मीबाई केवल प्रशंसा करने वालों को गौण मानती है और राजा से कहती है - "आपके यहाँ के भाट क्या केवल प्रशंसा और यशोगान ही करते है या कभी-कभी कड़खा भी सुनाते है ।"[2] रानी सच्चाई में विश्वास करती है ।

मृगनयनी वीर तथा योग्य रानी है । डॉ॰ रामनारायण सिंह "मधुर" लिखते है - "मृगनयनी मध्य युग की एक आश्चर्यजनक वीर, दृढ़ तथा शक्तिशाली नारी है । वह हृदय में कोमल एवं कर्त्तव्य बुद्धि से अनुशासित है ।"[3] मृगनयनी की शारीरिक दृढ़ता प्रबल होने के साथ उसमें चारित्रिक दृढ़ता भी प्रबल है । वह नारी की निर्बलता पर व्यंग्य करती हुई कहती है - "रानियां तो पर्दों में मुंह छिपाए बैठी रहती है । सुनती तो यही आई हूँ कि अपने ऊपर आंख और हाथ डालने वाले पुरूष को घूंसे से धरती न सुंघा दे ।"[4] वह पर्दा प्रथा का विरोध करती है तथा शिकार खेलने का समर्थन । वह इतनी वीर थी कि एक ही तीर में अरने, नाहर तथा सुअर का शिकार कर लेती थी । मरे सुअर को अपनी-अपनी पीठ पर उठाकर घर लाने में भी कम आश्चर्य की बात नहीं है ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·-75.
2· वही, पृ·-79.
3· डॉ· रामनारायण सिंह "मधुर" - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ·-77.
4· वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी,

महारानी दुर्गावती को शिकार का अधिक शौक रहता है । एक तीर में शेर को मार देती है । दुर्गावती वीर तथा कुशाग्र बुद्धि रखती है, तथा अपने पिता के साथ राजकार्यों में भाग लेती है । दुर्गावती के सम्बन्ध में डा॰ कृष्णा अवस्थी लिखती हैं कि "दुर्गावती की आखेट की यही वीरता और साहस अपनी स्वतन्त्रता के प्रश्न पर युद्धोत्साह बनकर प्रकट होती है । अपने पति दलपतिशाह की मृत्यु के उपरान्त रानी ने छः वर्ष तक चारों ओर के शत्रुओं से गोड़वाने की सफलतापूर्वक रक्षा की ।"[1] कुशल सेनानायक होने से ही रानी ने अकबर की सेना से टक्कर लेने का साहस किया । सहृदय और परोपकारी होने पर अपने देश में अनेक "तालाब खुदवायें और बांध बनवाये ।"[2] किसानों के सुख व आय की वृद्धि के कारण ही रानी ने ऐसे जनहित के कार्य किये । यहाँ रानी के प्रगतिशील विचारों की झलक दिखाई देती है । जनता के दुःख दर्द को जानने के लिए स्वयं रानी लोगों से मिलती, उनके कष्ट सुनती और कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करती है । अपने महारथी के पुत्र गन्नू को बचाने के लिए नदी में कूद पड़ती है । दुर्गावती के विषय म डा॰ रामनारायण सिंह "मधुर" लिखते हैं - "दुर्गावती एक कुशल शासिका और निपुण युद्ध संचालिका भी है । वे हिमालय के समान अडिग, बादलों के समान गंभीर और सागर के समान विशाल हृदयी है ।"[3] रानी की विशालता उस समय सामने आती है जब सुघरसिंह जैसे कृतघ्न एवं देशद्रोही की भी उसकी घायल अवस्था में होने के कारण उपचार करवाती है । उनकी बुद्धि और विवेक उस समय देखी जाती है जब अकबर के पत्र को पढ़कर सभी दरबारी क्रोधित होते है । लेकिन रानी कहती है - "शठं प्रति शठं तो एक सीमा तक ठीक हो सकता है परन्तु नीच के प्रति नीच बनना

1· डॉ॰ कृष्णा अवस्थी - वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰-333.

2· वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ॰-159.

3· डॉ॰ रामनारायण सिंह "मधुर" - हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, पृ॰-80.

हमारी संस्कृति के विरुद्ध है ।"[1] दुर्गावती के अनुसार निष्पक्ष न्याय करना ही शासक का पहला कर्त्तव्य है । जाति के भेद-भाव को न मानते हुए अपने से नीची जाति वाले पुरुष दलपतिसिंह से उसने शादी की । उनकी दृष्टि में जाति की महत्ता न होकर वीर पुरुष की महत्ता अधिक थी ।

रामगढ़ की रानी स्वतन्त्रता संग्राम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर अपने राज्य व राष्ट्र का गौरव बनती है । अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों का विरोध करती हुई अपने सैनिकों को कहती है "देह में एक भी बूंद रक्त है जब तक इन फिरंगियों से लडूंगी । न चैन लूंगी और न चैन लेने दूंगी ।"[2] जनता के प्रति प्रेम रखने वाली रानी मरते समय कहती है - "किसानों को सिवाय मेरे और किसी ने भी नहीं बहकाया, भड़काया । ये बिलकुल बेकसूर है इनका कोई दोष नहीं ।"[3] इस प्रकार रानी अपनी जनता को बचाने के लिए उनका दोष अपने ऊपर लेती है । देश को अंग्रेजों से स्वतन्त्र कराने के लिए रानी सभी राजाओं के पास एक कागज की पुड़िया व कांच की चूड़ी के टुकड़े भेजती है उसमें लिखती है - "देश की रक्षा करने के लिए या तो कमर कसो या चूड़ी पहन कर घर में बंद हो जाओ । तुम्हें धर्म-ईमान की सौगन्ध है जो इस कागज का सही पता किसी वैरी को दो ।"[4] अत: यह स्पष्ट होता है कि उस समय अनेक राजा राज्य कर रहे थे परन्तु अंग्रेजों के प्रति संघर्ष करने का निश्चय रानी ही करती है । मानवता की रक्षा करते हुए वह अपने शत्रु के बच्चों को खाना खिला कर व दूध पिला कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाती है । यह उसके उज्ज्वल चरित्र को दर्शाता है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - महारानी दुर्गावती, पृ.--290.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - रामगढ़ की रानी, पृ.--132
3. वही, पृ.--131.
4. वही, पृ.-- 40

जनता को चाहने वाली तथा जीवन के कठोर आघातों को झेलने वाली अहिल्या बाई सदा मुस्कराती हुई आगे बढ़ती है । सियारामशरण प्रसाद के अनुसार - "अहिल्याबाई की तुलना गाल्सवर्दी के मोची से करते हैं जो परम कर्त्तव्य और परमार्थ की वेदी पर सर्वस्व न्यौछावर कर देता है पर आह तक नहीं करता ।"[1] वे आगे लिखते-हैं - "अहिल्याबाई का जीवन स्रोत ही मानो करुणा-विषाद की गंगा से निकल कर जीवन-पर्यन्त कठोर साधना और तपस्यामयी भूमियों से होकर अन्ततोगत्वा अवसाद और पीड़ा के उद्वेलित ज्वार-भाटों से परिपूर्ण सागर में विलीन हो जाता है । वह तूफानी नदी की तरह गरजती और चीत्कार नहीं करती, वरन् शान्त व निश्चय भाव से हृदय में अतृप्त मनोभावों को संयमित किये वात्सल्य की मनोव्यथा को संजोए रहती है ।"[2] वर्माजी ने अहिल्याबाई के जीवन के उतार-चढ़ाव को तथा उसके चरित्र को अपनी लेखनी से इतनी सूक्ष्म दृष्टि से चित्रण किया है कि अहिल्याबाई का दुःख दर्द सजीव सा लगने लगता है । उनके हृदय में ममता अधिक थी इसलिए मल्हारराव के अपराधों को क्षमा करती रहती है । लेकिन यह उनकी दुर्बलता थी, मल्हारराव क्षमा योग्य नहीं था । धर्म को मानते हुए भी पशु हत्या बन्द नहीं करवाई । नये मार्गों को निर्माण करती हैं और अपने राज्य में कुएें, बावड़ियां व मन्दिर बनाने का कार्य करवाती हैं ।

अहिल्याबाई वीर नारी है इसी कारण तुकोजी को युद्ध से विमुख न होने के लिए पत्र लिखती है । "हिम्मत न छोड़ना । दुष्टों का सर्वनाश करना अत्यन्त आवश्यक है । खर्च और फौज के पुल बाँध दूँगी । तुम्हारे बस का न हो तो लिख भेजो, मैं रण क्षेत्र में पहुँचूँगी ।"[3] उनके

---

1. सियारामशरण प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा, पृ.-177.
2. वही, पृ.-176.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - अहिल्याबाई, पृ.- परिचय.

हृदय में छुआ-छूत की भावना न होने से गूंगी सिन्दूरी को अपने पास रखती है तथा उसको प्यार करती है । अपने देश के प्रति तथा जनता के प्रति ईमानदार रहती है ।

सुन्दर, मुन्दर, काशी, जूही तथा मोतीबाई आदि स्त्रियों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । लक्ष्मीबाई इन स्त्रियों को युद्ध विद्या में निपुण बना देती है । मुन्दर तो अन्त तक रानी के साथ बनी रही । सुन्दर की वीरता व साहस उस समय देखने योग्य है जब दुल्हाजू किले का फाटक खोलने जाता है उस समय सुन्दर नंगी तलवार लेकर उसके पास पहुँचती है और कहती है - "देशद्रोही नरक के कीड़े तू अंग्रेजों से कुछ नहीं पायेगा ।"[1] अन्त में वह फाटक पर ही अंग्रेजों से मुकाबला करते हुए वीरगति को प्राप्त होती है । मोतीबाई व जूही अभिनेत्रियां होती हैं । रानी के सम्पर्क में आने से जासूसी विभाग की अध्यक्षता करती है । दोनों ही युद्ध क्षेत्र में अदम्य साहस और शौर्य का परिचय देती हैं ।

लाखी के वीर तथा सुन्दर होने से गयासुद्दीन उसको प्राप्त करना चाहता है । मृगनयनी तो उसके हाथ से निकल कर राजा मानसिंह के साथ विवाह बन्धन में बंध जाती है । लाखीको अपनी जाति का अभिमान है । वह कहती है - "कोई मुझको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी निज ननद ही क्यों न हो तो मैं नहीं सह सकूँगी ।"[2] वह सिकन्दर के सैनिकों से युद्ध करती हुई वीरगति को प्राप्त हुई । लाखी का जीवन सहज रूप में मिलता है । उसका व्यक्तित्व मृगनयनी के व्यक्तित्व से अधिक निखरा हुआ लगता है । रामचेरी दुर्गावती की सहेली होने से महल में ही रहती है । लाखी के समान वीर नहीं है । लेकिन उसने समाज

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-406.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.-200.

सेवा में अपना जीवन लगाया । बहुत कुएं, नहरे तथा तालाब बनाने मे सहायता दी । जन सेविका के रूप में उभरी है ।

शबनम निर्भीक व साहसी है । उसकी निर्भीकता तब देखी जाती है जब शत्रु महल में आने लगते है और हिन्दू स्त्रियों को बाहर निकलने पर मजबूर करते है । वह कहती है - "हाँ हरगिज नहीं जायेंगे बाहर हरगिज नहीं जायेंगे । इनके मरने के पहले मैं मरूँगी ।"[1] फिर वह देवकी को कहती है - "भीतर बन्दूकें रखी हैं । मैं चलाना जानती हूँ ।"[2] अत: वह स्त्रियों की रक्षा के लिए अपने हाथ में बन्दूक लेकर शत्रुओं का सामना करती है । अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए शत्रुओं से युद्ध करती है । परन्तु कुछ नारी पात्र ऐसे भी है जो रानी नहीं फिर भी उनमें आत्म बल इतना अधिक है कि वे शत्रुओं के सामने मृत्यु का भय नहीं रखती । किसी भी स्थिति का सामना करने को तैयार रहती है । कुमुद उन गोलों की वृष्टि में कहीं भी बाहर भागना नहीं चाहती । तारा खतरों से नहीं डरती । कचनार तो युद्ध में शामिल होती है । तारा के मधुर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर हेमवती कुण्डार से विदा होते समय कहती है - "यदि किसी के लिए यहाँ रहने को जी चाहता है तो तुम्हारे लिए तारा ।"[3] तारा को वीरांगना के रूप में भी देख सकते हैं । दिवाकर की सहायता के लिए घोड़े पर निकलती है, अपने पिता के अनुरोध को भी ठुकरा देती है । "दिवाकर को बन्दीगृह से छुड़ाने के लिए अपने प्राणों पर खेल जाती है ।"[4] तारा का चरित्र पहले लज्जाशील, कोमलांगी के रूप में दिखाई देता है परन्तु अन्त में उसमें साहस, निर्भीकता दिखाई देती है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ०-108.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ०-108.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ०-439.
4. वही, पृ०-498.

कुमुद अद्वितीय सौन्दर्य की मूर्ति है । लोग उसे देवी का अवतार मानकर उसकी पूजा करते हैं । स्वयं कुमुद अपने को मनुष्य मानती है, वह कुंजरसिंह से कहती है - "मैं कोई अवतार नहीं हूँ । साधारण स्त्री हूँ । दुर्गामाता की सच्चे जी से पूजा किया करती हूँ । आप मुझे अवतार न समझें ।"[1] कुमुद के अन्दर कायरता का स्थान नहीं है इसी से वह कुंजरसिंह को अपने अधिकार के लिए युद्ध करने का परामर्श व शक्ति देती है । डा॰ शशिभूषण सिंहल लिखते हैं कि - "कुमुद के व्यक्तित्व में नारीत्व और देवीत्व मिलकर आपस में कुछ ऐसे डूबते-उतराते हैं कि उन्हें अलग करके पहचानना कठिन है ।"[2] कुमुद को युद्ध का कारण पता चलने पर वह कहती है - "मैं तो कभी भी मरने के लिए तैयार हूँ । यदि इस युद्ध का कारण ही मिट गया होता तो आज विराटा के इतने शूर-सामन्तों का व्यर्थ बलिदान न होता । मैं न जाने क्यों जीवित रही ? किसके लिए ।"[3] कुमुद अपनी आत्मरक्षा के लिए पानी की लहरों में शरण लेती है । कुमुद के चरित्र का वर्णन डा॰ विजय मोहनसिंह करते हुए अपना मत देते हैं - "कुमुद का जीवन इस दोहरे दुर्भाग्य से पीड़ित होकर एक कैंसर के रोगी की प्रतीक्षा बन जाता है जिसमें कुंजरसिंह का प्रेम स्वत: एक रोमांटिक वायवियता का रूप ले लेता है ।"[4] कुमुद एक विवश नारी के रूप में हमारे सामने आती है ।

कचनार दासी रूप में दलीपसिंह के यहाँ आई । अपनी कुशाग्र बुद्धि व हिम्मत से वह अपने नारीत्व की रक्षा करती है । वह कुमुद के समान विवश नहीं है । और न मरने का विचार करती है । वह दलीपसिंह से कहती है - "मेरे साथ भाँवर डालिये । मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा

1· वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ॰-20.
2· डा॰ शशिभूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास बदलते सन्दर्भ, पृ॰-83.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ॰-376.
4· डा॰ विजयमोहन सिंह - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, पृ॰-331.

दीजिये । मैं आपके चरणों में अपना जीवन सहचरी बनाइये । मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी ।"[1] कचनार के अन्दर सामाजिक मान्यता की लालसा है । वह दूसरी दासियों के समान अपना जीवन बर्बाद करना नहीं चाहती । वह मानसिंह {कचनार} की वासना का शिकार नहीं बनना चाहती है इसी कारण वह महल से भाग कर गुसाइयों के आश्रम में चली जाती है । कचनार/को/गौड़ कन्या होने का अभिमान है वह एक जगह दलीपसिंह को कहती है - "मेरे माता-पिता सिपाही थे और कुलीन ... मुझको वस्त्रालंकार कुछ नहीं चाहिए । मैं गौड कन्या हूँ । वृक्षों की छाल में अपना शरीर ढक सकती हूँ ।"[2] वह पत्नी बनकर पति को खुश करना जीवन की सार्थकता समझती है ।

वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से गुसाइयों को प्रभावित करती है । उसमें असीम सौन्दर्य होने से अचलपुरी भी उसकी ओर आकृष्ट होने लगते हैं । कचनार के जाने से ऐसा लगता है मानो "यकायक कोई प्रकाशमान तारा क्षितिज के पर्दे में चला गया ।"[3] कचनार आदर्शवादी व धार्मिक विचारों की स्त्री है जिसके पीछे उसकी आत्मा की शुद्धता है । सियारामशरण प्रसाद जी के अनुसार - "कचनार के चरित्र में वर्माजी का सम्पूर्ण स्वप्न समाविष्ट है ।"[4] निश्चय ही कचनार/ने/अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाये रखने के लिए कठोर संघर्ष किये ।

हेमवती, मानवती व सुमन मोहिनी के चरित्रों की विशेषता अलग-अलग है । हेमवती का स्वभाव अभिमान से भरा है । वह अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए पिता की आज्ञानुसार चलती है । वह सामन्तीय

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ०-25.
2. वही, पृ०-26.
3. वही, पृ०-418.
4. सियारामशरण प्रसाद - साहित्य और समीक्षा, पृ०-154.

युग के जात्याभिमान की साक्षात् मूर्ति है । मानवती भावुक है तथा प्रेम में असफल रहती है । डरपोक स्वभाव होने से अपने प्रेमी के साथ जाने से घबराती है । और कलावती के अन्दर चारित्रिक दृढ़ता एवं संयम का अभाव है । उसका विवाह दलीपसिंह की कटार के साथ हुआ पर वह मानसिंह से प्रेम करती है । पति की मृत्यु के बाद मानसिंह से विवाह करती है । इस विवाह से कलावती को समाज में हीन भावना से देखा जाता है । परन्तु शिवकुमार मिश्र की दृष्टि में कलावती ने जो किया ठीक किया क्योंकि - "कटार के साथ कलावती की भाँवरे पड़ती है और इस कारण कलावती को दलीप सिंह के साथ बांध देना उचित नहीं है, भले ही गौड़ों में ऐसी प्रथा हो अथवा लोक-लज्जा वश समाज के भय से कलावती उसका विरोध न कर सकी हो । नारी को इस सीमा तक निरीह बना देना कतई उचित नहीं है और यदि अवसर आने पर नारी अपने ऊपर आरोपित किए गए अनुचित बन्धनों का तिरस्कार करती है तो थोथे आदर्श और थोथे पातिव्रत धर्म तथा नारीत्व की दुहाई देकर उसे कलंकित करना पूर्णरूपेण अत्याचार है, नारी के अधिकारों का हनन है, कलावती जो कुछ करती है, परिस्थितियों को देखते हुए वह बिलकुल उचित है ।" शिवकुमार जी की मान्यता आधुनिक युग की मांग है । नारी की स्वतन्त्रता पुरुषों के बराबर है । कलावती आधुनिक विचारों वाली स्त्रियों की श्रेणी में आती है ।

उम्दा बेगम, गन्ना बेगम तथा कोकीजू स्त्रियों में कोकीजू ही मुन्निसा अत्यधिक चालाक स्त्री है । अपने बुद्धिकौशल से मुहम्मदशाह के दरबार में ऊँचा स्थान बना लेती है । वह मुहम्मदशाह को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेती है । वह हिन्दुस्तानी दल का समर्थन करती है । वह हिन्दू पर लगने वाला जजियाकर बन्द करवा देती है । वह

बादशाह से कहती है - "जजिया बन्द करके अच्छा ही किया । चार करोड़ रूपये सालाना की आमदनी का जरिया हाथ से निकल गया तो उधर बड़ा फायदा यह हुआ कि सारे हिन्दू राजा राव और रईस हुजूर के नमकहलाल बन्दे बन गये हैं ।"[1] वह निर्भीक व साहसी है ।

उम्दा बेगम शिहब से विवाह करती है । वह अपने पति से नहीं डरती । गन्ना से कहती है - "तुम्हीं कहो वजीर है या नहीं, बेकार मर्द की क्या खासियत है उनमें ।"[2] उसका चरित्र विद्रोहिणी नारी के रूप में दिखाई देता है । वह संकल्प करती है कि - "अब मैं मर्द के भेष में रहा करूँगी । शिकार खेलूँगी, ख्वाजों को जूती लगाऊँगी ।"[3] उम्दा बेगम उस युग की स्त्रियों से अलग हट कर थी । गन्ना मौन प्रेमिका है । वह सूर्य के समान प्रचण्ड नहीं है । परन्तु हिमानी की प्रवृत्ति छल-कपट व हिंसक है । वह दासों पर अत्याचार करती है । रोमक को पद से हटाने के लिए दीर्घबाहु से कहती है - "राज्य की जो दुर्दशा हो रही है, उसकी जिम्मेदारी रोमक की है । रोमक को गद्दी पर से उतारने का प्रयत्न करो ।"[4] उसके दिल में कपट भरा है वह पुरुषों को नीचा दिखाने के लिए देवताओं से प्रार्थना करती है कि मुझे सामर्थ्य दो । इसी तरह छोटी रानी विद्रोही प्रवृत्ति की होने से वह जनार्दन का सिर काट कर लाने का हुक्म देती है । परन्तु चरखारीवाली जन-सेवा में अपना जीवन लगाती है । छुआ-छूत की भावना उसके अन्दर नहीं है । उसके चरित्र का विवेचन करने पर यही लगता है कि वह पतिव्रता व पतिनुगामिनी है । बड़े से बड़े कष्ट को हँस के सह लेने की शक्ति उसमें है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ.-44.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ.-142.
3. वही, पृ.-145.
4. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.- 32.

§ब§ निम्न वर्ग की नारियाँ

इस वर्ग में दास, निम्न जाति की औरतें तथा साधारण स्त्रियां आती हैं । वर्माजी इस वर्ग के लोगों से काफी प्रभावित थे । उन्होंने उनके गुणों को अधिक देखा है । साधारण स्त्रियों के स्वभाव का भलीभाँती वर्णन किया है ।

झलकारी कोरीन नारी-जाति का आदर्श बनती है । झलकारी रानी लक्ष्मीबाई की शक्ल लिए हुए थी । उसने तीर चलाना, तलवार चलाना सीख लिया था । एक बार रानी को बचाने के लिए वह रानी जैसा श्रृंगार करती है और अंग्रेजों के कैम्प के पास जाकर बड़े स्वाभिमान के साथ कहती है - "मैं झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हूँ ।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि झलकारी वीर, निर्भीक एवं साहसी थी । उसके दिल में देश-प्रेम की भावना होने से ही वह अंग्रेजों के सामने डट जाती है । डरू की पत्नी मन्ना का चरित्र भी ठीक दिखाई देता है । मानसिंह §कचनार§ के चंगुल में नहीं फंसती है, पतिपरायण बनी रहती है ।

ललिता व कचनार दासी रूप में धमोनी आती हैं परन्तु कचनार अपने व्यक्तित्व से रानी बनती है और ललिता दासी ही बनी रह जाती है । ललिता में आत्म सम्मान न होने से पहले राजा दलीपसिंह की वासना की शिकार होती है और फिर मानसिंह के पास जाकर अपना शरीर समर्पण करती है । उसका चरित्र मनचली स्त्रियों का सा है । नूरबाई के वेश्या होते हुऐ भी वर्माजी ने उसके चरित्र को ऊँचा दिखाया है । वह नादिरशाह के वैभव को ठुकरा कर साधारण सैनिक के साथ रहती है । उसके मन में देश-प्रेम की भावना थी,इसीकारण वह ईरान

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-424.

नहीं जाती । मुसलमान होने पर भी वृन्दावन जाकर कन्हैया का भजन करती है । अपनी काम वासना को त्याग आदर्श प्रस्तुत करती है । शैल रस्तोगी के अनुसार - "सामन्तीय वैभवों से घृणा करती हुई नर्तकी नूरबाई अपने एकनिष्ठ प्रेम का जो रूप प्रस्तुत करती है वह बड़ा सराहनीय है ।"[1] अत: ऐसी नारी कम मिलती हैं जो उदार हृदय रखती है और वैभवों को त्याग कर भगवान की भक्ति में लगती है ।

साधारण स्त्रियों में गोमती, रोनी, गौरी, सिन्दूरी आदि आती हैं । गोमती गरीब परिवार से है उसकी शादी देवीसिंह के साथ होने वाली है । भांवर पड़ने के पहले ही देवीसिंह लड़ाई में बेहोश होता है फिर गोमती को अपनाने से इनकार कर देता है । देवीसिंह राजा बनता है तो गोमती के अन्दर स्वत: ही सामन्तवादी प्रवृत्ति आ जाती है । कुमुद से बात करते समय इसकी झलक मिलती है । रोनी स्वभाव से कठोर होने से अपने पति को खो देती है । धन-लोलुपता उसके अन्दर इतनी प्रबल थी कि वह अपने पति और देवर को अनुचित कार्य करने के लिये उकसाती है । उसका देवर डकैत बन जाता है। अहिल्याबाई की शरण में जाने से सिन्दूरी का जीवन सुधरता है । वह स्वामी भक्त होने से अपनी स्वामिनी की सेवा करती है । गूंगी होने पर भी उसका स्वभाव उदारतापूर्वक है । गौरी का चरित्र भारतीय नारी के समान प्रेम व समर्पण लिये था । वह कर्म को मुख्य मानती है । वह कहती है - "मैं काम के लिये दिन-रात एक कर दूंगी ।"[2] उसने कर्म को अपने जीवन में अपनाया, अपने माता-पिता का कर्ज स्वयं दिन-रात मेहनत करके चुकाया । वह भुवन से प्रेम करती है । उसके दिल में दुख लोगों के प्रति

1· डा· शैल रस्तोगी - हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ·-182.
2·

दया की भावना थी । वर्माजी ने इसका चरित्र स्वाभाविक रूप में दिखाया है ।

२· प्रेम और युद्ध

भारत के इतिहास में सुन्दर स्त्रियों को प्राप्त करने के लिए अनेक युद्ध हुए हैं । वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इसकी झलक मिलती है । परन्तु उनके पात्रों में आदर्श प्रेम की भावना अधिक जान पड़ती है । अधिकतर पात्र अपने प्रेम के बदले कुछ नहीं चाहते और कुछ पात्र प्रेम का प्रतिदान भी चाहते हैं । लेकिन कुछ पात्र प्रेम की प्रतिमा अपने हृदय में लिए ही जीवन लीला समाप्त कर देते हैं । प्रेम में अंधे हुए पात्र प्रेम को पाने के लिए युद्ध करते है । युद्ध में विनाश तो होता ही है परन्तु युद्ध जिस उद्देश्य को लेकर करते हैं वह पूरा नहीं होता है । वर्माजी के सच्चे प्रेमी-प्रेमिकाओं में मनोवेगों के दमन की प्रवृत्ति है, वह अधिक आकर्षक लगती है । प्रेमी-प्रेमिकाओं का मिलन होने पर सन्तोष होता है । लेकिन कुछ पात्र अन्त तक नहीं मिल पाने और एक संकेतमयी आकुल अभिव्यक्ति देकर जीवन से विदा ले लेते हैं, वे सचमुच ही हमारे हृदय में वेदना छोड़ जाते है । हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि उनके मिलन में क्यों सामाजिक परिस्थितियाँ या नियति बाधक बनती है और हमारे मन में उस अनाचार के प्रति असंतोष का भाव जाग्रत होने लगता है । कुंजरसिंह, रघुनाथसिंह ऐसे ही प्रेमी है जो प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से मानते हैं । कुंजरसिंह कुमुद से प्रेम करता है, परन्तु उसका प्रेम मर्यादापूर्ण एवं मौन रहता है । कुंजरसिंह के प्रेम के विषय में डा· सियारामशरण प्रसाद लिखते है - "मुख्यत: यौन भावना से परिचालित युवकों की तरह प्रेम का यापन नहीं करता वरन मौन साधक सा कुमुद के चरणों में बना रहता है ।"[1] कुंजरसिंह का प्रेम पवित्र तथा आदर्श की भावना लिए

हुए है । कुमुद के अन्दर भी यही प्रेम पल्लवित हो रहा था । कुमुद का प्रेम तो अन्त में प्रगट होता है, जब वह जल समाधि लेने जाती है। उस समय वह कुंजरसिंह को माला पहनाती है । मुन्दर रघुनाथसिंह से प्रेम करती है । रघुनाथसिंह भी उसको अधिक चाहते है, परन्तु उनके मन में देशभक्ति का स्थान पहला था । इसीलिए अपने प्रेम में पवित्रता रखते हुये राष्ट्रीय कर्त्तव्य को प्रमुखता देते है । कुमुद को प्राप्त करने के लिए अलीमर्दान कालपी पर आक्रमण करता है परन्तु कुमुद की मृत्यु से दुःखी होकर युद्ध रोकता है । नायकसिंह वृद्ध होने पर भी कुमुद को प्राप्त करने की इच्छा रखता है ।

नागदेव हेमवती को चाहता है, लेकिन हेमवती अपने जातीय अभिमान के कारण उससे प्रेम नहीं करती । हेमवती द्वारा तिरस्कृत होने पर वह हेमवती का अपहरण करने की योजना बनाता है, लेकिन उसमें वह असफल रहता है । अग्निदत्त मानवती से प्रेम करता है लेकिन दुर्बल हृदय मानवती उसके साथ जाना नहीं चाहती । नाग यह देखकर क्रोधित होता है कुछ अपने और कुछ जाति के दंभ में अग्निदत्त का अपमान कर उसे राज्य से निकाल देता है, क्योंकि अग्निदत्त नाग की बहन मानवती से प्रेम करता है, यह नाग को अच्छा नहीं लगता । ललित शुक्ल लिखते है कि - "जातीयता की झूठी और खोखलीशान हमारी रगों में किस प्रकार घर कर गयी है, इसे ही गढ़ कुण्डार में उभारा गया है । नाग स्वयं तो अपने से ऊँचे कुल की हेमवती का वरण करना चाहता है, पर अपनी बहन मानवती का हाथ विजातीय मित्र को देने में अपना अपमान समझता है ।"[1] नाग स्वार्थी होने के नाते वह स्वयं पर हर नीति लागू करता है तथा कहता है युद्ध और प्रेम में सब सही है । नाग के कारण ही बुन्देले तथा खंगारो का युद्ध होता है ।

---

1. ललित शुक्ल - दिशाओं का परिवेश, पृ०-253.

दिवाकर, तारा का प्रेम शारीरिक न होकर आत्मा से है। बिन्दु अग्रवाल के अनुसार - "दिवाकर का प्रेम नागदेव अथवा अग्निदत्त जैसा वासना-जनित प्रेम नहीं है। वह अन्त:करण से तारा को चाहता है।"[1] इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है - "तारा को सर्प काटता है तो दिवाकर विष चूसकर उसकी प्राण रक्षा करता है।"[2] दिवाकर गलत कार्यो का विरोधी होता है वह एक जगह कहता है कि अधर्म संचित राज्य बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। दिवाकर उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र न होकर भी अपने व्यक्तित्व के कारण पूरे उपन्यास में छाया रहता है। तारा के निर्मल प्रेम की धारा दिवाकर के प्रेम के साथ बहती है। हेमवती का अपहरण करते हुए लोगों से बचाने के लिए कुशल योद्धा का परिचय देता है। तारा साहसी व निर्भीक होने से दिवाकर को अर्धनग्न अवस्था में भी बचाती है। लेखक ने अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को दिखाया है। अन्त में दिवाकर तारा को कहता है - "तारा हमारा संयोग अखण्ड और अनन्त है। वर्णाश्रम धर्म हमारी देह के संयोग का निषेध कर सकता है। यही हमारा संयोग है। तारा, हम लोग योग साधना करेंगे।"[3] अत: तारा और दिवाकर समाज को त्याग कर जंगल की शरण लेते हैं। इनका प्रेम आदर्श की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जिसमें इहलोक का स्थान नहीं है परन्तु परलोक में विश्वास अवश्य है।

दलीपसिंह के साथ कचनार का विवाह कठिनाइयों के बाद होता है, परन्तु मृगनयनी की शादी राजा मानसिंह के साथ होने पर कोई अड़चन नहीं आती, क्योंकि ये राजा है। दलीपसिंह का चरित्र सबसे अधिक उस समय निखरता है जब अपनी पत्नी कलावती को अपने

---

1. बिन्दु अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, पृ०-366.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ०-290.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ०-503.

भाई को सौंपता है और स्वयं दासी कचनार से विवाह करता है । दलीपसिंह के प्रेम का वर्णन करते हुए रामदरश मिश्र लिखते है - "कचनार का प्रेम उसके हृदय में इस प्रकार धंस गया था कि वह उस असामान्य अवस्था में सादृश्य के कारण ही कंचनपुरी को बड़ा प्यार करता था । इस असामान्यावस्था का चित्र बड़ा ही मनोहर है । उसमें स्वभाविकता कितनी है यह तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक ही समझे ।"[1]

मृगनयनी को प्राप्त करने के लिए मांडू का राजा गयासुद्दीन आक्रमण करता है । सिकन्दर के पांच बार आक्रमण से ग्वालियर की दशा खराब हो गई, परन्तु मृगनयनी व मानसिंह कला प्रेमी होने से राज्य में अनेकों भवन, मंदिर आदि बनवाते हैं । प्रेम का प्रतीक गूजरी महल अभी भी खण्ड-खण्ड अवस्था में मिलता है । मृगनयनी अपने पति की प्रेरणा बन कर समझाती है कि - "कला कर्त्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को सम्बल दिए रहे, मनोबल और धारण एक दूसरे को पकड़े रहें । मुझको संयम से रहने दो और आप भी अपना कर्त्तव्य करने में संलग्न रहो ।"[2] मृगनयनी का चरित्र उच्च कोटि का है परन्तु उसके प्रेम में आदर्श, संयम व कर्त्तव्य का स्थान सदा ऊँचा रहता है ।

लाखी व अटल का प्रेम हेमवती, तारा, कुमुद से हट के है । अटल गुलाब खां व नागदेव जैसा नहीं है । दिवाकर तारा समाज के विरोध में जंगल में भाग जाते है परन्तु अटल व लाखी समाज की मान्यताओं को ठुकरा कर प्रेम करते है तथा अन्त में विवाह हो जाता है । उसका विवाह समाज को स्वीकार नहीं होता, लेकिन अटल लाखी से कहता है - "अब सदा के लिए तुम मेरी हुई चाहे जाति मुझको रखे चाहे निकाले, चाहे गांव मुझको पत्थर मारकर गांव से भगा दे, मेरा

1· रामदरश मिश्र - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ·-56.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ·-422.

तुम्हारा सम्बन्ध कभी नहीं टूटेगा ।"[1] लाखी व अटल समाज के अपवादों की चिन्ता नहीं करते । अटल नारी स्वतन्त्रता की भावना रखता है । वह अपनी बहन मृगनयनी तथा लाखी को तीर चलाना, जंगलों में स्वच्छन्द घूमने पर रोकटोक न लगाना ही नारी स्वतन्त्रता का प्रतीक है । अटल के अन्दर संयम अधिक होता है वह लाखी को साथ रखने के बाद भी उसका शरीर स्पर्श नहीं करता है ।

अग्निदत्त का चरित्र सहज है । वह जाति-पांत में विश्वास नहीं करता इसलिए वह नाग से कहता है - "यदि ब्राह्मण किसी खंगार ठकुराइन के साथ विवाह करना चाहे तो मैं खंगार ठाकुरों के घर कच्ची रसोई खाने के लिये तैयार हो जाऊँगा ।"[2] इतना होने पर भी अग्निदत्त प्रेम में असफल रहता है । नाग द्वारा अपमानित होने पर अपने प्रेम को भूल बर्बर हो उठता है और धीर प्रधान को कहता है - "कुण्डार को नष्ट करना है तो इस समय बल की आवश्यकता नहीं है, छल की आवश्यकता है । छल के पीछे बल का भी प्रयोग करना पड़ेगा ।"[3] अग्निदत्त उस समय ज्यादा क्रूर दिखाई देता है, जब नाग, राजधर शराब के नशे में बोलते है "अग्निदत्त कहाँ है मारो-मारो", इस उक्ति पर व्यंग्य करता हुआ अग्निदत्त कहता है - "वह देखिये खंगारो का जोहर खंगारो की भविष्य आशा किस गौरव के साथ तकिया पर औंधी पड़ी है ।"[4] अग्निदत्त प्रेम को पाने में नाकामयाब होने से ही इतना भयंकर कार्य करता है । लेकिन वह नाग से अच्छा है, क्योंकि मानवती की असमर्थता देखकर उसे चलने को बाध्य नहीं करता । परन्तु नाग हेमवती का अपहरण करना चाहता है । अग्निदत्त को मानवती पर संकट

1· वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ·--199.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ·-- 25.
3· वही, पृ·--415.
4· वही, पृ·--475.

का आभास होते ही वह उसकी रक्षा करते हुए अपने प्राण दे देता है । अतः अन्त में वह प्रायश्चित करके अपने चरित्र को दोष मुक्त बनने की कोशिश करता है । उसके प्रेम को देखकर लगता है कि उसको मानवती को प्रेमिका के रूप में चुनना ही नहीं था । लगभग ऐसा ही प्रेम गुलाब खां व शबनम का है । गुलाब खां को भी अपनी प्रेमिका को पाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका । अग्निदत्त के समान ही उसके दिल में विद्रोह की आग जलती है, इसीलिए वह विरोधी दल में मिलता है । शबनम गुलाब से प्रेम करती है परन्तु कोकीजू ने उसकी शादी रोशनुददौला से करने का निश्चय करती है । वह विवाह का विरोध नहीं कर पाती है । गुलाब स्त्री वेष में शबनम से मिलता है तो शबनम उसको अच्छा नहीं कहती इसी से वह क्रोधित होता है । शुभकर्ण के सिपाहियों द्वारा लड़ाई शुरू होने पर गुलाब खां आग में घी का काम करता हुआ कहता है - "जुल्म की हद हो गई । अन्धेर मचा रखा है, लेकिन इस तरह रोष करने से नतीजा क्या होगा ? चलिये किसी एक जगह बैठकर सोचें कि क्या किया जावे, कौन-सा ठोस कदम उठाया जाय ।"[1] जूताफरोशों को भी भड़काता है जिससे हिन्दुस्तानियों और जूताफरोशों के बीच मार काट मचती है । खून खराबा होने पर उसके मन में परिवर्तन होने लगता है । वह महल की स्त्रियों व शबनम को बचाने के लिए अपने जान की बाजी लगा देता है । शबनम उससे सच्चा प्रेम करती है । गुलाब खां की समाधि पर जाकर अपने प्रेम को आंसुओं में परिवर्तित करती है और कहती है - "मुझे माफ करना गुलाब खां ।"[2] मुहम्मदशाह व रहीमुन्निसा कोकीजू का प्यार स्वार्थ से परिपूर्ण है उनको केवल एक दूसरे की जरूरत होने पर प्रेम का रूप दे देते है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - सोती आग, पृ.-63.
2. वही, पृ.-128

सुघरसिंह दुर्गावती को चाहता है, परन्तु दुर्गावती दलपति से विवाह करने में सफल रहती है तथा सुघरसिंह को नहीं चाहती है। सुघरसिंह इसका बदला लेने के लिये शत्रुओं से मिलकर दुर्गावती के पिता कीर्तिसिंह के किले का फाटक खोल कर अपने मन को शान्ति देता है। अकबर से दुर्गावती के रूप की प्रशंसा कर तथा दुर्गावती के महल में साधु वेष में रहकर किले की सुरंग का रास्ता शत्रुओं को बता देता है। अत: रानी का युद्ध होता है और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। अत: सुघरसिंह प्रेम में हारा हुआ व्यक्ति है, प्रेम न मिलने पर विनाश करवाने का निश्चय करता है, उसमें उसको सफलता मिलती है।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण करने पर हमारे सामने अनेक ऐसे पात्र उभर कर आये जो इतिहास में गौण है, परन्तु उपन्यास में उनका स्थान श्रेष्ठ है। उनके पात्रों में आदर्श तथा मनोबल की भावना इतनी प्रबल है कि किसी भी स्थिति में परिवर्तन की सम्भावना नहीं रहती। मृगनयनी, लक्ष्मीबाई, लाखी, तारा, कचनार आदि स्त्रियों में एक ओज है,वेवीरता, साहस व प्रेम में आगे हैं। लक्ष्मीबाई को सामान्य नहीं मान सकते। भारत में ऐसी वीरांगनाओं का वर्णन समय-समय पर मिल जाता है। मृगनयनी और लक्ष्मीबाई की वीरता व आदर्श /को/ वर्माजी ने अपने उपन्यासों में बड़े ही सजीव रूप में दिखाया। स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के साथ युद्ध करना लक्ष्मीबाई के जीवन में चार चाँद लग जाना ही है। नारी के प्रति श्रद्धा रखने वाले वर्माजी कचनार का चरित्र उज्ज्वल बनाने में सफल हुए हैं।

पुरुष वर्ग में माधव जी सिंधिया, मुसाहिब जू तथा भुवन-विक्रम का चरित्र हमारे सामने एक मर्यादा पूर्ण तथा देश प्रेम से बंधा हुआ दिखाई देता है। आदर्श राजा के रूप में मानसिंह (मृगनयनी) सफल होते है। भुवन वैदिक युग की समाज व्यवस्था का प्रतीक है। अत: हम कह

सकते है कि वर्माजी के पात्रों में वीरता, देश-प्रेम, राष्ट्रप्रेम, अनुशासन-प्रियता का स्थान सर्वोपरि है । ये गुण स्त्रियों में अधिक थे ।

पीर अली, दूल्हाजू, गिरधरराव तथा सुघरसिंह रेती आदि का चरित्र-चित्रण वर्माजी ने इतना सजीव व जीवन्त किया है कि पढ़ने वाले पाठक इन पात्रों से घृणा करने लग जाते है । इन पात्रों का चरित्र गतिशील है तथा पीर अली की भूमिका घृणा योग्य है । वर्माजी ने अपने काल्पनिक पात्रों का वर्णन ऐसा किया है कि लगता ही नहीं कि वें लेखक की कल्पना की उपज है । लाखी दिवाकर, अटल आदि पात्रों में वर्माजी के विचारों की झलक मिलती है ।

......

षष्ठ अध्याय

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्प

1. उपन्यास में शिल्प का अर्थ

शिल्पविधि का शाब्दिक अर्थ है किसी चीज़ को बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु के रचने की जो विधियां अथवा प्रक्रियायें होती है उनके समुच्चय को शिल्पविधि के नाम से अभिहित किया जा सकता है। उपन्यास चाहे सामाजिक हो या ऐतिहासिक, उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचायक है। डॉ॰ ऊषा सक्सेना ने उपन्यास शिल्प की प्रणाली के बारे में लिखा है - "शिल्प विधि का अर्थ हुआ उपन्यास के प्रस्तुत करने की प्रणाली। अतएव शिल्पविधि के अन्तर्गत वे समस्त तत्व आ जाते है जो उपन्यास के रूप का निर्माण करते हैं।"[1] शिल्प के विषय में हम यह कह सकते है कि उपन्यास में पात्रों और घटनाओं को इकट्ठा करके उपन्यासकार अपनी कल्पनाशक्ति से उन घटनाओं को जीवन्तता का रूप देता है। इस सन्दर्भ में डा॰ तहसीलदार दुबे लिखते है कि - "उपन्यासकार उपन्यास में मानव जीवन के तथ्यों का उद्घाटन अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा करता है। उस अभिव्यक्ति के लिए उसके पास निर्धारित लक्ष्य होता है। उसी लक्ष्य के आधार पर उसकी रचना-प्रक्रिया ही शिल्पविधि का कार्य करती है। शिल्पविधि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध वस्तु के कलापक्ष से होता है।

---

1. डा॰ ऊषा सक्सेना - हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान, पृ॰-71.

उपन्यास की रूपरेखा क्या है, तथा उसका प्रयोग किस रूप में हुआ है, ये सभी बातें शिल्पविधि की सीमा के अन्तर्गत आती हैं । उपन्यासकार प्रकृति, वातावरण, भाषा द्वारा समझाने का प्रयत्न करता है कि उसके लिखने का उद्देश्य क्या है, क्या कहना चाहता है तथा यह उपन्यास कौन-सी श्रेणी में आयेगा ।"[1] शिल्पविधि को और अधिक स्पष्ट करते हुये डॉ॰ प्रदीपकुमार शर्मा लिखते हैं - "शिल्पविधि या शिल्प-विधान का सम्बन्ध वस्तुत: उपन्यास के सृजन पक्ष से है । उपन्यासकार के मस्तिष्क में समाज की सच्चाइयाँ, आदमी की हालत और परिवेश के यथार्थ संग्रहित होते रहते हैं । इसका वर्णन करने के लिए उसके मन में भावों का उद्देलन होता है । वह इन संग्रहित भावों अथवा भाववस्तु को कैनवस पर उतारना चाहता है और जिस ढंग से, जिस प्रक्रिया से उसे उतारा गया है, वही इसका शिल्प-विधान है ।"[2] शिल्प-विधान एक मौलिक चीज है, किन्तु इतनी मौलिक नहीं कि परम्परा और समकालीनता से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो । एक अच्छे शिल्प के द्वारा उपन्यासकार अपनी बात को अधिक तीखे तेवर के साथ रख सकता है ।

हिन्दी-उपन्यास की शिल्पविधि के विकास में वृन्दावनलाल वर्मा की देन बहुत महत्वपूर्ण है । वर्माजी ने प्रेमचन्द और प्रसाद के सामाजिक उपन्यासों की परम्परा को और अधिक विकसित किया है तथा हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की समर्थ परम्परा का सूत्रपात भी किया है । वर्माजी ने ऐतिहासिक व सामाजिक उपन्यासों की रचना की है । शिल्प की दृष्टि से उनके दोनों तरह के उपन्यासों में अन्तर दिखाई देता है ।

1· डॉ॰ तहसीलदार दुबे - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में शिल्प का विकास, पृ॰-9.
2· डा॰ प्रदीपकुमार शर्मा - हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान पृ॰-20.

मानव जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति करने का प्रयास ही उपन्यास को कालजयी बनाता है । प्रेमचन्द ने मानव-चरित्र के रहस्योद्‌घाटन को उपन्यास का उद्‌देश्य बताते हुए कहा है - "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और उपन्यास दोनों का मधुर सम्मिश्रण रहता है । ऐसे उपन्यासों में उपन्यासकार को इतिहास के सत्य की रक्षा का प्रयत्न और उपन्यास के शिल्प सौष्ठव का निर्वाह दोनों करना पड़ता है । इतिहास को जानने के साथ ही औपन्यासिक शिल्प-विधान से परिचित होना भी लेखक के लिए आवश्यक है । स्वयं वर्मा जी लिखते हैं -"मेरा अनुमान है कि ऐतिहासिक उपन्यास या कहानी लिखने वाले के सामने कुछ अधिक कठिनाइयां रहती हैं । उसे पात्रों और घटनाओं के संबंध में पूरी शोध करनी पड़ेगी । तत्कालीन वातावरण का अपनी आंखों के सामने चित्र बनाए रखना पड़ेगा और साथ ही आज की कोई समस्या उस समय के वातावरण में रखकर कुछ सुझाव देने पड़ेंगे, परन्तु उपदेशक की हैसियत से नहीं, न लाल बुझक्कड़ की तरह बल्कि केवल सुझाव देने वाले की हैसियत से ··· उस भविष्य वक्ता की तरह जो मुड़-मुड़कर पीछे की तरफ देखता है । शर्त यह है कि उबटा न ले, ठोकर खाकर गिर न पड़े ।"[2] वर्माजी की शिल्प-विधि के विषय में प्रेम भटनागर लिखते हैं - "औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से मैं इनकी गणना वर्णनात्मक शिल्प विधि के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में करता हूँ ।"[3] वर्णनात्मक विधि से तात्पर्य है जिसके उपन्यास में जीवन के विस्तुत क्षेत्र

1· प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृ·47.
2· डॉ· वृन्दावनलाल वर्मा - ऐतिहासिक उपन्यास,
3· डॉ· प्रेम भटनागर - हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिपेक्ष्य, पृ·-130.

का चित्रण विवरणपूर्ण ढंग से बढ़ा-घटाकर व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जाता है । वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में जीवन के सभी क्षेत्रों का वर्णन इसी प्रणाली से किया है ।

2• देशकाल तथा वातावरण

देश काल के अन्तर्गत सामान्य रूप से किसी भी देश अथवा समाज की सामाजिक : धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि का वर्णन होता है । उपन्यासकार देश-काल के अन्तर्गत किन्हीं पात्रों की विचारधाराओं का परिचय उपस्थित करता है, किसी भी साहित्यिक या कलाकृति का अच्छा या बुरा होना बहुत-कुछ इस पर निर्भर करता है कि उसमें स्थायित्व गुण कितना है, यानि वह कितने काल तक जीवित रह सकती है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल का महत्व सर्वाधिक है, क्योंकि देशकाल का प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण ही उसकी कथा को विश्वसनीयता प्रदान करता है । उसके पात्र अतीत के प्रतिबिम्ब होते हैं, इस कारण यदि उनके क्रिया-कलापों में उस युग की छाप न हुई तो वे पूर्ण अस्वाभाविक बन जायेंगे । डॉ• श्यामसुन्दर दास ने लिखा है - "उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन और परिस्थिति आदि से है । इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, एक तो सामाजिक और दूसरा ऐतिहासिक या सांसारिक ••• बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसीलिए मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से संबंध रखने वाला ही वर्णन होता है । ऐसी

दशा में जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायेगा ।"[1]

देशकाल व वातावरण को समझाते हुए डा· गुलाबराय लिखते है - "देश-काल के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे स्वयं साध्य न बन जाय । जहाँ देश-काल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उससे जी ऊबने लगता है, लोग जल्दी-जल्दी पन्ने पलटकर कथा-सूत्र को ढूंढ़ने लग जाते है । देश-काल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए । ··· देश-काल वातावरण का बाहरी रूप है । वातावरण मानसिक भी हो सकता है । आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा ही वह काम भी करने लग जाता है । प्राकृतिक चित्रण भी उददीपन रूप से पात्रों की मानसिक स्थिति या मूड को निश्चित करने में सहायक होते है । प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता है और उपन्यास में काव्यत्व भी ले आता है, जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बंद हो जाना वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है ।"[2]

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई में जनेऊ आन्दोलन उस समय में चली आ रही परम्पराओं का ही असर था । "गढ़-कुण्डार" उपन्यास-काल विशेष को लेकर लिखा गया है । इसका एक उदाहरण देख सकते है - "तेरहवीं शताब्दी का अन्त निकट था, महोबे में चन्देलों की कीर्ति पताका नीची हो चुकी थी । जिसको आज बुन्देलखण्ड कहते है, उस

1· डा· श्याम सुन्दर दास - साहित्यालोचन, पृ·-172.
2· डा· गुलाबराय - काव्य के रूप, पृ·-187.

समय उसे जुझौति कहते थे । जुझौति के बेतवा सिन्धु और केन द्वारा सिंचित और विदीर्ण एक वृहत भाग पर कुण्डार के खंगार राजा हुरमतसिंह का राज्य था ।"[1] वर्माजी ने इसमें 13वीं शताब्दी में होने वाली गतिविधियों तथा मानसिकता को उभारा है । उस समय के कुण्डार के किले का सुन्दर वर्णन वर्माजी ने सजीवता से किया है - "ओर्छा फाटक से पूर्व उत्तर की ओर थोड़ी दूरी पर सागर खिड़की और उससे कुछ अधिक दूरी पर लक्ष्मी फाटक था, सुन्दर और मुन्दर के साथ रानी सागर खिड़की पर आई । इस खिड़की से पश्चिम की ओर ओर्छा फाटक की तरफ कुछ ही डग के फासले पर एक मुहरी थी । नगर के दक्षिणी भाग में पानी का बहाव इसी में होकर था । यह मुहरी इतनी बड़ी थी कि नाटे कद का आदमी आसानी से उसमें होकर निकल सकता था । सागर खिड़की के ऊपर जो तोपें थी, उनमें से एक को रानी ने इस मुहरी के ऊपर दीवार के पीछे लगा दिया । एक से अधिक तोपें वहाँ रखी भी नहीं जा सकती थी ।"[2] इस उदाहरण को देखने से हमें यही लगता है कि वर्माजी ने उस समय के गढ़, खिड़की तथा फाटक व मुहरी का वर्णन इस तरह से किया है मानो स्वयं वर्माजी उनके बनाने में सहयोग किया हो या वहीं पर उस समय मौजूद हों । पीर अली का मुहरी के अन्दर से ब्रिटिश छावनी में जाना असंगत प्रतीत नहीं होता ।

वर्माजी के अनुसार "ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन वातावरण की अवधारणा लेखक के लिए अनिवार्य है ।" प्रत्येक पात्र और उसका कार्य किसी विशिष्ट देश, काल और वातावरण में होता है, वह उन सबमें बंधा हुआ होता है । वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सृजन के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़-कुण्डार, पृ.-7.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई P.320

विशद वर्णन किया है । ऐतिहासिक वातावरण के सृजन से हमें उस युग की झांकी तुरन्त मिल जाती है । वर्माजी ने बुन्देलखण्ड के विगतकाल का चित्रण करने के लिए सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक तीनों प्रकार की परिस्थितियों का विशद चित्रण किया है । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक रीति-रिवाज एवं परम्पराओं के आधार पर घटनाओं का चित्रण करने में वर्माजी सफल हुए हैं ।

वर्माजी के अधिकांश उपन्यास मध्ययुग से सम्बन्धित हैं । विराटा की पदमिनी का इतिहास मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् फारूखसियर जैसे निर्बल बादशाह की मृत्यु से उत्पन्न राजनैतिक अस्त-व्यस्तता से सम्बन्ध रखता है । "कचनार" का मुख्य वातावरण भी अंग्रेजों की शक्ति का बढ़ना और राज्यों की राजनैतिक उथल-पुथल का होना है । उस समय के समाज में हो रही गति-विधियों का तथा उसमें अनेक रीति-रिवाज, रहन-सहन, उत्सवों आदि का वर्णन बड़ा ही सूक्ष्म रूप से किया गया है । उदाहरण के लिए "गढ़ कुण्डार" में होली के उत्सव का वर्णन करते हुए वर्माजी लिखते हैं - "प्रजाजन वैसे तो इस काल में दबे हुये से रहते ही थे । जाति-पांति और ऊँच-नीच का भेद बहुत काफी था । परन्तु होली एक ऐसा त्यौहार था, जिसमें मन की उच्छृंखलता अपने पूरे विकसित रूप में किलोल किया करती थी । भेद-भाव और ऊँच-नीच दो एक दिन के लिए विदा मांग जाते थे ।"[1] समाज में जातिगत भेदभाव तो थे परन्तु "मृगनयनी" उपन्यास में इसकी कठोरता अधिक दिखाई देती है । अटल और लाखी के अन्तर्जातीय विवाह का विरोध तथा पंचायत द्वारा इन दोनों का बहिष्कार करने की घटना को देख सकते हैं जैसे - "अटल ने दूसरे दिन अन्न का संग्रह कर लिया । दिन भर

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ०-277.

उससे और लाखी से गांव का कोई भी नर-नारी नहीं बोला । कुछ स्त्रियों ने तो लाखी को देखते ही धरती पर बार-बार थूका । गांव की पंचायत का निर्णय सुनाने के लिए कुछ पुरुष आसपास के गाँवों को चले गये ।"[1] वर्माजी ने उस समय के लोगों के विचारों को समाज के सामने प्रगट करने का प्रयत्न किया है ।

इस उपन्यास में वर्माजी ने राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण के निर्माण के क्रम में उस काल के उत्तराधिकार नियम की ओर संकेत किया है । डा॰ त्रिभुवनसिंह के अनुसार - "उस समय वर्णाश्रम धर्म ने दासी पुत्रों के लिए किसी प्रकार की राज्याधिकार व्यवस्था नहीं की थी । उसने राजाओं के लिए रखैलियों को रखने की अनुमति तो दे रखी थी, किन्तु उनसे उत्पन्न सन्तान के लिए किसी भी प्रकार की व्यवस्था नहीं की थी ।"[2] दासी पुत्र कुंजरसिंह को राजसिंहासन प्राप्त करने की बहुत आशा का न होना, उसे राज्याधिकार न मिलना इसी व्यवस्था का परिणाम है । "झांसी की रानी" में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का चित्रण करते हुए तथा पंचायतों की प्रथा का वर्णन करते हुए वर्माजी लिखते हैं - "पंचायतों के अधिकार जब्त होकर अदालतों के हवाले नहीं हुये थे । जरा-जरा सी सड़ीगली बात के लिए राज्य के पदाधिकारियों के घरों पर हाजिरी नहीं देनी पड़ती थी । बड़े मामलों के लिए बंधे हुये हक दस्तूरों-रिश्वतों के छेदों में होकर जनता अपने नित्य के जीवन में आराम और निभाव को खींचती-घसीटती चली जाती थी ।"[3] आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था का वर्णन "कचनार" में अधिक स्पष्ट हुआ है जैसे - "जो किसान गढ़ या गढ़ी के जितना समीप जोत लिये होता था,

---

1· वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ॰-221.
2· डॉ॰ त्रिभुवनसिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ-242.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ॰- 5.

उसको लगान उतना ही ज्यादा देना पड़ता था । कभी-कभी आधे से भी अधिक, यद्यपि यह लगान कहलाता "तिहाई-तिहाई" था । समाज की आर्थिक अवस्था हिलती हुई पानी भरी थाली में पड़े तिनको जैसी थी । इस पर भी जनता की सार्वभौम मितव्ययता के कारण सोना-चाँदी और कपड़ा अनेक लोगों के पास था ।"[1]

धार्मिक अंधविश्वास उस काल में अधिक थे । "गढ़ कुण्डार" में तारा का व्रत रखकर भैरव की पूजा करने जाना, समाज के लोगों का विश्वास था कि इस व्रत के करने से योग्य पति सहजता से मिल जाता है । तारा की सहेली मानवती ने पूछा - "तारा जब तुम पूजा के पश्चात् हाथ जोड़कर आँखे मूँदकर देवता के सामने खड़ी होगी, तब किस प्रकार के आदर्श वर की कामना करोगी ? तारा कहती है - "मुझे यह सब सोचने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई । देवता की जो इच्छा होगी सो होगा ।"[2] समाज की धार्मिक वृत्ति तथा सामाजिक रहन-सहन व पूजा के दैनिक जीवन की आशा-आकांक्षा, तीज त्यौहारों का वर्णन वर्माजी ने अपने सभी उपन्यासों में किया है । इन रीति-रिवाजों और सामाजिक विश्वासों के चित्रण द्वारा उन्होंने अपनी रचनाओं को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाने का यत्न किया है । "झांसी की रानी" में हरदी, कूँ-कूँ उत्सव का वर्णन बड़ा स्वाभाविक रूप से किया गया है ।

वर्माजी के उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण की झलक भी मिलती है । "गढ़ कुण्डार" में विष्णुदत्त के पत्र द्वारा दिल्ली की राजनीतिक अवस्था का वर्णन हुआ है जैसे - "वहाँ वृत्त यह है कि बादशाह बलबन मर गया है, उसके लड़के बोगरा को गद्दी नहीं मिली,

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ.-34.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ.-240-241.

पोता मुईज़ुददीन कैकोबाद को गद्दी पर बिठलाया गया है । सोलह-सत्रह बरस का निर्बल-तन और दुर्बल मन छोकरा है । बड़े-बड़े सरदार आपस में गुट बांधकर शक्ति हथियाने की चिन्ता में लगे हुये है, और एक गुट दूसरे गुट के ध्वंस की तैयारी में निरत है ।"[1] इस उदाहरण से उस काल की राजनीतिक स्थिति का हाल मालूम हो जाता है । "झांसी की रानी" उपन्यास में वर्माजी ने अंग्रेजों के शोषण की नीति को दिखाया है । "फूट डालो और राज्य करो" की नीति उस समय पूर्णतया सफल हो रही थी । देशी राजाओं को संधियों द्वारा मुंह बन्द करके चारों तरफ भय का वातावरण बना देने की चालें खेलते रहते थे । अंग्रेजों की नीति के बारे में वर्माजी लिखते हैं - "जब तक स्वार्थ को ठोकर लगने का अन्देशा नहीं रहता, तब तक हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर का सा वर्ताव करते हैं, परन्तु जहाँ देखते है कि स्वार्थ को धक्का लग जावेगा, तुरन्त पैतरा बदल देते हैं और इतने धूर्त हैं कि इनमें से कुछ न्याय करने करवाने का ढोंग बनाते हैं और उसी ढोंग की ओट में स्वार्थ की सिद्धि करते है । जैसे हेस्टिंग्ज ने अवध की बेगमों को लूटा । कुछ अंग्रेजों ने उस पर मुकदमा चलाया बाद में उसको इनाम देकर छोड़ दिया । इधर बेचारा नन्दकुमार फांसी पर चढ़ा दिया गया ।"[2]

"भुवन-विक्रम" उपन्यास वैदिक युग के समय को लेकर लिखा है । परन्तु उस समय की शासन व्यवस्था जन-तान्त्रिक थी । राजा को पद से हटाने तथा नये राजा को पद पर बिठाने का अधिकार वहां की समिति को था । जैसे - "राजा रोमक को जनपद समिति उस समय तक के लिये अलग करती है जब कि जनपद फिर सुखी न हो जाय ।"[3] षड्यंत्र

1• वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ•-292.
2• वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ•-95-102.
3• वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ•-140.

उस समय भी बहुत होते थे परन्तु युद्ध व कला का युग "मृगनयनी" के समय अधिक दिखाई देता है । पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त और सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ के राजनीतिक युग को कला युग भी कहा जाता है । नसीरूद्दीन की ऐय्याशी और अत्याचार प्रियता दक्षिण में बहमनी सल्तनत और विजय नगर राज के युद्ध और बहमनी सल्तनत का पांच सल्तनतों में बिखर जाना, जोनपुर, बिहार और बंगाल में पठान सरदारों की निरन्तर नोच-खसोट और सबके लगभग बीच में ग्वालियर ।"[1] ग्वालियर में मानसिंह तोमर राज्य करते थे । उनको संगीत व कला में अधिक रूचि होने के कारण उस समय ग्वालियर में सुन्दर मन्दिरों भवनों का निर्माण हुआ तथा संगीत में अनेक रागों व लयों को बनाने में संगीतकारों का प्रयत्न सफल हुआ ।

मुसाहिब जू उपन्यास में सामन्तों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । अंग्रेजों की शक्ति उस समय बढ़ती जा रही थी । इतना होने पर भी बुन्देलखण्ड में परम्परा वैसे ही चल रही थी - "उन्नीसवीं शताब्दी में अन्य प्रान्तों की भांति बुन्देलखण्ड भी अंग्रेजों के चंगुल में आ गया था । फिर भी उसकी परम्परा और स्थानीय रीतियां जीवित थीं ।"[2] अहिल्याबाई के समय मुगलों का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया, लेकिन मराठा शक्ति का चारों ओर प्रभाव नज़र आने लगा था । उस काल में होने वाली घटनाओं तथा वातावरण की दृष्टि से वहां के नर्मदा घाटी, जामघाट, ओंकारेश्वर आदि का वर्णन यथार्थ रूप से किया जाता है । रानी दुर्गावती के समय शेरशाह के आक्रमण तथा अकबर के आक्रमण का वर्णन वर्माजी ने सजीव रूप से किया है । "टूटे-कांटे" उपन्यास में अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल का वर्णन करते हुये लेखक ने बताया है कि उस समय

मुगल साम्राज्य के क्षीण

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.--परिचय.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - मुसाहिब जू, पृ.--6.

होने के बाद वहां की शासन व्यवस्था का भार किस प्रकार चलता है तथा कौन लोग उसका उपभोग करते है । "भरतपुर, आगरा और मथुरा से दूर-दूर के विभिन्न जाटों ने अपने-अपने समूह खड़े किये और वे गढ़पति बनने लगे । अनुशासन में रहना उन्होंने सीखा न था, कभी-कभी आपस में लड़ बैठते थे । मुसलमान आक्रमणों द्वारा बहुधा सताये जाने पर उन्होंने भी लूटमार को व्यवसाय बना लिया था । इन गढ़पतियों के आश्रित-जन खेती किसानी के कैट काकीर्ण कार्य करते थे । ये लोग सरदारों के संचालन में युद्ध में भाग लेते थे और यथावकाश लूटमार भी करने के लिये निकल पड़ते थे । किसी का नियन्त्रण इन लोगों को भी दुस्सह था ।"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस समय में लोगों की मानसिकता किस स्तर की थी तथा शासन तन्त्र कैसे लोगों के हाथ में रहने लगा ।

वर्माजी के उपन्यासों में वर्णित पात्र तथा घटनाएं कथानक से सम्बद्ध इतिहास के अनुरूप ही है और उपन्यासो में ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में पूरी-पूरी सफलता मिली है । डा॰ त्रिभुवनसिंह लिखते है - "जहाँ तक ऐतिहासिक वातावरण का प्रश्न है "विराटा की पद्मिनी" बहुत ही सजीव एवं यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करता है ··· परन्तु इसमें जहाँ तक इतिहास का प्रश्न है ऐतिहासिक है ही नहीं ।"[2] "बी॰एम॰ चिन्तामणि का भी यही निष्कर्ष अथवा विचार है ।"[3]

वृन्दावनलाल वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के भौगोलिक वातावरण तथा स्थानीय रंग का जो विवरण उपस्थित किया है व विशेष रूप से प्रभावशाली बन सका है । ऐतिहासिक उपन्यासों में से "गढ़ कुण्डार" की कथा कुण्डार से विराटा की पद्मिनी," मुसाहिब जू"

1· वृन्दावनलाल वर्मा - टूटे कांटे, पृ॰-261.
2· डा॰ त्रिभुवनसिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ॰-259.
3· बी॰एम॰ चिन्तामणि - ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य, पृ॰-58.

की कथा भरतगढ़ तथा दतिया राज्य का वर्णन "झांसी की रानी", "कचनार","मृगनयनी","टूटे कांटे","अहिल्याबाई" की कथा इन्दौर और महेश्वर के क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं । इन उपन्यासों में इतिहास के भिन्न-भिन्न युग, वातावरण की यथार्थता और उनके चित्रण की पूर्णता के कारण सजीव लगने लगते हैं ।

3· प्रकृति चित्रण

वर्माजी के उपन्यासों में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । इसका कारण है कि वर्माजी बुंदेलखण्ड के भौगोलिक परिवेश से पूरी तरह परिचित थे । सभी उपन्यासों में वर्माजी बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक छटा के ही इर्द-गिर्द घूमते हैं । वहां के सुकुमार प्रकृति रूप की प्रशंसा करते-करते वर्माजी नहीं थकते और वहाँ की प्रचण्ड वेग से बहने वाली नदियों का स्वर, बीहड़ वन पर्वत, ऊबड़-खाबड़ भूमि का वर्णन तथा युद्ध और आखेट के चित्रण में तो वर्माजी को अद्वितीय सफलता मिली है । इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि वर्माजी को प्रकृति से अनुराग व शिकार करने का बहुत शौक था, इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के जंगलों व जानवरों का यथार्थरूप में वर्णन किया है । वहाँ के झरनों का कल-कल शब्द करौंदे के फूलों से उलझ-उलझ कर बहने वाली वायु, लहराते खेतों के झूमते हुये पौधे, वहां का स्वच्छन्द वातावरण, खण्ड-खण्ड हुये किले और वहां के बालक-बालिकाओं का सौन्दर्य आदि ने वर्माजी को भरपूर आकर्षित किया था । यही कारण है कि उनके उपन्यास सामाजिक हों चाहे ऐतिहासिक दोनों में ही ये सभी वर्णन मिल जाते हैं । बेतवा नदी का वर्णन लगभग सभी उपन्यासों में किया गया है । कहीं-कहीं तो यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण लगने लगता है । लेकिन जहाँ जंगलों का वर्णन आता है वर्माजी की यथार्थ दृष्टि स्पष्ट रूप से सामने आती

है । बेतवा नदी का जो वर्णन "गढ़ कुण्डार" में हुआ वह सुन्दर व सहज है - "बेतवा नदी अपनी दोनों धारों से कलकल करती बहती जा रही थी । कुछ दूर ऊपर से पत्थरों के टकराने का शब्द पवन के साथ मिलकर कभी धीमा और कभी प्रबल हो जाता था । दोनों धारों के बीच में कई टापू बन गये थे । एक जो सबसे बड़ा था, और अब भी है । लगभग आधा मील लम्बा और पाव मील चौड़ा था । उसके किनारों पर जामुन और ऊमर के सघन और सदा हरेभरे रहने वाले वृक्ष नीचे की ओर झुक आये थे । अस्तांचलगामी सूर्य की किरणें हरी पत्तियों के साथ कल्लोल सी कर रही थी । ... कभी बाज को और कभी किसी जंगली पशु को पानी के लिए किसी दह की ओर उतरते हुये देखकर टिटहरी बोल उठती थी ।"[1] "मृगनयनी" उपन्यास में वर्माजी ने साक नदी का अत्यन्त मनोहर वर्णन किया है । नदियों के सौन्दर्य के चित्रण के साथ-साथ वर्माजी ने मौसम के अनुसार बदलती प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण किया है ।

"टूटे कांटे" उपन्यास में वे प्राकृतिक परिवर्तन का हृदयग्राही रूप सामने रखते है जैसे - "चैत लग चुका था । तो भी कुछ ठण्ड थी आकाश में बदली, पश्चिम की वायु के तेज झकोरे । करौंदी फूल रही थी और करील फूलने को था । पलाश के पत्ते झड़ उठे थे । टहनियों में लाल अंगारे जैसे फूल लग चुके थे, परन्तु कलियों का लदाव अधिक था । सरसों पक चुकी थी, गेहूँ के पक जाने में बहुत थोड़ी सी कसर थी । सूर्योदय हो रहा था । गेहूँ के खेतों और धरती की सौंध करौंदी के नन्हे-नन्हे फूलों से मिलकर फतेहपुर सीकरी के टीलों से जा टकराती थी ।"[2] जेठ-बैशाख

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ.-96.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - टूटे कांटे, पृ.- 1.

की शुष्क गर्मी से शारीरिक और मानसिक बेचैनी के बाद अषाढ़ की पहली घटाओं तथा सावन की रिमझिम वर्षा से बुन्देलखण्ड के निवासियों के हृदय में उत्साह की लहरें उठा करती हैं। वर्षा की हरी-भरी प्रकृति ऐसी लगती है मानो पृथ्वी ने अपने ऊपर हरी ओढ़नी ओढ़ ली है। और उसके ऊपर लाल पीले फूल ऐसे लगते है जैसे हरी साड़ी के ऊपर बेल बूटे सजे हों। एक उदाहरण से वसन्त ऋतु के समय का दृश्य "भुवन-विक्रम" में देखा जा सकता है। "नगरों के आस-पास वसन्त ऋतु अपना डेरा समेट कर जंगल में बसेरे के लिए चली आई थी। पेड़ों में आधे पीले पत्तों के बीच-बीच में फूल अब भी थे जो टपक-टपक कर नीचे से गुंजान पौधों की अधपीली पत्तियों में उलझ जाते थे। कहीं-कहीं छोटे-छोटे खुले मैदानों में दूबों के चकत्ते थे, और उनमें छिपी-लुकी सी शंखाहती की छोटी-छोटी रेंगती हुई सी डालियां। उन डालियों पर दूब की छाया में कटोरीदार सफेद फूल झांक रहे थे।"[1] वर्माजी ने कई स्थानों पर प्रकृति का मानवीकरण भी किया है। प्रकृति में मानवीय भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हुए उन्होंने मनुष्य के समान प्रकृति को हंसते-गाते खेलते-कूदते दिखाया है। जब प्रकृति प्रसन्न होती है तो उसमें मादकता और मस्ती चारों ओर छा जाती है। इसके साथ ही एक और बात की ओर भी लेखक ने ध्यान दिलाने का प्रयास किया है कि जब मनुष्य दुखी होता है तो उसको प्रकृति भी दुखी नज़र आती है और कभी मनुष्य प्रसन्न होता है तो उसको प्रकृति अपने साथ ही हर्षित होती जान पड़ती है। यह प्रकृति और मनुष्य का दीर्घकालीन जीवन साहचर्य है। मनुष्य के भाव जैसे होंगे प्रकृति उसको वैसी ही नज़र आती है। वर्माजी के अन्तिम उपन्यासों में प्रकृति के विस्तृत विश्लेषण की प्रवृत्ति दीख पड़ती

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - भुवन-विक्रम, पृ.-72.

है । ऐसे वर्णनों से कथा की गति रुक सी जाने का आभास होता है । कहीं-कहीं उन्होंने लम्बे प्रकृति वर्णन किये हैं और कहीं-कहीं सीधा-सपाट वर्णन करने की बजाय अलंकृत वर्णन के द्वारा रंग-बिरंगे चित्र बनाने का प्रयास किया है । चाँदनी का श्रमसाध्य विवरण इस प्रकार किया है - "चन्द्रमा की किरणें रिपटती हुई झिल-मिल जान पड़ती थी, मानो चाँदी की चादरों के आवरों पर आवरे पिलपिला रहे हों । छोटी-छोटी सी आड़ी-सीधी लहरें उठ-उठ कर आवरों को पहन-पहन लेती थी । सम्पूर्ण लहरों का समूह चाँदी की उन चादरों को ओढ़ लेने की होड़ सी लगा रहा था । पवन के आने-जाने वाले झंकोरे इन आवरों को और भी चंचल कर रहे थे । लहरों की कलकल झोंकों पर नाचती खेलती हुई खेत के पौधों की झूम पर उतर-उतर पड़ रही थी । चन्द्रिका खेत के हरे पौधों की अधपकी बालों को अपनी कोमल उंगलियों से खिला-सा रही थी ।"[1] यहाँ पर चांदनी के सौन्दर्य को कल्पना या उपमाओं द्वारा अलंकृत करने का प्रयत्न है । नदी के जल पर चन्द्रमा की किरणें चांदी की चादरों जैसी प्रकाशमान हो रही हैं । इसमें एक दृश्य बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है । जैसे किरणें इधर कलकल करती लहरों पर हैं तो उधर किनारे खेत में झूमते पौधों को भी छू लेती हैं । लेकिन वर्माजी ने इस दृश्य का अपनी कल्पनाशक्ति से ज्यादा ही वर्णन कर दिया । इसी से शशिभूषण सिंहल ने आलोचना करते हुये लिखा है कि - "बात को तोड़-तोड़कर कहने तथा विभिन्न अंगों को अलग-अलग रखने के प्रयत्न में उसके सीधे-सादे प्रभाव को धक्का लगा है । चांदी के आवरों की कल्पना कुछ क्लिष्ट हो गयी है । अतः पाठक की कल्पना में हिलोरे लेती नदी पर खिलखिलाती चांदनी का चित्र कदाचित् कठिनाई से साकार हो पाएगा ।"[2]

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ०-15.
2. डॉ० शशिभूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ०-251.

शशिभूषण सिंहल से मैं पूरी तरह से सहमत नहीं हूँ क्योंकि वर्माजी की कल्पना व प्रकृति वर्णन इतना क्लिष्ट नहीं है कि प्रकृति प्रेमी पाठक को समझ न आता हो । अगर पाठक को बुन्देलखण्ड की भाषा का ज्ञान हो और प्रकृति से लगाव हो तो ऐसा नहीं होगा की पाठक को उनका प्रकृति चित्रण समझ में न आता हो ।

कवियों, लेखकों, कहानीकारों और उपन्यासकारों आदि ने अपनी-अपनी तरह से प्रकृति को महत्व दिया है परन्तु वर्माजी ने अपने सभी उपन्यासों में प्रकृति को अधिक महत्व दिया है । क्योंकि उन्होंने अपनी आंखों से जंगल की प्रकृति को देखा था इसी कारण से ही वर्माजी प्रकृति का यथार्थ और सार्थक वर्णन करने में सफल हुए है । वर्माजी के पास आस-पास की प्रकृति को निरखने-परखने वाली भावुक अन्तर्दृष्टि थी यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति को मानव की भावनाओं से जोड़ने की कोशिश की है ।

4· <u>कथा वस्तु संयोजन</u>

उपन्यास में घटनाओं का कार्य कारण श्रृंखला में बंधकर एक ठोस और सुसम्बद्ध होना जरूरी होता है, उसी से श्रेष्ठ कथावस्तु का निर्माण होता है । कथावस्तु में कथा का प्रवाह स्वाभाविक गति से होना आवश्यक है क्योंकि पढ़ते समय किसी को भी ऐसा नहीं लगना चाहिये कि उपन्यासकार जबरदस्ती घटनाओं को कृतिमता का रूप दे रहा है, जो अविश्वसनीय प्रतीत होती है । अच्छा उपन्यासकार वही होता है जिसको वास्तविकता का तथा सत्यता का ज्ञान होता है । उस वास्तविकता के लिए वैसा ही वातावरण होना अनिवार्य है । जब उपन्यासकार की कल्पना-शक्ति अनुभव एवं ज्ञान का सहारा लेकर ही कथावस्तु के निर्माण-कार्य में प्रवृत्त होगी तो उसमें सत्यता अवश्य आ

सकती है । कथावस्तु में चरित्रों का स्थान महत्वपूर्ण है । ये एक दूसरे से गुंथे होते हैं । अगर दोनों में द्वन्द्व चलता है तो उपन्यास के अधिकतर चरित्रों का गला ही घुट जाता है जिससे कथा महत्वहीन लगने लगती है और कथा के अभाव में उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं रह जाता है । कथा ही उपन्यास का विषय है । उपन्यास की गतिशीलता बनाने में कथा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है ।

उपन्यासकार जब कथावस्तु का संयोजन वर्तमान जीवन की घटनाओं से न करके अतीत के गर्भ से करता है तो उस वस्तु को ऐतिहासिक कथावस्तु कहते हैं । इसमें कथा की सत्यता को अधिक महत्व दिया जाता है । ऐतिहासिक कथावस्तु काल्पनिक कथावस्तु के सदृश ही मानव-मस्तिष्क की कथा-सम्बन्धी जिज्ञासा को तुष्ट करती है । जिस देश और काल के इतिहास से कथावस्तु का संयोजन हुआ करता है, उस देशकाल के जीवन संस्कृति तथा समाज के यथातथ्य चित्रण द्वारा राष्ट्रीय गरिमा को हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर लेखक हमारी राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करता है । ऐतिहासिक कथावस्तु में महान व्यक्तियों के महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों एवं उनके आदर्शों द्वारा हमें नवचेतना व नैतिक शक्ति मिलती है ।

5· ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु

वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड के अतीत के चित्रण को अपनी कथा का आधार बनाया है । बुन्देलखण्ड के विगत वैभव के प्रति उनके हृदय में गौरव की भावना विद्यमान है, इसलिए उन्होंने बुन्देलखण्ड के दूरस्थ अतीत का श्रद्धापूर्ण नेत्रों से निरीक्षण किया है तथा अपने उपन्यासों में बुन्देलखण्ड की महान विभूतियों तथा इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं को अपनी कथा का आधार बनाया है । "गढ़ कुण्डार" में मुख्य कथा खंगारों का नाश एवं बुन्देलों का कुण्डार पर आधिपत्य स्थापित करना है । परन्तु

इस कथा के साथ-साथ अग्निदत्त और मानवती एवं दिवाकर व तारा का प्रेम प्रसंग भी चलता है । अनेक छोटी-छोटी उपकथाएं आदि आती है परन्तु कुछ समय बाद वे विलीन हो जाती है ।"गढ़ कुण्डार" का अन्त सफलतापूर्वक समाप्त होता है परन्तु जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है । "गढ़ कुण्डार" सन 1277 {संवत 1345} के लगभग की कथा है । लेखक ने स्वयं लिखा है - "इस उपन्यास में ... मूल घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है, परन्तु खंगारों के कारणों में थोड़ा सा मतभेद है ।"[1] उपन्यास की कथावस्तु लम्बी है । डॉ॰ रामदरश मिश्र जी ने इस उपन्यास के कुछ प्रसंगों को अनावश्यक ठहराया है, जैसे दिवाकर के प्रेम को लेकर वे लिखते है - "तारा और दिवाकर का प्रणय-व्यापार दूसरी प्रासंगिक कथा है । वास्तव में इस कथा से मुख्य कथा के साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है । उसके न रहने से कथा में कोई बाधा नहीं पड़ती ।"[2] रामदरश मिश्र के विचारों से मैं पूरी तरह सहमत नहीं हूँ क्योंकि यह कथा के सूत्र को आगे तो बढ़ाता/ही है तथा आदर्श प्रेम की स्थापना करने में सफल भी होता है । वर्माजी ने उस समय के समाज की मानसिकता को पूरी तरह से दिखाने की चेष्टा की है ।

"झांसी की रानी" की कथावस्तु सुगठित है लेकिन इसको औपन्यासिक जीवन चरित्र कहना ही अच्छा है । इसमें घटनाएं बहुत है, परन्तु उनको प्रासंगिक कथा नहीं कह सकते, क्योंकि सभी घटनाएं रानी के भावी कार्यक्रम को कार्यान्वित करने से जुड़ी रहती हैं । कथानक उषा, उदय, मध्याहन और अस्त चार भागों में विभाजित है और चारों में रानी के जीवन का क्रमिक विकास दिखाया गया है ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ॰- परिचय-3.
2· रामदरश मिश्र - वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰-38.

इतिहास और उपन्यास के बीच द्वन्द्व प्रारम्भ से अन्त तक दृष्टिगोचर होता है । स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती हुई रानी कहती है - "यदि हिन्दुस्तान में कोई भी उस पवित्र काम को अपने हाथ में न ले, तो भी मैंने अपने कृष्ण के सामने, अपनी आत्मा के भीतर उसका बीड़ा उठाया है । करूँगी और फिर करूँगी ..... एक दिन आवेगा जब उसी जनता के आगे होकर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊँगी ।"[1] रानी लक्ष्मीबाई को लेकर ही कथावस्तु का संयोजक होता है । इसी प्रकार महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी और रानी अहिल्याबाई के इर्द-गिर्द ही कथा का विन्यास होता है । "मृगनयनी" उपन्यास की कथावस्तु का संयोजन लेखक ने बहुत ही सुसम्बद्ध रूप से किया है । मुख्य कथा को रोचक और आकर्षक बनाने में अटल और लाखी की रोमांसपूर्ण कथा का योगदान महत्वपूर्ण है ।

माधव जी सिंधिया की कथावस्तु इतिहास पर आधारित होने के कारण उसके संगठन में अधिक जटिलता आ गई है । प्रस्तावना में उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के बाद निजाम युद्ध की घटना आती है । इसके पश्चात दिल्ली में शिहाबुद्दीन की मीरबख्शी के रूप में नियुक्ति के बाद वजीर सफदरजंग और शिहाबुद्दीन के वार्तालाप में दिल्ली की अराजक स्थिति और मराठों को पंजाब और राजस्थान से चौथवसूली के अधिकार का इतिहास प्रस्तुत किया गया है । अत: उपन्यास की कथा का क्षेत्र दिल्ली, पंजाब, अवध, मथुरा, पूना, कर्नाटक तथा अन्य राज्य शामिल होने के कारण कथा सूत्र में बिखराव सा दिखाई देता है । अनेक घटनाओं तथा विवरण कथा से अलग दिखाई पड़ते हैं जिससे कथानक में जटिलता आ गई है । इतना होने पर भी "माधव जी

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ·-163.

सिंधिया" एक अच्छा ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है । लेकिन "मुसाहिब जू" की कथा इतनी छोटी है कि उसमें प्रासंगिक कथाओं का कोई स्थान नहीं है । इसमें एक कथा ही अन्त तक चलती है । इस कथा का मुख्य आधार सेवकों की रक्षा करने तथा उनको सम्मान की दृष्टि से देखना प्रमुख है ।

"विराटा की पद्मिनी" की कथा का आधार इतिहास के साथ जन-श्रुतियों का होना मुख्य है । इसकी कथा है दांगी कुमुद का अनुपम सौन्दर्य तथा अन्त में जल समाधि लेना । जनश्रुति के विषय में वर्माजी ने लिखा है - "सूरतानपुर के नन्दू पुरोहित एवं एक वयोवृद्ध दांगी से तहकीकात करके की है ।"[1] इस कथावस्तु में कुमुद के देवीत्व को लेकर कुतुहल उत्पन्न किया गया है । इसमें प्रासंगिक कथाओं से मुख्य कथा का विस्तार होता है । नायकसिंह कुमुद को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देता है तो दूसरी ओर अलीमर्दान कुमुद को प्राप्त करने के लिए सिंह गढ़, रामनगर आदि स्थलों पर युद्ध करता है । इस कथा से मुख्य कथा का विस्तार होता है तथा कुंजरसिंह कुमुद के प्रेम को लेकर कथा का सूत्र आगे बढ़ता है । इसमें गोमती, छोटी रानी तथा बड़ी रानी की कथा इतना अधिक महत्व नहीं रखती है जिससे की कथा में प्रभाव उत्पन्न कर सके ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि वर्माजी की कथावस्तु में आकर्षण है । उन्होंने अपने उपन्यासों के लिए ऐसी-ऐसी कथाएं चुनी हैं जो रंगीनी तथा कुतुहलवर्द्धिनी तथा मधुरता के कारण एक प्रभाव उत्पन्न करती हुई चलती है । परन्तु कभी-कभी उनके उपन्यास में कथा का संयोजन सुसंगठित

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी, पृ.-"परिचय"

न होने से पढ़ने में ऊब सी महसूस होने लगती है । जैसे गढ़ कुण्डार के प्रारम्भिक अध्याय तथा चौकिया में विभिन्न वंशों का विवरण न देकर उनको दो-तीन अध्याय में समेट लेते तो इतनी ऊबाउ स्थिति नहीं होती । "कचनार" में डरू का जंगल में भागना तथा उस जंगल का विस्तार से वर्णन करना इतना महत्वपूर्ण नहीं था । इतना होते हुए भी वर्माजी की ऐतिहासिक कथावस्तु में अनेक गुण हैं । कुछ गलतियाँ व अवगुण को इतनी अहमियत न देना ही अच्छा है । क्योंकि झांसी की रानी में कथा का अनावश्यक विस्तार दिखाई देता है । लेकिन यह श्रेष्ठ उपन्यास की कोटि में आता है ।

6· कथोपकथन एवं भाषाशैली

कथोपकथन या संवाद उपन्यास का महत्वपूर्ण अंग है । इसका प्रयोग कई उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर किया जाता है । डॉ· रामकुमार वर्मा संवादों में सजीवता को आवश्यक मानते हुये लिखते हैं - "मानव सारे जीवन संवादों का ही प्रयोग करता है और उन्हीं के माध्यम से अपने समस्त कार्य व्यापार चलाता है । संवादों पर ही पूर्णतः निर्भर होने के कारण नाटक जीवन के सर्वाधिक निकट होते हैं । कुशल लेखक संवादों के प्रयोग के द्वारा अपनी कृति में नाटकीयता लाते हैं ।"[1] वर्माजी के संवादों को देखें तो ऐसा लगता है कि वे स्वाभाविकता की दृष्टि से अपनी संवाद योजना में अपने पात्रों के शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर का पूरा ध्यान रखते हैं । उनके संवादों में एक गुण है संक्षिप्त और सारगर्भित होना । वे पात्रों की थोड़ी सी बातचीत में ही अपना

1· डॉ· रामकुमार वर्मा - वर्मा और स्काट के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ·-221.

उद्देश्य कह डालते हैं जैसे "कचनार" और दलीपसिंह की बातचीत से पता चलता है:

कचनार - मन्ना ने क्या पाप किया है ।
दलीपसिंह - उसको मैं क्या दण्ड दे रहा हूँ ?
कचनार - बैजनाथ ने कौन-सा पाप किया था ?
दलीपसिंह - उसने काकाजू के मारे जाने में सहायता की थी ।
कचनार - आपने अच्छी तरह से छान-बीन कर ली थी ।
दलीपसिंह - मुझको विश्वास है कि उसने अपराध किया ।
कचनार - क्या विश्वास कर लेने पर फिर गवाही, साखी, प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रहती ?"[1]

इस वार्तालाप से ही स्पष्ट हो जाता है कि कचनार क्या कहना चाह रही है और उसका उद्देश्य क्या है ? बातचीत का सीधा सम्बन्ध पात्रों से ही होता है । वर्माजी को मानव मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान है अतः वे पात्रों के मनोभावों को बातचीत के माध्यम से बाहर निकालने में सफल होते हैं । अटल व लाखी का प्रेम से भरा सरल संवाद भोलापन, मार्मिकता तथा स्वाभाविकता लिए हुये है । जंगल में तनिक एकान्त मिलने पर लाखी अटल से धीरे से पूछती है - "क्या बात है ?"

अटल कहता है - "क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नहीं फटता
फिर भी ?
"मैं तुमको बहुत चाहता हूँ । बहुत प्यार करता हूँ ।
"मैं जानती हूँ ।"

----

1. वृन्दावनलाल वर्मा - कचनार, पृ०-74

लाखी ने आंखे नीची कर ली । अटल ने उसके कन्धे को एक बांह में भर लिया ।

"हम तुम एक होकर सदा रहना चाहते है । कभी अलग नहीं होंगे । अटल ने कांपते हुए स्वर में कहा ।"

"कैसे हो सकता है ऐसा?हमारी तुम्हारी जात-पांत अलग है ।"

दोनों की भावाभिव्यक्ति में नितान्त सरलता है । दिखावटी संकोच प्रकट करना उनको नहीं आता है । सीधी-सादी बात कहना उनके स्वभाव के अनुकूल है । संवादों में व्यंग्य की योजना द्वारा कथावस्तु में अपूर्व प्राणवत्ता भरने की कला भी एक-आध स्थलों पर दिखाई देती है । जैसे चोरी करते हुए पकड़े जाने पर जब भोपत कोकड़ी को निगरानी का दण्ड दिया जाता है तो वह रोने लगता है । इस पर व्यंग्य से अहिल्याबाई कहती है - "तुम स्वभाव से ही चोर हो । छोड़ दूंगी तो फिर यही करोगे । तुम्हारे साथ कठोरता नहीं की जायेगी । पूरा भोजन मिलेगा ... परन्तु बाहर नहीं निकल सकोगे ।"

"श्रीमन्त सरकार, मल्हारराव ने ..."

"चुप ! ... अहिल्याबाई ने भोपत को आगे बोलने न दिया, सिपाही उसे ले गये ।"[2]

इस संवाद से अहिल्याबाई के चरित्र का उद्घाटन होता है साथ ही व्यंग्य का चुटीलापन सामने आता है । वर्माजी की संवाद कला की निपुणता का एक उदाहरण "टूटे-कांटे" उपन्यास में नूरबाई तथा रोनी के वार्तालाप में एक शब्द का एक वाक्य है, यह वर्माजी के चुस्त संवाद लेखन का प्रत्यक्ष उदाहरण है । संवाद द्रष्टव्य है : -

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - मृगनयनी, पृ.-27.
2. वृन्दावनलाल वर्मा - अहिल्याबाई, पृ.-96.

{रोनी} बोली - "कुछ बातें करें और बातें करते-करते सो जांय ।"
{नूरबाई} अच्छा । करो ।"

"तुमने कभी भैंस दोही है ?"
"नहीं ।"
"खेत काटे ?"
"नहीं ।"
"उपले पाथे ?"
"हाँ ।"
"कुएँ से पानी भरा ?"
"हाँ ।"
"रसोई तो अच्छी बनाती होगी ?"
"नहीं ।"
"चक्की पीसी ?"
"नहीं ।"
"तो क्या अभी तक झख ही मारती रही ?"[1]

इसमें प्रारम्भ से प्रवाह है, गति है, रोनी के अन्तिम कथन से खीझ व हँसी आने लगती है । इन वाक्यों से पात्रों की भावनाओं का अन्दाजा लग जाता है । वर्माजी ने अपने पात्रों को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने की पूरी कोशिश की है । "विराटा की पद्मिनी" में राजा नायक सिंह व लोचनसिंह की बातों से उनकी सारी चारित्रिक प्रवृत्तियां साफ झलकती है । राजा नायकसिंह की बातों से उनकी काम वासना तथा चिड़चिड़ेपन के साथ क्रोध की प्रवृत्ति देखी जा सकती है । जबकि लोचनसिंह

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - टूटे कांटे, पृ.--352.

की बातों में बुन्देलों का अक्खड़पन दिखाई देता है । पात्रों के अनुसार प्रेम, सौन्दर्य व वीरता के कथोपकथन वर्माजी बदलते हैं । "झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" अपने सरदारों को ललकार कर कहती है - "यह आवश्यक नहीं है, स्वराज्य की स्थापना हम अपने जीवनकाल में ही देखते हैं । सीढ़ी के डण्डे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुँच जाते । एक ही त्याग, एक ही मरण, एक ही जन्म से स्वराज्य नहीं मिलता । स्मरण रखो, हम को केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पर नहीं । दृढ़ उद्देश्य और निरन्तर कर्म, हमारा केवल ध्येय यह है । जीवन कर्त्तव्य पालन का नाम है, कर्त्तव्य-पालन करते हुए मरना जीवन का दूसरा नाम है ।"[1]

संवादों का इतना सजीव स्वाभाविक एवं आकर्षक स्वरूप हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों में हमें नहीं मिलता है । ये संवाद कहीं भी गढ़ी हुई गुरुता एवं अलंकारों तथा थोथी भावुकता के बोझ से दबे नहीं हैं । हाँ कहीं-कहीं अलंकार अपने सादे रूप में आकर अवश्य ही उन्हें और बल दे जाते हैं ।

भाषाशैली : लेखक के विचारों के संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है । भाषा का सम्बन्ध समाज और मनुष्य दोनों से है । साहित्यकार की सफलता तो पूर्णत: भाषा पर ही आश्रित है । उपन्यासकार भाषा के प्रयोग से ही सामाजिक यथार्थ को उभारता है । विचारों की सफल अभिव्यक्ति के लिए उचित भाषा आवश्यक है । भाषा के साथ शैली अलग होते हुए भी अनिवार्य रूप से जुड़ी है । भाषा का प्रस्तुतीकरण शैली है । शैली भाषा को विधा की मांग के अनुसार रूप प्रदान करती है ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ०-395-396.

वर्माजी के अधिकांश उपन्यास ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखते हैं । ऐसे उपन्यासों के कुछ पात्र ठेठ ग्रामीण भी होते है । उन सबकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम साधारणतया खड़ी बोली को रखा गया है । परन्तु वर्माजी ने पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है जैसे झांसी की रानी की मृत्यु पर दृढ़ हृदय पठान गुल मुहम्मद भी द्रवित हो उठता है, "बस बाई ! अब बंदूक या कोई हथियार नहीं छूयेगा । अब खुदा पाक की याद में बाकी जिन्दगी खत्म करेगा ।"[1] एक अंग्रेज सवार उससे रानी के मजार के विषय में पूछता है - "यह किसका मजार है साई साहब ? गुल मुहम्मद उत्तर देता है - "अमारे पीर का । बौ बौत बड़ा बली था ।"[2] गुलमुहम्मद एक पठान है । यहां उसकी भाषा ठीक उसी वर्ग के लोगों की सी है । माधव जी सिंधिया में वर्णन प्रधान शैली का सम्यक उपयोग हुआ है । घटनाओं और युद्धों के वर्णन के साथ फागुन माह में प्रकृति की एक झलक यहां दिखाई देती है - "फागुन का महीना लग गया था । यकायक ठण्ड कम हो गई । शीशम और नीम के पेड़ों ने पवन के ठण्डा होने के पहले ही पीले पत्ते करके झाड़ दिये थे । अब टहनी-टहनी पर केसरिया रंग की चिकनी फुनगियां फूट पड़ी और प्रात:कालीन किरणों के साथ खेल-खेलकर हरी होने लगी ।"[3] इसमें भाषा सहज व आडम्बरहीन रूप में दिखाई देती है ।

"अहिल्याबाई" उपन्यास में जहां वर्माजी ने प्राकृतिक दृश्य का और अहिल्याबाई के व्यक्तित्व का निरूपण किया है । वहाँ आदि से अन्त तक उसमें आलंकारिकता विद्यमान रहती है जैसे - "उनकी आयु इस समय लगभग, तिरसठ बरस की थी, केशों का रंग तिरचावरी, माथा

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ.-283.
2. वही, पृ.-497.
3. वृन्दावनलाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ.-153.

चौड़ा, भौंहें लम्बी खिंची हुई, आँखे बड़ी-बड़ी, चेहरा गोल, भरा हुआ। ... ओठ निश्चय और उदारता के द्योतक, शरीर सुडौल, कद मझोला, आँखों में ऐसी दीप्ति, ऐसा तेज जैसा योगियों में सुनते आये है।"[1]

पात्रों के चरित्र की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए विश्लेषणात्मक शैली का भी व्यापक प्रयोग किया गया है। इसके सहारे लेखक पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक प्रतिक्रियाओं को हमारे सामने खोलता चलता है। "गढ़ कुण्डार" में नागदेव की मनोदशा का चित्र साकार लगता है - "नाग की वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। एक ओर सामन्त नाग, दूसरी ओर आहत नाग। एक ओर मनुष्य नाग, दूसरी ओर दर्पयुक्त नाग। एक ओर राजकुमार नाग, दूसरी ओर प्रणयोन्मत्त नाग। एक ओर वीर नाग, दूसरी ओर उद्धत नाग, एक ओर नागदेव और दूसरी ओर नाग राक्षस। देवता पर राक्षस विजय पा चुका था।"[2]

वर्माजी के सभी उपन्यासो में एक पात्र तो ऐसा मिल जाता है जो बुन्देलखण्ड की भाषा का प्रयोग करता है। 'गढ़ कुण्डार' में अर्जुन की भाषा को देख सकते है जैसे - "नाग अर्जुन से कहता है तुम मेरे लिए क्या कर सकते हो। अर्जुन ने बड़े उत्साह के साथ उत्तर दिया - "महाराज, अपुन के लानें मै का करबे जोग हों। पै समै पेर पै दिखा हों। नाग ने उसी भाव से अर्जुन से कहा - "यह तो तुम्हारी टाला-टूली है। ठीक-ठीक बतलाओ, तुम मेरे लिए क्या करने को तैयार होओगे। अर्जुन ने भोलेपन से कहा - "महाराज, और तो मैं कछू नईंकत पै आप जा सांची जानिऔं कै मोरे तन की अपुन के लानें बोटी-बोटी कट कै गिरजाय, तो गिरा देहों। और छोटे मों का बड़ी बात कओं।"[3] इसी तरह झांसी की

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अहिल्याबाई, पृ·-8.
2· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ·-71.
3· वही, पृ·-71.

रानी में झलकारी कोरिन के कथनों में अर्जुन की तरह ही सजीवता है । लक्ष्मीबाई के दरबार में अंग्रेजों के सरिश्तेदार के सामने कोरियो,काछियों, चमार व अहीर आदि के मुंह से बुन्देलखण्ड की भाषा का प्रयोग करवाया गया है । वर्माजी अपनी भाषा के बारे में लिखते है - "मै अपनी बात साधारण पाठकों तक पहुँचाना चाहता हूँ । सिपाही की तलवार का लोहा अच्छा होना चाहिये और धार तेज । तलवार का म्यान सादा । यदि म्यान पर जरदोजी और नक्काशी भर दी गई और तलवार का लोहा कच्चा रहा तो सिपाही हारे और समाप्त हुए बिना न रहेगा । यदि तलवार की धातु अच्छी और पक्की हुई और धार भी तेज, परन्तु म्यान बहुत सजीला भड़कीला हो तो लगता है कि तलवार चलाने के समय कहीं म्यान के आकर्षण में फंस न जाये । फिर परिणाम वही होगा जहाँ जैसी अटल हो वहां वैसी भाषा का उपयोग किया जाना चाहिये । मैं भाषा को जबरदस्ती बोझिल बनाने के पक्ष में नहीं हूँ ।"[1] वर्माजी का कथन कुछ अंशों तक सत्य है क्योंकि उन्होंने अपने उपन्यासों में भाषा को बोझिल न बनाकर प्रेमचन्द जी की भाषा के समान ही सीधी, सहज और ओजयुक्त भाषा का प्रयोग किया है । अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए वे समय-समय पर संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा बुन्देली शब्दों का व्यवहार करते है । बुन्देलखण्डी वातावरण उत्पन्न करने के लिए बुन्देली के अनेक शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है । जैसे - "भरभराकर गिरना","भरका","टौरिया","आसे","आवसा","बीधना", झरम आदि । वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा अपने उपन्यासों की भाषा को अलंकारों के प्रयोग से चमत्कारिक न बनाने के कारण शिवकुमार मिश्र लिखते है - "अनेक प्रारम्भिक उपन्यासों में तो इस सीधी-सादी भाषा

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अपनी कहानी, पृ·-238.

ने सौन्दर्य के स्थान पर शिथिलता की ही सृष्टि की है । बाद के उपन्यासों में इतनी शिथिलता अवश्य नहीं दृष्टिगोचर होती पर इससे यदि यह मान लिया जाय कि उपन्यासकार ने बाद में उसे सजाने-संवारने में परिश्रम किया है तो भी हम इसे नहीं मानते । ··· उपन्यासकार उसकी ओर से बाद में भी वैसा ही उदासीन रहा है जैसा वह आरम्भ में था ।"[1] मिश्रजी के कथन से मैं पूर्ण रूप से सहमत नहीं हूँ क्योंकि वर्माजी की भाषा में शिथिलता एक दो उपन्यास में कहीं-कहीं नज़र आती है लेकिन उनके बुन्देली भाषा के प्रयोग व प्रवाहमयी रूप से लिखते समय कहीं पर भी शिथिलता नज़र नहीं आती है । जहाँ वर्माजी विशेष परिस्थिति अथवा व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं वहाँ वे भाषा की ध्वन्यात्मक शक्ति, अलंकार और कल्पना सभी का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने लगते हैं । पात्रों का चित्रण करने में वर्माजी अधिक सतर्क रहते हैं । शशिभूषण सिंहल के अनुसार - "वर्माजी एक-एक शब्द, उपमा और उत्प्रेक्षा तोल-तोल कर रखते जाते हैं, वर्णन में छोटे-छोटे वाक्य होते हैं । ठीक शिल्पकार की छैनी के एक-एक कटाव की भाँति स्पष्ट उभरे हुए ।"[2] वर्माजी ने नारी के लिए अनेक सुन्दर व कोमल उपमायें दी हैं । उनकी उपमायें भी अलग-अलग रूपों में देखी जाती हैं । जैसे गढ़ कुण्डार में तारा को वर्माजी ने उपमा का नया रूप दिया है - "घाटियों से मैदान में आती तारा हिमालय से निःसृत गंगा जैसी जान पड़ती है ।"[3] वर्माजी की भाषा सीधी सपाट है, लेकिन कभी-कभी भाषा को सुन्दर बनाने के चक्कर में एक ही साथ कई उपमाओं का प्रयोग कर देने से वह उपमा अस्वाभाविक प्रतीत होने लगती है ।

1· शिवकुमार मिश्र - वृन्दावनलाल वर्मा, उपन्यास और कला, पृ·-192.
2· शशिभूषण सिंहल - उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा , पृ·-259.
3· वृन्दावनलाल वर्मा - गढ़ कुण्डार, पृ·-241

वर्माजी के उपन्यासों में भाषा सम्बन्धी कई दोष देखे जा सकते हैं जैसेकि मुसलमान पात्रों द्वारा अस्वाभाविक भाषा का प्रयोग करवा देने से भाषा बेमेल लगने लगती है । 'गढ़ कुण्डार' में करीम नागदेव के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किए जाने पर वह अनेक हिन्दी के उच्च स्तर के शब्दों का प्रयोग करता है । वह अरब देश का है और कालपी का मुसलमान सेना का सैनिक । उसके मुख से प्रसन्न, प्रयोजन, आज्ञा, दया आदि शब्दों को सुन कर आश्चर्य होने लगता है । उनकी भाषा में दोष होते हुए भी उपन्यास पढ़ते समय अच्छा लगता है । उनके वाक्यों में कुछ जगह असमानता है लेकिन यह कम जगह ही मिलती है ।

7. उद्देश्य

वर्माजी द्वारा ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करने के पीछे क्या उद्देश्य है ? यह उनके उपन्यास पढ़ने पर ही रचना का उद्देश्य सामने आता है ।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के पीछे वर्माजी का उद्देश्य था बुन्देलखण्ड के गौरवमयी व स्वर्णिम अतीत के उदघाटन द्वारा भारतीय परम्परागत आदर्शों को प्रतिष्ठित करना । इस विषय पर ओम शुक्ल का कहना है कि वर्माजी के उपन्यास लिखने का उद्देश्य यह है "वे अतीत के किसी न किसी धुंधले चित्र को अधिक स्पष्ट करने अथवा किसी महत्वपूर्ण विभूति के आदर्श चरित्र की झांकी देने के लिए ही ऐतिहासिक उपन्यास रचने की ओर अग्रसर हुए हैं ।"[1] ऐतिहासिक उपन्यासों में नामकरण, विषय चयन, निष्कर्ष निर्धारण इन तीनों विधियों का वर्माजी

---

1. श्रीमती ओम शुक्ल - हिन्दी उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास, पृ.-160.

ने सफलतापूर्ण निर्वाह किया है । "गढ़ कुण्डार" में खंगारों की बुंदेलों द्वारा नाश करने की घटना को अपना विषय बनाया है । इस उपन्यास में सामन्तीय युग की प्रवृत्तियों को उजागर किया गया है ।"झांसी की रानी लक्ष्मीबाई" जैसी वीर और तेजस्वी चरित्र को अपने उपन्यास का विषय उन्होंने बनाया । अहिल्याबाई, महारानी दुर्गावती, मृगनयनी, कचनार, रामगढ़ की रानी, माधव जी सिंधिया, मूसाहिब जू आदि विभूतियों को वर्माजी ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया । इस तरह भारतीय इतिहास के उज्ज्वल अतीत के अल्पज्ञात उपेक्षित पृष्ठों का उद्घाटन ही वर्माजी का मुख्य उददेश्य रहा है । माधव जी सिंधिया, झांसी की रानी, उपन्यासों का उद्देश्य राष्ट्रीय गरिमा से पूर्ण व्यक्तित्व, स्वराज्य की चाह रखने वालों का चरित्र का चित्रण करना व भारतीयों में पारस्परिक फूट व असहयोग जैसी कमियों को समझाने के लिए समाज का ध्यान केन्द्रित करना है । "विराटा की पद्मिनी" में भी सामन्ती विचार व दासी पुत्र की समस्या को लिया गया है । उसमें उन्होंने अंध परम्पराओं, रूढ़ियों से जकड़े समाज की दुर्दशा को सामने रखने का प्रयास किया है । "मृगनयनी" उपन्यास लिखने का उद्देश्य कला को जागृत करना व आदर्श भारतीय नारियों का प्रेम व त्याग का वर्णन करना है । जात-पांत के भेदभाव को मिटाना तथा 'भुवन-विक्रम' द्वारा लोकतन्त्र की स्थापना करना लेखक का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

अत: हम कह सकते है कि वर्माजी ने अपने उपन्यासों में उद्देश्यों को ध्यान में रखकर उनकी रचना करते थे । एक भी उपन्यास ऐसा नहीं मिलेगा जो उद्देश्य विहीन हो । उनके उपन्यासों में उद्देश्य का आशय है अतीत व वर्तमान का समन्वय करना । वर्माजी अतीत को वर्तमान की दृष्टि से देखते थे और वर्तमान को अतीत की बुराईयों की ओर ध्यान केन्द्रित करवाकर उसको दूर करने की चेष्टा करते थे ।

.....

उपसंहार

उपन्यास आधुनिक विधा है, और ऐतिहासिक उपन्यास तो और भी नवीन। हिन्दी उपन्यास को बुलन्दियों तक पहुँचाने वाले प्रेमचन्द ने भी ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं की है। इस अभाव की पूर्ति की श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने। वृन्दावनलाल वर्मा के पहले ऐतिहासिक उपन्यास लेखन के क्षेत्र में भारतेन्दुयुगीन लेखकों द्वारा कुछ छुट-पुट प्रयास किये गये जिनमें मुख्यत: किशोरीलाल गोस्वामी का नाम लिया जाता है। परन्तु सही अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास के विकास का श्रेय वृन्दावनलाल वर्मा को ही जाता है इसीलिए शुक्ल जी ने भी अपने इतिहास में उस समय लिखा 'वर्तमानकाल में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में केवल बा· वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं'।

वृन्दावनलाल वर्मा के समकालीन और कुछ बाद के लेखकों में भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं जिनमें चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव और अमृतलाल नागर आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

चतुरसेन शास्त्री वर्माजी की परम्परा में ही आते हैं। दोनों की इतिहास विषयक सामग्री और स्रोत लगभग समान हैं। उन्होंने भी वृन्दावनलाल वर्मा की तरह अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की भूमिका में ऐतिहासिक स्रोतों का उल्लेख किया है। परन्तु चतुरसेन शास्त्री कई बार

ऐतिहासिक सत्य के बदले कल्पना को अधिक महत्व दे देते हैं जबकि वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक सत्य और यथार्थ की रक्षा करते हैं । इसीलिए चतुरसेनशास्त्री के उपन्यास केवल 'इतिहास-रस' की और मनोरंजन की ही सृष्टि कर पाते हैं ।

राहुल सांकृत्यायन ने इतिहास के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाई है । उन्होंने 'सिंह सेनापति', 'जययोधेय' और 'विस्मृतयात्री' आदि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्तमान के माध्यम से अतीत को देखा है । वे वर्तमान जीवनदर्शन को पुष्ट करने के लिए अतीत से उदाहरण संचित कर अपने विचारों को प्रामाणिक सिद्ध करते हैं ।

यशपाल मूलतः समाजवादी उपन्यासकार हैं । 'दिव्या' 'झूठासच' आदि कुछेक ऐतिहासिक उपन्यास भी उन्होंने लिखे हैं । 'दिव्या' उनका महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने बौद्धकालीन भारत के सामन्ती जीवन का चित्रण समाजवादी दृष्टिकोण से किया है ।

ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण नाम है रांगेय राघव । उन्होंने द्रविड़ सभ्यता को आधार बनाकर 'मुर्दों का टीला' की रचना की । लेखक ने इस उपन्यास में सम्पूर्ण युग को चित्रित किया है । युग के माध्यम से समाज और समाज के माध्यम से व्यक्ति को देखा है । उन्होंने कहीं भी वर्तमान जीवन की समस्याओं को ऐतिहासिकता पर हावी नहीं होने दिया है । ऐतिहासिक उपन्यासों की इसी श्रृंखला में अमृतलाल नागर के भी कई उपन्यास आते हैं । आज भी कई लेखक इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने लगभग तेरह ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी की ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा को सुदृढ़ किया है । इस क्षेत्र में उनका उल्लेखनीय योगदान है । वर्माजी ने उपन्यास लेखन के क्षेत्र में

इतिहास को ही क्यों चुना ? इस बारे में उनका मानना है कि उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना से बहुत पूर्व जो संकल्प किये थे उनमें इतिहास विषयक भ्रांतियों का नाशकर अपने राष्ट्र का गौरवगान मुख्य था । उन्होंने साहित्य संदेश में लिखा है - "मैने उसी दिन गांठ बांधी कि खूब पढ़ूंगा और सही बातों का पता लगाकर कुछ लिखूंगा भी"। इसी प्रण की रक्षा-हेतु ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की पूर्व रक्षा अनिवार्य थी । इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास लेखन से पूर्व वर्माजी ने इतिहास-ग्रन्थ लेखन की बात सोची थी । परन्तु कुछ अज्ञात कारणों के फलस्वरूप उन्होंने इतिहास ग्रन्थों की रचना न कर ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया । इस प्रकार वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्देश्य ऐतिहासिक सत्य की खोज तथा लेखकों द्वारा प्रचारित अनेक भ्रांतियों का निराकरण है ।

प्राय: यह कहा जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्तमान से पराजित अथवा पलायन की भावना के कारण तथा अतीत के पुन: स्थापन के लिए ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करता है । परन्तु यह सत्य नहीं है । ऐतिहासिक उपन्यासकार कतिपय ऐतिहासिक पात्रों के प्रति न्याय करने और जातिय गौरव, राष्ट्रीय प्रेम, तथा आदर्श स्थापन को ध्यान में रखते हुए और अपनी कल्पना से उनमें अपने युग के सम-सामयिक जीवन मूल्यों के समावेश के लिए ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करता है । वृन्दावनलाल वर्मा ने भी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से भारतीय परम्परागत आदर्शों को प्रतिष्ठित किया है । उन्होंने मध्ययुग को आधार बनाकर ही अपने अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है । मध्ययुग को लेने का मुख्य कारण यह था कि निकट अतीत का अध्ययन करने में जो तथ्य और सत्य प्रमाण प्रस्तुत

किये जा सकते हैं उन्हें सत्य की कसौटी पर खरे उतारने में अधिक सफलता मिल सकने की संभावना रहती है । उन्होंने अपने अधिकांश उपन्यासों में बुन्देलखंड के स्वर्णिम अतीत को ही उद्घाटित किया है । उनके मन में बुन्देलखण्ड के अतीत के प्रति गहरा लगाव एवं आत्मीयता थी । इस तरह के ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के पीछे सर वॉल्टर स्कॉट की प्रेरणा रही है । स्कॉट ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में अपने ही गांव एवं उसके आसपास के वातावरण को लिया था । वर्माजी ने भी अपने बुन्देलखण्ड को नज़दीक से देखा था । वहां के लोगों के रहन-सहन और उनकी भावनाओं को परखा था । बहुत परिश्रम करके उन्होंने बुन्देलखंड के ऐतिहासिक तथ्यों की सत्य जानकारी प्राप्त की और फिर अपने उपन्यासों द्वारा बुन्देलखण्ड की संस्कृति और वहाँ के वीरों का गौरवपूर्ण इतिहास मृगनयनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, माधव जी सिंधिया, महारानी दुर्गावती, रामगढ़ की रानी तथा अहिल्याबाई आदि में सजीव एवं सप्राण बनाकर हिन्दी जगत के सामने रखा ।

ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत और वर्तमान का सुन्दर समन्वय होता है । वर्माजी के उपन्यासों में भी अतीत और वर्तमान समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं । वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की विशेषता बताते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है - "वर्मा जी ऐतिहासिक उपन्यास लिखते हुए वर्तमान समाज की समस्याओं का ध्यान रखते हैं । अपने युग को अतीत के नाम पर चित्रित नहीं करते वरन् अतीत के चित्रण से वर्तमान के लिए प्रेरणा लेते हैं । इस प्रकार अतीत और वर्तमान के बीच उनके लिए कोई दुर्भेद खाई नहीं है ।"

वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों का महत्व यह है कि उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से यह बताने की

कोशिश की है कि अतीत में जो गलत या सही कार्य हुए हैं उसका ध्यान रखते हुए वर्तमान में ऐसा कोई कार्य न करें जो मानवजाति को हानि पहुँचाए ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्य तो इतिहास से लेता है, परन्तु अपनी कल्पना द्वारा उस युग के यथार्थ को पुनर्जीवित करता है । अपनी कल्पना द्वारा लेखक तत्कालीन देशकाल का वर्णन इतनी जीवन्तता से करता है कि सारा इतिहास रोचक ढंग से समस्त चित्रों के साथ सामने खड़ा हो जाता है । ऐतिहासिक पात्रों के चरित्रांकन में भी अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे वह उसे मार्मिक एवं प्रामाणिक बना देता है । वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक पात्रों के अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे भव्य चित्र खड़े किये हैं । झांसी की रानी, माधव जी सिंधिया, दुर्गावती, अहिल्याबाई आदि अपने उदात्त रूप में सामने आते हैं । परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए कल्पना के आयाम अन्य उपन्यासकार की तरह स्वतन्त्र नहीं होते । वह कथावस्तु अतीत से जुटाता है और उसे पात्र और घटनाएं भी विगत की गोद से ही मिलती हैं । तो फिर कल्पना की गुंजाइश कहां होती है ? यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि ऐतिहासिक यथार्थ को वर्तमान से जोड़ने के लिए लेखकीय कल्पना की आवश्यकता होती है । रचनाकार इतिहास से केवल सांचा ही तो लेता है और उसका पुनर्निर्माण तो वह अपनी कल्पना के आधार पर ही करता है । कथावस्तु विन्यास, वातावरण, देशकाल एवं चरित्रांकन के लिए लेखक कल्पना का ही सहारा लेता है । कथा को विश्वसनीय बनाने हेतु लेखक प्राकृतिक व भौगोलिक चित्रण भी कल्पना के सहारे ही करता है । इस दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा ने तो बुन्देलखण्ड के पत्ते-पत्ते को अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे साकार किया है । परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना का खुलकर प्रयोग नहीं कर

सकता । वह ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुए ही कल्पना द्वारा अपनी कृति को सुन्दर एवं कलात्मक बनाता है । इस दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा एक सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं ।

कल्पना यथार्थ की जमीन पर ही पैदा होती है और फलती-फूलती है । यथार्थ के बिना कल्पना मुर्दा समान है और कल्पना के बिना यथार्थ को चित्रित नहीं किया जा सकता है । साहित्य में इन दोनों का होना अनिवार्य है । कल्पना के बिना यथार्थ मात्र इतिहास बन सकता है और यथार्थ के बिना कल्पना केवल रंगीन स्वप्न । कल्पना एवं यथार्थ का सुन्दर समन्वय ही ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता की कसौटी है और यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में यथार्थ और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की यह विशेषता है कि उन्होंने अपनी कल्पना को साकार करने के लिये या आदर्श का चित्रण करने के लिए कहीं भी यथार्थ का गला नहीं घोटा है ।

वे यह जानते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास को यथार्थता प्रदान करने के लिये अनुकूल वातावरण की सृष्टि करना अत्यन्त आवश्यक है इसके लिये वे युगविशेष के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण का अंकन करते हैं । 'झांसी की रानी' में साम्प्रदायिक झगड़ा एवं वर्ण व्यवस्था का संकेत जनेऊ प्रसंग द्वारा दिया गया है तो तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण जनरल रोज की मक्कारी और अंग्रेजों की कूटनीति के माध्यम से किया गया है । 'मृगनयनी' और 'गढ़कुण्डार' पढ़ते हुए हम स्वयं को उस देश-काल में विचरण करता हुआ पाते हैं । चरित्र-चित्रण में वे इतिहास के नायक-नायिकाओं के भव्य चित्रण में ही नहीं खो जाते हैं बल्कि उन्होंने सामान्य

पात्रों को भी नवीन गरिमा प्रदान की है । तारा, दिवाकर, लाखी, अटल, सुन्दर, मुन्दर, झलकारी कोरिन, नूरबाई आदि ऐसे ही पात्र हैं ।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए वर्माजी ने वहां की भाषा का प्रयोग भी अपने उपन्यासों में किया है । उनके हर उपन्यास में एक न एक पात्र तो ऐसा है जो बुन्देलखण्डी बोलता है । मिट्टी की सोंधी महक और भाषाशैली में प्रादेशिकता का रंग देखकर बहुत से समीक्षकों ने उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में आंचलिकता खोजने का प्रयास किया है । यह सच है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में आंचलिक तत्व-प्रकृति का विशेषतः नदियों, जंगलों का काव्यमय वर्णन, अंचल की भौगोलिक विशेषता, बुन्देलखण्ड के नर-नारियों की वेशभूषा, उनके रीतिरिवाज, उत्सव, त्यौहार उनका रहन-सहन और उनकी आर्थिक स्थिति आदि का चित्रण तो है परन्तु सीमाविस्तार के कारण हम उन्हें आंचलिक उपन्यासों के समकक्ष नहीं मान सकते । और मुख्य बात यह है कि सर्वप्रथम तो वे ऐतिहासिक उपन्यास हैं और लेखक ने युग यथार्थ को साकार करने के लिए इन आंचलिक तत्वों का समावेश अपने उपन्यासों में किया है । इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि वर्माजी ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपनी रचनाओं द्वारा आंचलिक उपन्यास-कारों को प्रभावित जरूर किया है । इस दृष्टि से उनका ऐतिहासिक महत्व है ।

आधुनिक चेतना और स्त्री शिक्षा के कारण आज विश्व भर में स्त्री विषयक चिन्तन विकसित हो रहा है । आज स्त्री अबला नहीं वरन् पुरूष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है । सामन्ती समाज और मूल्य व्यवस्था में स्त्री का स्थान गौण था और उसे मात्र उपभोग की वस्तु मानकर चित्रित किया गया है । लेकिन वृन्दावनलाल वर्मा ने नारी शक्ति को पहचाना और अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के

द्वारा सामन्ती बंधनों में जकड़ी हुई नारी के नये क्रांतिकारी रूप को पाठकों के सामने रखा । उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास नारी को नायिका बनाकर लिखे गये हैं चाहे वह 'मृगनयनी' हो या 'झांसी की रानी' 'कचनार' हो या 'दुर्गावती', 'रामगढ़ की रानी' हो या 'अहिल्याबाई' । भारतीय इतिहास में इनका महत्व और योगदान अक्षुण्ण है और आज भी अपने कमजोर क्षणों में नारी इनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकती है । भारतीय स्त्री का इतना भव्य और गरिमापूर्ण रूप अन्यत्र दुर्लभ है ।

जैसाकि सभी जानते हैं कि वृन्दावनलाल वर्मा ने केवल ऐतिहासिक उपन्यास ही नहीं लिखे बल्कि अपने युग यथार्थ को व्यक्त करने के लिए लगभग उतने ही सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं । सामाजिक उपन्यासों की रचना के पीछे यह लगता है कि केवल ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा लेखक अपनी विचारधारा और भाव-बोध को पूर्णतया: व्यक्त नहीं कर पाया है इसलिए उसे सामाजिक उपन्यासों का सृजन भी करना पड़ा । वर्तमान यथार्थ के दबावों को केवल अतीत के चित्रण द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के परिवर्तन से समस्याओं और जीवन का स्तर भी बदलता है । रचनाकार का सम्बन्ध जीवन के यथार्थ से होता है और रचनाकार का यथार्थबोध ही उसकी रचना का आधार होता है । वर्माजी ने उस समय के समाज की अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं और दबावों को अपने सामाजिक उपन्यासों का कथ्य बनाया है ।

वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों में उनका सामन्तवाद विरोधी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । जनवादी मूल्यों के पक्षधर के रूप में वर्मा जी

की सहानुभूति जनता के साथ व्यक्त हुई है । उनके 'अमरबेल' और 'उदयकिरण' उपन्यास सहकारिता और श्रम की प्रासंगिता को आधार बनाकर लिखे गये हैं । इसके पीछे गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है । 'प्रत्यागत' ,'कुण्डलीचक्र','अचल मेरा कोई','सोना','लगन' आदि उपन्यासों में जमींदारी प्रथा, स्त्री शिक्षा, जातिगत भेदभाव, दहेज-प्रथा, आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार जैसी अनेक बुराइयों और समस्याओं को वर्माजी ने उजागर किया है । लेखक ने अपनी तरह से इन समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया है । इस प्रयत्न में कहीं-कहीं लेखक आदर्शवादी और सुधारक भी हो गया है । परन्तु कुछ मिलाकर यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वर्माजी के सामाजिक उपन्यास उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के सामने हलके ही ठहरेंगे ।

मेरे शोध प्रबन्ध का उद्देश्य वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास साहित्य में कल्पना और यथार्थ के विन्दुओं को उजागर करना है । चूँकि वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यासों का सृजन किया है । इसलिए उपन्यास के दोनों प्रकारों में यथार्थ किस रूप में व्यक्त हुआ है, कल्पना का उपयोग लेखक ने कहाँ और किस तरह किया है तथा कल्पना और यथार्थ का सामंजस्य वह कैसे कर पाया है ? इन सब बातों को इस शोध प्रबन्ध में दिखाने का प्रयास किया गया है ।

कोई भी लेखक अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्रभावित होता है और परवर्ती पीढ़ी को प्रेरित और प्रभावित करता है । इस दृष्टि से वृन्दावनलाल वर्मा का महत्व ऐतिहासिक ही नहीं समसामयिक भी है । उनके उपन्यास साहित्य से आज हम अतीत को देखने, समझने की प्रेरणा

प्राप्त कर सकते हैं । पुरानी घटनाओं से शिक्षा लेकर राष्ट्र प्रेम, स्वतन्त्रता प्रेम, संगठन आदि के द्वारा हम सामाजिक कुरीतियों एवं प्रथाओं का नाश करने और बड़े से बड़ा बलिदान करने में तत्पर हो सकते हैं ।

.....

परिशिष्ट

आधार ग्रंथ सूची

{क} ऐतिहासिक उपन्यास

1· गढ़ कुण्डार : वृन्दावनलाल वर्मा
मयूर प्रकाशन, झांसी
1981 {संशो·}.

2· विराटा की पद्मिनी : वृन्दावनलाल वर्मा
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1984, चौदहवां संस्करण.

3· मुसाहिबजू : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1987, आठवां संस्करण.

4· झांसी की रानी : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी.
1946, आठवां संस्करण.

5· माधवजी सिंधिया : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1983, आठवां संस्करण.

6· टूटे कांटे : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1952, चतुर्थ संस्करण.

7· कचनार : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1984, चौदहवां संस्करण.

8. मृगनयनी : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1972, 20वां संस्करण.

9. अहिल्याबाई : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1958, चतुर्थावृत्ति.

10. भुवन विक्रम : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1984, (संशो.)

11. रामगढ़ की रानी : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1986, छठवां संस्करण.

12. महारानी दुर्गावती : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1988, 14वां संस्करण.

13. सोती आग : वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झांसी, 1987, सातवां संस्करण.

(ख) सामाजिक उपन्यास

1. प्रेम की भेंट : वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, सं.–2015 वि. सप्तमावृत्ति.

2. कुण्डली चक्र : वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1969, नववां संस्करण.

3· अचल मेरा कोई : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1980, 14वाँ संस्करण.

4· लगन : वृन्दावनलाल वर्मा,
गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ,
1966, आठवां संस्करण.

5· अमर बेल : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1987, पाँचवां संस्करण.

6· कभी न कभी : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1963, तीसरा संस्करण.

7· सोना : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1987,तेरहवां संस्करण.

8· प्रत्यागत : वृन्दावनलाल वर्मा,
गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ,
सं· 2019 वि·, चतुर्थावृत्ति .

9· संगम : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1981, (संशो·) संस्करण.

10· कीचड़ और कमल : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी, 1973.

11· उदय किरण : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1987, पाँचवां संस्करण.

12· आहत : वृन्दावनलाल वर्मा,
मयूर प्रकाशन, झांसी,
1987, नववाँ संस्करण.

सहायक ग्रंथ सूची

1. बिन्दु अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र॰सं॰--1967.

2. कृष्णा अवस्थी : वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पुस्तक संस्थान नेहरू नगर कानपुर, संस्करण-1973.

3. ब्रजभूषण सिंह आदर्श : हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन, रचना प्रकाशन, प्र॰सं॰--1970.

4. डॉ॰ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताने का इतिहास, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, सं॰--1937.

5. ई॰एच॰ कार : इतिहास क्या है, मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, प्रथम संस्करण-1976.

6. नरेन्द्र कोहली : हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त, वाणी प्रकाशन, प्र॰सं॰--1989.

7. डॉ॰ हेमराज कौशिक : हिन्दी स्थिति एवं गति, विभूति प्रकाशन, संस्करण-1986.

8. डॉ॰ चन्द्रकान्त गर्जे : हिन्दी मराठी के ऐतिहासिक उपन्यास, पुस्तक संस्थान, प्र॰सं॰--1976.

9. कमला गुप्ता : हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद, अभिनव प्रकाशन, प्र॰सं॰--1979.

10. डॉ॰ ज्ञानचन्द्र गुप्त : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1974.

11· गोविन्दजी : हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग, कल्पना प्रकाशन, प्रथम संस्करण.

12· बी·एम· चिन्तामणि : ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य, काशीभवन, वाराणसी, 1959.

13· डॉ· सत्यपाल चुघ : ऐतिहासिक उपन्यास, प्रकाशन - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्र·सं·-1957.

14· रघुवीर चौधरी : इतिहास-रस - वृन्दावनलाल वर्मा जन्म:शतवार्षिकी राष्ट्रीय संगोष्ठी सितम्बर 14-16, 1989. साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, दिल्ली.

15· आनन्द जैन : कुणाल की आँखें, प्रकाशन संस्करण-1967.

16· डॉ· निर्मला जैन : हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास - द्वादश भाग, नागरी प्रचारणी सभा काशी, प्रथम संस्करण.

17· रवीन्द्र कुमार जैन : उपन्यास सिद्धान्त और संरचना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, संस्करण-1972.

18· डॉ· सुमित्रा त्यागी : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन, साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 1978.

19· डॉ· सुषमा त्यागी : प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कला, अनुराधा प्रकाशन मेरठ, प्र·सं·-1985.

20· डॉ श्याम सुन्दरदास : साहित्यालोचन,
इण्डियन प्रेस लि· प्रयाग,
प्रथम संस्करण

21· डॉ· मुकुन्द द्विवेदी : हिन्दी उपन्यास युग चेतना और
पाठकीय संवेदना,
लोक भारतीय प्रकाशन इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण-1970.

22· रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय,
राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली,
द्वितीय संस्करण-1959.

23· हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क,
साहित्य भवन प्रकाशन इलाहाबाद,
तीसरा संस्करण-1979.

24· डॉ· तहसील दूबे : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य
में शिल्प का विकास,
नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल,
प्रथम संस्करण-1983.

25· डॉ· नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र·सं·,

26· सुर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अलका,
राजकमल प्रकाशन, द्वि·आ·-1982.

27· डॉ· प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प
का विकास,
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ,
प्रथम संस्करण-1964.

28· जितेन्द्र सिंह ठोढ़ी : वृन्दावनलाल वर्मा : व्यक्तित्व
और कृतित्व, 1972.

29· मैनेजर पाण्डेय : साहित्य और इतिहास दृष्टि,
पीपुल्स लिटरेसी मटिया महल,
दिल्ली-6, प्र·सं·-1981.

30· राजेन्द्र प्रसाद : साहित्य, शिक्षा और संस्कृति
रामलाल पुरी आत्माराम एण्ड
सन्स, द्वितीय संस्करण-1960.

31· डॉ· सियाराम शरण प्रसाद : हिन्दी उपन्यास का विकास और
उनके चार प्रतिनिधि,
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण-1980.

32· सियाराम शरण प्रसाद : वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और
समीक्षा,
साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 1967.

33· प्रेमचन्द : कुछ विचार,
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद वाराणसी,
वर्तमान संस्करण-1973.

34· प्रेमचन्द : कुछ विचार - निबन्ध संग्रह (भाग-1
में संकलित निबन्ध जीवन में साहित्य
का स्थान.

35· डॉ· आशा बागड़ी : प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास साहित्य
में पारिवारिक जीवन,
शोध प्रबन्ध प्रकाशन, 1974.

36· डॉ· चन्द्रकांत बांदिवडेकर : हिन्दी और मराठी के सामाजिक
उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन,
पूर्वोदय प्रकाशन, प्र·सं·-1977.

37· डॉ· प्रेम भटनागर : हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते
परिप्रेक्ष्य,
अर्चना प्रकाशन जयपुर, 1968.

38· कौशल भटनागर : वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का
सांस्कृतिक अध्ययन, मेरठ, 1976.

39· डॉ· महेन्द्र भटनागर : समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द,
ज्ञान भारती प्रकाशन दिल्ली,
संस्करण-1982.

40· डॉ· श्री नारायण भारद्वाज : ऐतिहासिक उपन्यास तुलनात्मक अध्ययन,
कोणार्क प्रकाशन दिल्ली, 1981.

41· कुसुम भार्गव : वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियों का सांस्कृतिक अध्ययन, 1970.

42· डॉ· रामनारायण सिंह "मधुर" : हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास,
ग्रन्थम रामबाग, कानपुर,
संस्करण-1971.

43· किशोरीलाल मशूरवाला : गांधी विचार दोहन,

44· रामदरश मिश्र : ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा,
एस· चान्द एण्ड कम्पनी, रामनगर नई दिल्ली, 1964.

45· शिवकुमार मिश्र : वृन्दावनलाल वर्मा - उपन्यास और कला,
रवि प्रकाशन कानपुर, 1956.

46· शिवकुमार मिश्र : वृन्दावनलाल वर्मा - उपन्यास और कला,
रवि प्रकाशन कानपुर, 1959.

47· डॉ· शैल रस्तोगी : हिन्दी उपन्यासों में नारी,
विभू प्रकाशन, 1971.

48· डॉ· रणवीर रांग्रा : समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका,
जगतराम एण्ड सन्स, 1986.

49· डॉ· रांगेय राघव : आलोचना - 1952.

50· डॉ· गुलाबराय : काव्य के रूप,
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली,
संस्करण-1967.

51· विवेकीराय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन, लोकभारती प्रकाशन, 1974.

52· डॉ· सच्चिदानन्दराय : हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना, राजीव प्रकाशन, 1979.

53· सर्वजीतराय : हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1969.

54· डॉ· रामकुमार वर्मा : वर्मा और स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, निर्माण प्रकाशन, 1986.

55· वृन्दावनलाल वर्मा : अपनी कहानी, मयूर प्रकाशन प्रा·लि· झांसी, प्रथम संस्करण-1970.

56· ओम प्रकाश शर्मा : साहित्यिक कोश, साहित्य समारोह संगठन समिति द्वारा प्रकाशित, सन् 1973.

57· गोविन्द प्रसाद शर्मा : हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन, {अप्रकाशित शोध प्रबन्ध}, नागपुर विश्वविद्यालय.

58· डॉ· प्रदीप कुमार शर्मा : हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान, अभय प्रकाशन किदवई नगर कानपुर, प्रथम संस्करण-1990.

59· डॉ· माखनलाल शर्मा : ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली,

60· डॉ· माक्खनलाल शर्मा : हिन्दी उपन्यास-सिद्धांत और समीक्षा, 1965.

61· रामविलास शर्मा : आस्था और सौन्दर्य, किताब महल, 1883.

62· डॉ· रामविलास शर्मा : वृन्दावनलाल वर्मा, शीर्षक निबन्ध नया पथ : अप्रैल ,

63· शंभुनाथ : भारतीय इतिहास की पहचान और कथा साहित्य - वृन्दावनलाल वर्मा जन्म-शतवार्षिकी - राष्ट्रीय संगोष्ठी सितम्बर 14-16, 1989. साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन.

64· चतुरसेन शास्त्री : वैशाली की नगरवधू, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-1987.

65· प्रताप नारायण श्रीवास्तव : बेकशी का मजार, रामबाग कानपुर, 30·5·1956 .

66· श्रीमती ओम शुक्ल : हिन्दी उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1964.

67· आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सम्बत् 2006.

68· आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "रस-मीमांसा" नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, नौवां संस्करण- संबत् 2009.

69· ललित शुक्ल : दिशाओं का परिवेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1986 .

70· डॉ· उषा सक्सेना : हिन्दी उपन्यासों का शिल्प-विधान शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1972.

71· डॉ· मनमोहन सहगल : हिन्दी उपन्यास के पद्चिन्ह, सूर्य प्रकाशन, 1973.

72· डॉ· मोहिनी सहाय : वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य, सरस्वती प्रिंन्टिंग प्रेस, पटना, 1982.

73· डॉ· मंजुलतासिंह : हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, 1971.

74· डॉ· त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, संस्करण-1973.

75· डॉ· त्रिभुवनसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, चतुर्थ संस्करण-2022 वि·,

76· राजेन्द्रसिंह : हमारे लेखक, प्रकाशक साहित्य भवन, पंचम संस्करण संबत् 2021.

77· डॉ· रामशोभित प्रसाद सिंह : हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल जानकी प्रकाशन, पटना, 1979.

78· डॉ· विजय मोहन सिंह : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972.

79· डॉ· शशिभूषण सिंहल : हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, संस्करण-1970.

80· डॉ· शशिभूषण सिंहल : उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, संस्करण-1960.

81· डॉ· शशिभूषण सिंहल : हिन्दी उपन्यास बदलते सन्दर्भ, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, दिल्ली, प्रथम संस्करण.

82· शशिभूषण सिंहल : उपन्यास का स्वरूप, कैलाश पुस्तक सदन पाटनकर बाजार ग्वालियर (म·प्र·)

83· शशिभूषण सिंहल : वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास : एक अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1955.

84· डॉ· सच्चिदानन्द सिंह : हिन्दी सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना, राजीव प्रकाशन, 1979.

85· डॉ· सावित्री सिन्हा एवं डॉ· विजयेन्द्र स्नातक : अनुसन्धान की प्रक्रिया में सम्पादित डॉ· ताराचन्द के लेख इतिहास और साहित्य.

86· डॉ· पलसानि सुब्बाराव : हिन्दी और तेलगु के स्वातंत्र्योत्तर पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन बेतुल बिल्डिंग आगरा, 1970.

पत्र-पत्रिकाएं

1· आजकल — जुलाई, 1957.

2· आलोचना — इतिहास विशेषांक, अक्टूबर 1952.

3· आलोचना — उपन्यास विशेषांक, 1954.

4· आलोचना — उपन्यास अंक निबन्ध - इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार लेखक - जगदीश गुप्त.

5· इण्डियन हैरिटेज — हुमायू कबीर.

6· कल्याण — हिन्दू संस्कृति अंक

7· कल्याण — भाग-2, संख्या-2, दिस 1945.

8· कल्पना — सम्पादकीय - अक्टूबर, 1951.

9· झाँसी गजेटियर — यूनाइटेड प्राविन्सेन आगरा और अवध व्याहलूम.

10· नई धारा — वर्ष-2, अंक 1-2, अप्रैल-मई, 1951.

11· नये पत्ते — ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण - जनवरी और फरवरी, 1953 .

12· नवराष्ट्र (दैनिक) — 1 फरवरी, 1958.

13· "प्रभा" — जून 1913, वृन्दावनलाल वर्मा.

14· संगम — 26 जनवरी, 1950.

15· सम्पादकीय — साप्ताहिक हिन्दुस्तान 30 जून, 1974, (सं· मनोहर श्याम जोशी)

16· साहित्य संदेश — उपन्यास अंक, अक्टूबर-नवम्बर, 1940.

17· साहित्य परिचय — शिक्षा और भारतीय संस्कृति विशेषांक, जनवरी, 1971.

18· हिन्दी साहित्य कोश — ज्ञान मंडल लिमिटेड वाराणसी, सं·-2015.